अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन
बनाम
मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद)

व्यवहारवादी समाजशास्त्र

प्रणेता एवं लेखक
ए. नागराज
श्री भजनाश्रम, श्री नर्मदांचल
पोस्ट - अमरकंटक
जिला - शहडोल (म.प्र.)
(भारत)

प्रकाशकः
जीवन विद्या प्रकाशन
श्री भजनाश्रम, श्री नर्मदांचल, अमरकंटक
जिला - शहडोल (म.प्र.)

लेखक :
ए. नागराज

© सर्वाधिकार
प्रणेता एवं लेखक के
पास सुरक्षित

संस्करण :
द्वितीय 2009

मुद्रण :

सहयोग राशि :
/- रुपए

मुद्रक :
जीवन विद्या संस्थान
अमरकंटक

ग्राफिक्स-डिजाइनिंग :
आकाश कम्प्यूटर
रायपुर (म.प्र.) मोबा. 94252-04130

परिचय

''ए. नागराज - एक जीवित अस्तित्व दर्शन''

ए. नागराज एक ऐसा नाम है, जो अमरकंटक की वादियों में चुप-चुप गूंजते रहता है। दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं, एक वे जो अपना नाम लाउड स्पीकर लगाकर गली मुहल्ले में गुंजाते रहते हैं, दूसरे वे जिनका नाम प्रकृति के हर स्पंदन के साथ झंकृत होते रहता है। प्रकृति ने जिसे अपनी धड़कनों में पिया हो ऐसा ही एक नाम है - ''ए. नागराज''। इसका एक और भी अर्थ है - प्रकृति को भी श्री नागराज बाबा ने अपने अंतःकरण में पिया है, उन धड़कनों को जिया है, प्रकृति की अंतरात्मा का साक्षात्कार किया है - इस तरह तद्गत, तल्लीन हुए बिना, प्रकृति की अंतरात्मा को पहचाना नहीं जा सकता। इसी तल्लीनता का असर है कि प्रकृति भी इस नाम को पीकर पुलकित होती है। एक शायर ने बहुत अच्छा लिखा है।

हजारों साल नरगिस, अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा॥

शायद यह वही दीदावर है जो इस भारत के चमन में मुश्किल से पैदा हुआ है। इस बाबा में नरगिस का नूर (तेज) और सूरज की रौशनी, जैसे साथ साथ जीती है। सौंदर्य और सूरज जैसे, इस व्यक्ति में साथ साथ जीवित हो उठे हों।

श्री नागराज बाबा का जन्म कर्नाटक प्रान्त के (उस समय के मैसूर राज्य) एक छोटे से गांव अग्रहार में 14 जनवरी सन् 1920 को, सूरज ढलने के बाद जब रात्रि देवी चुपचाप धरती पर उतर रही थी, तब रात्रि लगभग 6 से 8 बजे के बीच हुआ। यह स्थान वर्तमान में भी जिला - हासन है। बाबाजी के पिताश्री थे - श्री नरसिंह शर्मा माँ थी श्रीमती वेंकम्मा। गोत्र भारद्वाज। दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध वेदपाठी, शास्त्राभ्यासी, कट्टरपंथी, परिश्रमी घोर सेवाभावी, श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में आपका जन्म हुआ। हम लोग संस्कृत भाषा में एक सूक्ति पढ़ते हैं - ''ब्रह्म जानोति, ब्राह्मणः। अर्थात ईश्वर को जानने वाला ब्राह्मण होता है। आज तो यह सवाल सर्प की तरह सिर उठाने लगा है - कि क्या सचमुच ब्राह्मण लोग ब्रह्म को, ईश्वर को जानते है ? अगर ईश्वर को नहीं जानते तो किस बात के ब्राह्मण हैं ? ईश्वर के बारे में पढ़ने के लिए बहुत से ग्रंथ हैं, जिसमें वेदों का प्रचलन एवं सम्मान, सर्वाधिक है। बाबाजी का कुल वेदमय रहा - निरंतर वेद ध्वनि, वेद चर्चा होती रहती थी - जैसे घर के छप्पर से भी वेद की ऋचाएं फूट रही हों। परंपरानुसार बाबाजी ने भी अपने मामा चिन्नप्पा से जो इस देश के सुविख्यात प्रकांड पंडित थे - 11 उपनिषदों एवं वेदान्त दर्शन को पढ़ा। उन्होंने उस समय की गंभीर और प्रतिष्ठित श्री विद्या उपासना तंत्र विधि से पूर्णाभिषेक कृत्य को सम्पन्न किया।

बाबा को 16-17 वर्ष की उम्र तक पढ़ने से विरक्ति रही, उसके बाद भी पढ़ने की बहुत प्रवृत्ति नहीं रही। परिवार सहज उपासना अभ्यास में प्रवृत्ति रही। परिवार के सम्मान को

यथावत बनाए रखने का उद्देश्य बना रहा।

बाबाजी की मां को आयुर्वेद एवं ज्योतिष शास्त्र का बहुत अच्छा अभ्यास था । अतः बाबाजी ने आयुर्वेद एवं ज्योतिष का अध्ययन अपनी माताजी से ही किया । बाबाजी 3 भाई, 3 बहिनें थीं । बाबाजी अपने भाइयों में मंझले हैं ।

परिवर्तन संसार का नियम है । सोया हुआ आदमी भी करवट लेता है, तो जागने के लिए उत्सुक आदमी की जिंदगी में भी परिवर्तन स्वाभाविक था । बाबाजी ने गंभीर साधना के निमित्त पंपापति (हम्पी, आंध्र) में लगभग एक माह एकान्तवास किया । वे श्री विद्या की उपासना में निमग्न रहे। शक्ति विद्या के मूल स्वरूप का नाम, 'श्री विद्या' है । उपासना के लिए श्री देवी को तीन अवस्थाओं में स्वीकारा गया है - बाला, त्रिपुर सुन्दरी, राज राजेश्वरी । परम्परा में यही तीन अवस्थाएं पाई जाती हैं । इन तीनों अवस्थाओं से इंगित स्वरूप, देवी का बाल्य, यौवन तथा वृद्धावस्था है। ऐसा बताया गया है । बाबा के परिवार में श्री विद्या उपासना तंत्र की परम्परा थी ही । उपासना तंत्र अर्थात मंत्र से स्वयं अभिभूत होना, मंत्र, यंत्र, पूजा स्थली एवं पद्धति से अभिभूत होना । श्री विद्या का पंचाक्षरी, पंचदशी, राजराजेश्वरी षोडषी मंत्र से बाबा दीक्षित रहे। देवी देवताओं के रूप उन्हे ध्यान में दिखाई पड़ते थे, याने स्पष्ट होते थे । बाबा के अनुसार आदमी का मन ही ध्येय और ध्यान के दो स्वरूपों में काम कर देता है । देवी देवताओं की जीवित मुद्रा भंगिमा दिखाई पड़ती थी । यहां से बाबा कन्नड़ भाषा के लोकप्रिय कवि हो गए । अपनी कविता पाठ से हजारों हजार श्रोताओं को रात-रातभर वे मंत्र मुग्ध करते रहे । लगभक दो वर्षों तक उनका कवि जीवन प्रभावी रहा याने 22 से 24 वर्ष की उम्र तक । लेकिन जनता को रात-रातभर कविता सुनाने से क्या हुआ ? प्रयोजन कुछ दिखायी नहीं पड़ा इसलिए कविता करने से विरक्ति होती गई। उस समय के प्रचलन के अनुसार वे ज्यादातर भक्ति और विरक्तिवादी कविताएँ लिखते रहे । इस बीच वेदान्त दर्शन को समझने की इच्छा होने लगी तो विधिवत उन्होंने अपने मामा लोगों के सान्निध्य में वेदान्त का अध्ययन किया ।

बाबाजी ने अपने गुरू, श्रृंगेरी मठ के पीठाधीश्वर श्री चंद्रशेखर भारती के कहने पर सन् 1941-42 में भगवान शिव की मोक्षपुरी काशी में रहकर साधना की । वहां भी वे भिक्षा मांगकर नहीं, अपनी रोटी स्वंय कमाते, शेष धन को जरूरत मंदों में बांट देते तथा ध्यान जप करते रहे । दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध संत श्री रमण महर्षि के प्रति भी बाबाजी की बड़ी आस्था रही । बाबाजी ने रमण महर्षि के दर्शन कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया । पर समाधान नहीं मिला, तृप्ति नहीं मिली ।

काशी से लौटकर 22 वें वर्ष में सन् 1942 में बाबाजी का विवाह श्रवण बेलगुड़ा के श्री हिरगना हल्ली मंजैया की एक मात्र संतान सौ. नागरत्ना देवी के साथ सम्पन्न हुआ । श्री नागरत्ना देवी का जन्म आश्विन नवरात्रि में शुक्ल पक्ष चतुर्थी तिथि में याने 10-10-1926 को हुआ था । विवाह के पश्चात सन् 49 तक बाबाजी मैसूर, बैंगलोर, मद्रास में रहे । उन्होंने वहां

पेंसिल बनाने का एक कारखाना लगाया । सन् 1939 से सन् 1949 तक इस तरह जीवकोपार्जन चलते रहा । सन् 1949 के बाद मन इस कार्य से उचटने लगा । आजादी के बाद संविधान को देखने पर उसमें राष्ट्रीय चरित्र का कोई स्वरूप नहीं मिला ।

राष्ट्रीय चरित्र अर्थात राष्ट्र के सभी मनुष्यों के आचरण की एकरूपता का कोई स्वरूप इसमें नहीं मिला । देश, समाज की दयनीय हालत और अपने भीतर उठे प्रश्नों से बेचैनी बढ़ती गई । फलस्वरूप इन सब मामलों में शोध अनुसंधान की जरूरत है ऐसा उन्हें लगते रहा । साथ ही इस धरती की मानव पंरपरा में **मैं भी एक जिम्मेदार व्यक्ति हूं** - मुझे ही यह शोध अनुसंधान में प्राण लगाना चाहिए - ऐसा गम्भीर भाव उन्हें मथता रहा ।

उस समय के सुप्रसिद्ध योगी अरविंद, महात्मा गांधी, महर्षि रमण, सभी से मिलकर बाबाजी, अपनी जिज्ञासा शान्त करने की आशा लगाए रहे, पर तृप्ति नहीं मिली । किसी को अपने प्रश्नों से निरुत्तर कर देना उनका आशय नहीं था, बल्कि वे अपने प्रश्नों का उत्तर चाहते थे अपने लिए तृप्ति। राष्ट्रीय आचार संहिता का स्वरूप क्या है, मनुष्य में बंधन और मोक्ष का स्वरूप क्या है ? यही मूलभूत प्रश्न थे उनके जीवन में । अपने प्रश्नों का उत्तर खोजना, इसके लिए अनुसंधान करना, उनकी जिम्मेंदारी थी। अतः उन्होने अपना घरबार, कारखाना, मित्र, परिजन सब छोड़ दिया । वन्दनीया माताजी (उनकी सहधर्मिणी) भी उनके साथ सर्वस्व त्यागकर, अमरकंटक की पुण्य भूमि में भगवती नर्मदा के उद्गम स्थल पर पहली बार आईं । उस दिन 31 दिसम्बर सन् 1949 की रात्रि थी । रात सन्नाटे में घिरी अमरकंटक की एकान्त पहाड़ियाँ । रात के सन्नाटे को चीरती मंदिर की टुनटुनाती हुई आरती की घंटियां । सब कुछ नया नया था और मन में वही दहकते सवालों की तपन थी । दूसरे दिन सन् 1950 का पहला दिन था **1 जनवरी सन् 1950**।

ऊषा ने अंगड़ाई ली । जीवन ने भी करवट ली हो जैसे। विशाल फैले हुए वन, नर्मदा का शान्त उद्गम, सुबह से शाम तक सन्नाटा, थोड़े से लोग और प्रकृति, सन्नाटा, एकान्त के बीच जीता हुआ आदमी ? यह आदमी क्या है ? परमात्मा क्या है ? प्रकृति क्या है ? इनका आपस में कोई सम्बन्ध भी है ? सवाल ही सवाल फणीधर सर्प की तरह फुफकारते हुए सवाल ही सवाल - उत्तर कहीं नहीं । सर्पिल सवालों के बीच तनकर खड़ा एक अकेला आदमी, जैसे भगवान शिव के अंग अंग में नाग लिपटे होते हैं । सवाल डसते भी हैं और आदमी को अपनी फुफकार से जगाते भी हैं । यह सवालों की फुफकार से जागे हुए एक आदमी की अंतर्कथा है।

मैं महीनों इन पहाड़ियों में घूमते रहा हूँ - एक अजीब सी चुप उदासी के सिवा, इन पहाड़ों और जंगल की आत्मा का कुछ पता नहीं चलता है । इन गुमसुम पहाड़ियों में ब्रह्मगिरि पर्वत पर बाबा लगातार 19 वर्षों तक तरह-तरह की तपस्या में निमग्न रहे । तब इन पहाड़ियों ने अपना हृदय खोल दिया ? प्रकृति का अनुपम सौंदर्य उजागर हुआ । अस्तित्व सहज अंतरात्मा ने अपने बंद दरवाजे खोले - अस्तित्व का प्रयोजन

स्पष्ट हुआ - मानव जीवन के साथ उसका संबंध - उजागर हुआ । प्रकृति और आदमी जिस सत्ता में संचालित उद्‌भासित हैं, वह ''व्यापक'' उद्‌भासित हुआ । साधना की सर्वोच्च अवस्था निर्विकल्प समाधि के अनुभव से वे एकाकार हुए। निर्विचार अवस्था - मनुष्य के लिए आश्चर्यजनक अनजाना। समाधि में प्रश्न खो जाते हैं, पूछने वाला गुम हो जाता हैं ।

पर वे जो चाहते थे, उसका उत्तर उन्हें समाधि में भी नहीं मिला । मौन और भक्ति-विरक्ति के बदले वे प्रयोजन को खोजते रहे । पातंजल योग सूत्र में लिखित, संयम नाम की एक स्थिति है । बाबा ने लगभग 6 माह तक आकाश में संयम किया । तब अचानक सृष्टि का संपूर्ण रहस्य, मानव जीवन का प्रयोजन, उसका स्वरूप, परमात्मा प्रकृति और परमात्मा की स्थिति - सब एकदम स्पष्ट हो गए । इससे उनको परम तृप्ति मिली, परम विश्राम को वे उपलब्ध हुए । जो उनको मिला मूल प्रश्न के उत्तर के रूप में बंधन, जीवनगत भ्रम के रूप में पीड़ित होने की घटना और जीवन ही जागृत होकर भ्रम मुक्ति का अनुभव करने की सुखद घटना स्पष्ट हुई जागृत मानव परम्परा में मानवीयतापूर्ण आचरण केन्द्रित सार्वभौम आचार संहिता रूपी संविधान मिला । उसे ही वे अपने मध्यस्थ दर्शन ''सह-अस्तित्ववाद'' में पिछले 26 वर्षों से लोगों को बताते जा रहे हैं। उसी की एक कड़ी है यह **''व्यवहारवादी समाजशास्त्र।''**

एक आश्चर्यजनक, किन्तु अत्यंत साधारण से किसान दिखने वाले एक सद् गृहस्थ साधु के परम साक्षात्कार से निसृत परम ज्ञान, जीवन ज्ञान अस्तित्व दर्शन-मानवीयतापूर्ण आचरण की यह माला - आम आदमी को अर्पित है । उन्हें देखकर डर नहीं लगता बल्कि अपने में एक आत्म विश्वास जागता है कि बाबा जैसा एक साधारण व्यक्ति, जीवन के परम सत्य को जब पा सकता है, तो हम लोग भी क्यों नहीं पा सकते? हम सत्य को उपलब्ध हो जाएं, इसमें क्या शंका है ।

अमरकंटक की पहाड़ियां इस व्यक्तित्व की सुगंध से भर गई हों जैसे उसी सुगंध की एक लहर है, एक फैलाव है यह प्रबंध - आपकी अपनी अस्मिता आपके अपने वैभव का संगीत, जो बाबा की चिंतन रूपी बांसुरी से - आनंद के आमंत्रण बिखेर रहा है आओ, अमृत के पुत्रों - तुम्हारा स्वागत है - इस ज्ञान के सुगंधित सागर में सराबोर होने - अपने 'स्व' को पहचान कर उसके वैभव में आल्हादित होने आमंत्रण है । आज ईसा के शब्द कितने सटीक हो गए हैं, ''मांगो, तुम्हें मिलेगा, खोजो तुम पाओगे, खटखटाओ तुम्हारे लिए खोल दिया जावेगा ।''

राजन शर्मा
नंदिनी, जिला-दुर्ग (म.प्र.)

व्यवहारवादी समाजशास्त्र : परिचय इसके लिए कार्यक्रम

अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की अवधारणाओं को स्थापित करना इस **"व्यवहारवादी समाजशास्त्र"** का उद्देश्य है। इसके लिये समुदायवादी समाज कहलाने वाले मूलकारणों को और अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र व्याख्या रूप में जीना समझा गया है।

1. मानव शरीर रचना रूपी नस्लों में विविधता।
2. रंगों में विविधता।
3. मानव अपने आस्थावादी विचारों से ऊपर कहे दो विविधता से उत्पन्न भय और प्रलोभन से मुक्ति अथवा राहत पाने के अर्थ में किये गये प्रयासों में अन्तर्विरोध और विविधता।
4. सुविधा-संग्रह में विविधता और अन्तर्विरोध।
5. दर्शन, विचारों में यथा-आदर्शवादी और भौतिकवादी विचारधाराओं में रहस्य, अनिश्चयता, अस्थिरता से ग्रसित होने के आधार पर अन्तर्विरोध और विविधताएं।

इन्हीं पाँच कारणों के आधार पर सम्पूर्ण प्रकार के व्यवहार, आचरण, उत्सवों में परस्पर अन्तर्विरोध होने के कारण ये सभी मिलकर, जुड़कर, घटकर भी मानव संतुष्टि का आधार नहीं बन पायी। जैसे -

1. सर्वमानव को न्याय चाहिए न कि फैसला।
2. सर्वमानव को व्यवस्था चाहिये, न कि शासन।
3. सर्वमानव को समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व चाहिये न कि अतृप्ति से ग्रसित संग्रह, सुविधा एवं रहस्य।

इन आशयों के सकारात्मक पुष्टि और उसके प्रमाण ऊपर कहे गये दोनों प्रकार की विचारधाराओं से बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक सार्थक होना संभव नहीं हुआ। इसी रिक्तावश मानव मन में विविध प्रकार की पीड़ा का कारण होना स्वाभाविक रहा। ऐसी पीड़ा के आधार पर ही अनुसंधानपूर्वक यथा **अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन** में पारंगत होने के उपरान्त ही, **सह-अस्तित्ववादी** परिपक्व सार्थक विचारों के आधार पर विज्ञान सम्मत एवं विवेक सम्मत विधि से सर्वमानव में जो व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबी होने का आशय रूपी ध्रुव है, इसके संतुष्टि को और उसकी अनिवार्यता को अनुभव किया गया है। फलस्वरूप व्यवहारवादी समाजशास्त्र की परिभाषा अखण्ड समाज-सार्वभौम व्यवस्था के रूप में सह-अस्तित्व और जागृति सूत्र के आधार पर व्याख्यायित हुई। जिसका स्वरूप शैक्षणिक विधि से सर्वसुलभ होने के साथ-साथ उसके सुयोग्य पद्धति प्रणाली सहित स्वायत्त मानव के रूप में प्रमाणित होने की सम्पूर्ण विधियों को बोध और हृदयंगम किया गया। **बोध** का तात्पर्य अनुभव की रोशनी में अथ से इति तक वस्तु के रूप में स्वीकारने से है। **हृदयंगम** का तात्पर्य विज्ञान सम्मत विवेक-विवेक सम्मत विज्ञान से है। **विज्ञान** का तात्पर्य कालवादी क्रियावादी निर्णयवादी विधि से और **विवेक** का तात्पर्य मानव प्रयोजन रूपी समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में पहचाना गया है। इसे सर्वविदित

कराने की इच्छा से इस व्यवहारवादी समाज शास्त्र को संप्रेषित किया है।

इस व्यवहारवादी समाजशास्त्र में विज्ञान और विवेक सम्मत विधि से **जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन** और **मानवीयतापूर्ण आचरण** को मानव प्रयोजन जागृति, विकास और पूरकता जैसे सार्वभौम वस्तुओं के योग-संयोग विधि सहित अध्ययनगम्य कराया गया है। इस तथ्य की भी सूचना, परिचय प्रस्तुत किया गया है कि परमाणु ही अस्तित्व में निरंतर पाये जाने वाले व्यवस्था का आधार है। इसी के साथ-साथ अस्तित्व में सम्पूर्ण इकाई अपने 'त्व' सहित व्यवस्था होना प्रतिपादित किया गया है। इसी क्रम में परमाणु ही विकासपूर्वक अर्थात परमाणु अंश बढ़ने की विधि से 'परमाणु तृप्ति' के बिन्दु को पहचाना गया है। परमाणु तृप्ति के लिए जितने परमाणु अंशों की आवश्यकता है उससे अधिक होने पर अजीर्णता को और कम होने की स्थिति में भूखे की संज्ञा में आना देखा गया है। साथ ही तृप्त परमाणु ही जीवन पद में वैभवित होना देखा गया है। यही चैतन्य इकाई है, जिसमें अक्षय शक्ति, अक्षय बल होना स्पष्ट हुई है। ऐसे अक्षय-शक्ति, अक्षय-बल को मानव में अध्ययनपूर्वक प्रमाणित होने के सम्पूर्ण विधियों को समझा गया है। जिसका सामान्य अध्ययन इस व्यवहारवादी समाजशास्त्र में प्रस्तुत किया गया है।

व्यवहार में सामाजिक होने की अभीप्सा जीवन सहज रूप में हर जीवंत मनुष्य में देखने को मिलती है। इसी आधार पर व्यवहारवादी समाजशास्त्र की आवश्यकता को अनुभव किया गया है। यही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था को प्रतिपादित, सूत्रित, व्याख्यायित करने का एक ध्रुव रहा है। दूसरा ध्रुव अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना रहा है। अतएव अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के अध्ययनोंपरांत हर व्यक्ति अपने में, से, के लिये अखण्ड समाज चाहिये या संकीर्ण समुदाय चाहिये-यह निर्णय हर समझदार करेगा-यह मेरा विश्वास है।

व्यवहारवादी समाजशास्त्र में इस लक्ष्य को बोध और हृदयंगम कराने की व्यवस्था है। मानवीय संविधान का धारक-वाहक मानव ही होना विश्लेषण पूर्वक स्पष्ट की गई है। इसका मूलरूप सर्वमानव मानवत्व सहित व्यवस्था होना एक निश्चित ध्रुव है, यह नियति क्रमानुषंगीय और जागृति क्रमानुषंगीय विधि के योगफल में निश्चयन हुआ है। दूसरा ध्रुव सह- अस्तित्व रूपी नित्य प्रभावी ध्रुव, नित्य वर्तमान है ही। इन दोनों ध्रुवों अथवा सभी ध्रुवों का दृष्टा मानव ही होना प्रतिपादित है। मानव दृष्टा पद प्रतिष्ठा में सर्वाधिक प्रयोजनशील होना प्रतिपादित, सूत्रित, और व्याख्यायित है। इसी आधार पर हर व्यक्ति को जागृतिपूर्वक अभिव्यक्त, संप्रेषित और प्रकाशित करना देखा गया, समझा गया और इस व्यवहारवादी समाजशास्त्र में संप्रेषित किया गया। अस्तु हर मनुष्य जागृतिपूर्वक ही मानवत्व सहित व्यवस्था रूपी आचार संहिता और संविधान का धारक-वाहक होना स्पष्ट किया गया है जिससे ही मानव प्रयोजन अक्षुण्ण विधि से सफल होना कारण, गुण, गणित रूपी मानव भाषा से समझा दी गई।

जागृत मानव परंपरा में स्वयंस्फूर्त विधि से ही मौलिक अधिकारों का प्रयोग स्वतंत्रता और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था

में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होना है जिसकी सार्वभौमता सहज होना समझा गया है । इसे मानवीय शिक्षा-संस्कारपूर्वक सर्वसुलभ करना लोकव्यापीकरण होने की विधियों को भी अध्ययन सुलभ किया गया है ।

मानव में ही सार्वभौम संचेतना, संवेदनशीलता व संज्ञानीयता के संयुक्त रूप में प्रमाणित होना देखा गया है । संचेतना का स्वरूप को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में अनुभव किया गया है । जानने, मानने की वस्तु के रूप में मूलत: सम्पूर्ण सह-अस्तित्व ही है । मनुष्य ही जागृतिपूर्वक अस्तित्व में दृष्टा पद का प्रयोग करने वाली इकाई है । इस तथ्य को भले प्रकार से हृदयंगम किया गया है । इसी तथ्य के आधार पर अस्तित्व में सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व में विकास, विकास क्रम में रासायनिक भौतिक क्रियाकलाप फलस्वरूप पदार्थावस्था, प्राणावस्था जीव शरीर और मनुष्य शरीर की रचनाएं रचित विरचित होने के तथ्यों को स्पष्ट किया गया है । साथ ही समृद्ध मेधसयुक्त जीव-शरीरों को जीवन ही संचालित करता हुआ वंशानुषंगीय क्रियाकलापों को सम्पादित करता हुआ होना, अध्ययन सुलभ हुआ और परमाणु विकासपूर्ण (गठनपूर्ण) होने के उपरान्त उसकी निरन्तरता के ध्रुव पर सह-अस्तित्व में ही अर्थात उपर कहे रासायनिक भौतिक रचना और जीवन का सह-अस्तित्व के प्रमाण रूप में जीवनी क्रम को जीव संसार में प्रमाणित करने का अधिकार अध्ययन सुलभ हुआ है ।

ज्ञानावस्था का मानव जीवन तथा समृद्ध मेधस युक्त शरीर रचना का संयुक्त रूप में होना समझा गया है । इसके साक्ष्य में जीवन अपने जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करने का सुखद-सुन्दर, समाधानपूर्ण स्थिति-गति की समीचीनता को समझा गया है और संप्रेषित किया गया है । ये ही मानव संचेतना की महिमा और गरिमा है । इसी के फलन में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और अखण्ड समाज सार्वभौम रूप में सफल होना समीचीन है ।

जागृत संचेतनापूर्वक ही मानव अपने दायित्व-कर्तव्यों को मानवीयतापूर्ण आचरण सहित निर्वाह करने की आवश्यकता, उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनशीलता को समझने के उपरांत ही इस समाजशास्त्र में संप्रेषित किया गया है । इसी के आधार पर सम्बन्ध-मूल्य-मूल्यांकन सहज रूप में ही मानव तथा नैसर्गिक सम्बन्ध में सफल होने की विधियों को इसमें अध्ययन करने की विधियों से प्रस्तुत की गई हैं ।

सम्बन्ध-मूल्य-मूल्यांकन, उभयतृप्ति के आधार पर ही मानव सहज सम्पूर्ण आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य सहित उत्सवित होने के समीचीन प्रकारों को आहार-विहार, व्यक्तित्व, स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबन की स्थिति-गति का अध्ययन प्रस्तुत है और सम्पूर्ण उत्सव मानव व्यवहार, कर्म, अभ्यास, अनुभवों के आधार पर ही सम्पन्न होने के तथ्य को उद्घाटित किया गया । विश्वास है कि व्यवहारवादी समाजशास्त्र के अध्ययन से मानव को भोगोन्मादी समाज और उसकी संकीर्णतावश घटित पीड़ा से मुक्त होने का अवसर मिलेगा । सार्वभौम व्यवस्था और स्वतंत्रतापूर्वक इस धरती में हर व्यक्ति

स्वायत्त होंगे और संपूर्ण परिवार समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्ववादी सूत्र से सूत्रित होंगे। वर्तमान में विश्वास और भविष्य के प्रति आश्वस्त होगा और इसकी अक्षुण्णता सदा-सदा मानव परंपरा में बनी ही रहेगी।

जय हो ! मंगल हो !! कल्याण हो !!!

ए. नागराज
प्रणेता : मध्यस्थ दर्शन, अमरकंटक

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय वस्तु	पृ.क्र.
1.	मानव परंपरा में अनेक समुदाय और सामाजिक पराभव एवं वैभव सहज संभावना	1-19
2.	व्यवहारवादी समाजशास्त्र की परिभाषा	20-32
3.	जीवन ज्ञान की ओर संकेत	33-44
4.	व्यवहारवादी समाजशास्त्र का स्वरूप	45-96
5.	मानवीय संविधान का धारक-वाहकता	97-101
6.	मौलिक अधिकार	102-194
7.	मानव में संचेतना	195-197
8.	दायित्व और कर्तव्य	198-202
9.	समाज और विधि	203-222
10.	मूल्यांकन	223-238

1

मानव परंपरा में अनेक समुदाय और सामाजिक पराभव एवं वैभव सहज संभावना

प्राचीन समय से अन्य शब्दों की तरह समाज शब्द भी प्रचलित रहा है। समाज शब्द का ध्वनि निर्देश तब बनता है जब इसके पहले एक निश्चित वस्तु (वास्तविकता) हो, उसे नाम चाहिए जैसे - हिन्दू समाज, मुसलमान समाज, इसाई समाज, आदि। ये सब अपने को श्रेष्ठ मानते रहे हैं।

श्रेष्ठता का मूल तत्व पुण्य कार्यों को मानने, अनुसरण करने से है। पुण्य कर्म पूजा, आराधना, प्रार्थनाएँ है । इन पुण्य कर्मों, प्रतीकों, पुण्य स्थलियों में विविधताएँ है । इन सबके मूल में परम पावन वस्तु 'ग्रन्थ' है । ये सभी 'ग्रन्थ' अलग-अलग नामों से ख्यात है । इन सभी 'ग्रन्थों' में स्वर्ग-नर्क, पाप-पुण्य का वर्णन है । इन पावन ग्रन्थों में जितनी भी वाणियाँ हैं, वे सभी ईश्वर, आका, देवदूत की वाणी अथवा आकाशवाणी माने गये हैं । यह सर्वविदित है ।

इस प्रकार समाज शब्द के पहले अवश्य ही कोई धर्म, सम्प्रदाय, जाति, समुदाय का योग होना देखा गया है ।

इस परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय मुद्दा यही है कि इन सभी पावन ग्रन्थों के अध्ययन से सर्वतोमुखी समाधान की अपेक्षा रही है । यह अपेक्षा अभी भी यथावत है । यही अग्रिम शोध का प्रवर्तन कारण है अर्थात पुनर्विचार के लिए पर्याप्त मुद्दा है । ऐतिहासिक गवाही के अनुसार ये सब समाज, धर्म और राज्य का दावेदार है । प्राचीन समय से अभी तक (बीसवीं शताब्दी के दसवें दशक तक) धर्म व राज्य के इतिहास के अनुसार मतभेद, युद्ध, कहानियाँ लिखा हुआ है । ये सब इतिहास वार्ता से सकारात्मक विधि से पता चलता है कि राज्य और धर्म पूरकता विरोधी हैं । जबकि मानव कुल में सर्वशुभ और उसकी निरन्तरता आवश्यक है । यह भी अनुसंधान का मुद्दा है ।

आदिकाल से सभी धर्म और राज्य जनसामान्य के सुख-चैन का आश्वासन ग्रन्थों और भाषणों में देते रहें है । धर्म व राज्य गद्दियां सदा ही सम्मान का केन्द्र रहे हैं । लोक सम्मान इनमें अर्पित होता ही आया है । बीच-बीच में विद्रोह भी घटित होता रहा व दोनों गद्दियों में चौमुखी असमानता देखने को मिलता है ।

शोध के लिए प्रश्न :-

1. सर्वतोमुखी समाधान कैसे हो ?
2. सर्वशुभ कैसे हो ?
3. असमानता निराकरण कैसे हो ?

चौमुखी असमानताएं :

1. **धनी/निर्धनी** : जो संग्रह किए हो वह धनी ।
2. **बली/दुर्बली** : जो ज्यादा मार-काट करता हो वह बली ।
3. **ज्ञानी/अज्ञानी** : जो ज्यादा प्रवचन करता हो ज्ञानी । जो प्रवचन सुनता हो अज्ञानी ।
4. **विद्वान/मूर्ख** : जो ज्यादा किताब पढ़ा हो वह विद्वान।

ये चारो प्रकार की असमानताएँ राज्य, धर्म और परंपरा की ही देन हैं, क्योंकि राज्य और धर्म प्रभावशाली परंपरा रही हैं। इस धरती पर चारों प्रकार से सम्पन्नता-विपन्नता का चौखट बना ही है जिसे मानव भोग रहा है । इस धरती में देखा गया है कि राज्य-राज्य की परस्परता में विरोध सदैव बना ही है । धर्म-धर्म की परस्परता में वाद-विवाद या विरोध बना ही है । ऐसी स्थिति में चौमुखी असमानता निराकरण कैसे हो यह भी अनुसंधान-शोध का मुद्दा है । इन्हीं अनुसंधान द्वारा जनमानस के सब प्रश्नों का समाधान सर्वशुभ होना चाहिए या नहीं चाहिए ? चौमुखी असमानता दूर होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए ? सर्वतोमुखी समाधान चाहिए या नहीं चाहिए ? इन सभी प्रश्नों का सकारात्मक उत्तर जिससे मिलता है उसे अपनाना ही सर्वशुभ है ।

क्या समाज का मूल रूप समग्र मानव होगा या नहीं होगा ? यह भी विचारणीय बिन्दु है। जबकि समग्र मानव ही अखण्ड समाज का आधार है तब, अभी तक विद्वान विचारकों को इसे पहचानने में क्या अड़चने रहीं ? यह सब विचारणीय बिन्दु और प्रश्न चिन्ह हैं । **अभी तक परंपरा में समुदायों को समाज माना गया है।** इन सब मुद्दों के मूल में मनुष्य का अध्ययन न हो पाना है । मानव समाज में मानव का कार्य व आचरणों के निश्चयन का आधार क्या है ?

राज्य और धर्म से अब तक जो उपकार हुआ है; इसके लिए कृतज्ञ होना आवश्यक है । धर्म और राज्य मानव कुल में निश्चित समाज आश्वासन के साथ आरंभ हुआ है । इसकी गवाही में इन उल्लेखों को देखा जा सकता है, कि सभी धर्म ग्रन्थों में अज्ञान स्वयं ही दुख है । अज्ञान को ज्ञान में, पाप को पुण्य में, स्वार्थ को परमार्थ में परिवर्तित करने के लिए उपाय, उपदेशों को प्रस्तुत किया है और राजगद्दी, जान-माल की सुरक्षा का आश्वासन देता है । अभी भी देता है साथ में सीमा सुरक्षा क्रम अपनायें है जिसमें सभी अपराध को वैध मान लिए हैं । दोनों विधा का भरपूर आश्वासन उस समय के लिये आवश्यक रहा जब मनुष्य चौमुखी (चारों प्रकार के) भय से त्रस्त रहा है । उस समय में आश्वासन व शरण की आवश्यकता रही । तत्कालीन तपस्वीयों ने तत्कालीन जनमानस पीड़ा को सांत्वना प्रदान की । यहाँ उस समय में आश्वासन और शरण की आवश्यकता रही । जनमानस में एक नया उमंग तैयार हुआ

जैसा पहले से नस्ल रंग के आधार पर मनुष्य से मनुष्य का खतरा मंडराता ही रहा । अन्य प्रकार का भय सताता ही रहा है। इसी बीच जंगल, डण्डा, शिला और धातु युग तक पहुँच चुके थे; कृषि, पशुपालन, पर्णपत्र, कुटीरों तक पहुँच चुके थे, ऐसा समझ सकते हैं ।

जब से राज्य धार्मिक राज्य बने; या धर्म और राज्य प्रभावी हुआ तब से अभी तक धर्म संविधान यथावत बना ही है । धर्म संविधान के अनुरूप राज्य व्यवस्था और कार्य सम्पन्न होता रहा है । (कालान्तर में वैज्ञानिक युग में धन और सामरिक शक्तियों पर आधारित राज्य व्यवस्था की कल्पना उदय हुई ।) धर्म संविधान ईश्वर प्रसन्नता के आधार पर सम्पन्न होता रहा । हर राष्ट्र किसी न किसी धर्मावलंबी रहा ही है । हर राजा किसी न किसी धर्म प्रतिबद्धता से बंधे रहे । अधिकांश देश व राष्ट्र में जो राजा का धर्म रहा, वही प्रजा का धर्म माना जाता था । स्वर्ग-नरक, ईश्वर की खुशी-नाराजगी के मिसाल इसके लिये उन-उनके तरीके सलूकों, मान्यताओं को सही एवं अन्य धर्मो के तरीकों आदि को गलत मानते । तरीके, प्रतीकों की भिन्नता ही धार्मिक संप्रदायों की परेशानियों का कारण बना रहा । इसी मान्यतावश धीरे-धीरे कुछ लोगों को धर्म से अरूचि होती रही । कालान्तर में वैज्ञानिक युग प्रारंभ हुआ । वैज्ञानिक अनुसंधानों की सार्थकता सटीकता जनमानस तक पहुँचने लगी । फलस्वरूप स्वर्ग में वर्णित अधिकांश सभी वस्तुयें पैसे से खरीदने की स्थिति बनी । प्रतीक मुद्रा पत्र मुद्राओं के रूप में मुद्रा प्रचलन

बना । प्रतीक मुद्रा संग्रह के लिये सरल हो गया । आस्थाओं में ढिलाई व्यक्तियों में बढ़ते आया । इसका प्रमाण **राजगद्दियाँ, धार्मिक राज्यनीति से आर्थिक राज्यनीति में अन्तरित हुआ ।** धार्मिक राज्यनीति पर आधारित राज्यनीतियाँ बदलता गया । अभी सर्वाधिक राज्य आर्थिक राज्य के रूप में अन्तरित हो चुके हैं । इसी क्रम में जनमानस आर्थिक लाभ की ओर बढ़ा; व्यापार पहले से ही लाभवादी रहा है । धर्म गद्दियाँ भी मुद्रा संग्रह के पक्ष में उतर गयी । मुद्रा के आधार पर अधिकांश ज्ञानी, विद्वान, परमार्थी होने की उम्मीद करते हैं । इतना ही नहीं धर्म गद्दियाँ पैसे की मानसिकता का पक्षधर हुई । ज्ञान पूर्वक पाप मुक्ति, स्वर्ग मुक्ति का आश्वासन मुद्रा के आधार पर विलास में खो गया है ।

निष्कर्ष - सम्पूर्ण प्रकार के धर्मों का कार्यरूप रहस्यमूलक आश्वासन, उपदेश, रूढ़ी, मान्यता व प्रतीकों पर आधारित होना रहा । मानव सहज शुभकामना (सुख आश्वासनों के रूप में बताया जाता रहा है) की असफलता की पीड़ा, समाधान की आवश्यकता के रूप में बढ़ी । **अर्थात धार्मिक राज्य और धर्म का प्रभाव, सुख कामना का जनमानस में उदय होने में उपकार किया है । यह एक सकारात्मक पक्ष है । इसी दौरान किया गया मन भेद द्वेष, विद्रोह, द्रोह, युद्ध, शोषण, लूट, विध्वंस, घृणा, उपेक्षा, प्रायश्चित रूपी हिंसा ये नकारात्मक पक्ष है ।**

यही सुखापेक्षा आर्थिक राजनीति, संग्रह सुविधा के लिए प्रवृत्ति को दिशा दिया । इसके सहायक यांत्रिक बलों से धरती का शोषण, संग्रह-सुविधा के आधार पर मनुष्य का भी शोषण देखने को मिला । यह सर्वविदित है। इस प्रवृत्ति और कार्यविधान के आधार पर धरती का शोषण, प्रदूषण, मिलावट, भ्रष्टाचार, कुकर्म (अर्थात परधन, परनारी/परपुरूष, परपीड़ा कार्य) करने की प्रवृत्ति सामान्य जनता में भी पहुँची। युवा पीढ़ी में और बाल पीढ़ी में इन सभी कुकर्मों में दिलचस्पी पैदा हुयी, स्थापित हुई । इसके लिए सटीक माध्यम सर्वविदित है जो नकारात्मक पक्ष है ।

सकारात्मक पक्ष सम्पूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धि जैसे दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन संबंधी वस्तुओं की उपलब्धि महत्वपूर्ण रही । फलस्वरूप आँख, कान, मुंह और पैर की दूरियाँ घट गई । उत्पादन कार्य में गति आई उसके अनुकूल तकनीकी विधाएं विकसित हुई, यही सकारात्मक पक्ष है ।

उपरोक्त विधि से सम्पूर्ण विश्लेषण और समीक्षाएं घूम-घूमकर परिवर्तनों के साथ-साथ भय की पीड़ा यथावत बना रहना ही पुनर्परिवर्तन, उसके योग्य समाजशास्त्र की आवश्यकता पर ध्यान दिलाता है । भय सदा-सदा ही प्रश्न चिन्ह का या समस्या का कारक तत्व होना

पाया गया । मनुष्य मूलतः समस्या और भय-प्रताड़ना मुक्त होना चाहता ही है । इसी क्रम में आस्थावादी और वस्तुवादी प्रलोभन, दोनों में डूबकर देखा है । पुनः यही बारंबार दोहराता है । वस्तुवादी प्रलोभन से आस्थावादी प्रलोभन और आस्थावादी प्रलोभन से वस्तुवादी प्रलोभन तक ही सभी समुदायों की यात्रा सीमित रह गई है। अभी तक मानव कुल में प्राप्त दर्शन, विचार, ज्ञान की लम्बाई-चौड़ाई-गहराई इतनी ही है । इन्हीं आस्थाओं पर आधारित प्रलोभनों की श्रेष्ठता बताने वाले वर्ग अथवा इसे आजीविका के लिए उपयोग करने वाले समुदाय आस्थावादी प्रलोभनों का उपदेश देते व्रत, नियम, उपवास, अभ्यास, अर्चना, प्रार्थना, योग, जप, यज्ञ, तपादि उपायों को सुझाते हैं । सर्वाधिक ऐसे उपदेश करने वाले व्यक्ति को हम इसी स्वरूप में पाते हैं । जैसे - आस्थावादी प्रलोभन के अनुसार अपूर्व यान-वाहन, भोगद्रव्य साधन सभी बिना कुछ किये मिलने का आश्वासन प्रकारान्तर से सभी धर्म गाथाओं में, उपदेशों में बताया जाता है। इसके आगे भी स्वर्ग सुख से आगे मोक्ष सुख को बताया है । उसे अनिर्वचनीय कहकर छोड़ दिया है । उसके लिये भी विविध साधना शैली बता चुके हैं । विद्वान मेघावियों को विदित है । चाहे आस्थावादी बनाम स्वर्गवादी प्रलोभन हो, अथवा वस्तुवादी प्रलोभन हो, कामना तृप्ति, अथवा इन्द्रिय लिप्सा के अर्थ में क्यों न हो, मूल मानसिकता एक ही है । इसमें मौलिक अन्तर क्या है ? मौलिक अन्तर यही मूल्यांकन करने को मिला कि आस्थावादी प्रलोभन इस शरीर

यात्रा में अथवा इस शरीर के द्वारा अपराध कार्यों में, हिंसक कार्यों में भागीदारी को अस्वीकार किया रहता है । ऐसी आस्थावादी प्रलोभन का उपदेश देने वाले ढेर सारी वस्तुएं एकत्रित किये ही रहते है । इसे उपदेश का फल, ईश्वर का देन मानते हैं । इसका तात्पर्य यह हुआ कि आस्थावादी प्रलोभन से प्रभावित व्यक्ति थोड़े समय तक अथवा अधिक समय तक संग्रह, सुविधा, हिंसा कार्यों से दूर रहना पसंद किये रहते हैं । वही व्यक्ति जब उपदेशक हो जाता है, उस समय में संग्रह सुविधा को हक मान लेता है फलस्वरूप उससे संबंधित सभी गुण होना पाया जाता है । नकारात्मक पक्ष के गुणों का भी होना पाया जाता है । अन्य जो संग्रह सुविधा भोग से लिप्त रहते हैं उसे धार्मिक उपदेशों और उसमें भरोसे के अनुसार पुण्य का फल माने ही रहते हैं । इसी कारणवश संग्रह सुविधा सम्पन्न वर्ग, संग्रह सुविधायें सम्पन्न उपदेशकों का सम्मान करते आये हैं। जिनके पास संग्रह सुविधायें नहीं है उनमें से कुछ हतप्रभ होकर ऐसे उपदेशकों को सम्मानित करने के लिये इच्छाओं से सम्पन्न होते हैं, और कुछ लोग सम्मानित करने योग्य न होने के कारण अपने को कोसते भी हैं, धिक्कारते भी हैं, कुण्ठित भी होते हैं । इस विधि से उपदेश ग्रंथ सम्मान के योग्य हुआ है । ऐसे ग्रन्थों के आधार पर किये जाने वाले उपदेशकों को सम्मानित करने की परंपरा बनाये हैं । इसी परंपरा क्रम में जिस उपदेशक का उपदेश गद्दी, संग्रह, सुविधा सम्पन्न रहता है उसी को सर्वाधिक पुण्य का फल माना जाता रहा है । ये सब पाप

पुण्य का नजरिया या आस्थावादी प्रलोभन का प्रारूप बताया गया है ।

इस धरती पर सुविधा संग्रह प्रक्रिया का अध्ययन करने से पता चलता है कि संग्रह-सुविधायें प्रौद्योगिकी व्यापार से होता हुआ देखने को मिलता है । व्यापार और प्रौद्योगिकी के लिए धरती के ऊपर और धरती में निहित सम्पदा ही एकमात्र स्रोत होना सबको दिखती है । धरती के ऊपर वन खनिज होते हैं, धरती के अन्दर खनिज होते हैं । ऊपर जो खनिज हैं और वन रहते हैं उनमें से कुछ आवर्तनशील रहते हैं, कुछ आवर्तनशील होते नहीं । जैसे वन-वनस्पतियाँ बीज-वृक्ष नियम विधि से आवर्तनशील होते हैं, मृत-पाषाण, मणि-धातुओं के रूप में और मणि-धातुएं, मृत-पाषाणों के रूप में भी परिवर्तित होता हुआ देखने को मिलता है। इसी के साथ महिमा सम्पन्न मुद्दा यही है **धरती अपने वातावरण सहित धरती सम्पूर्ण है ।** वातावरण का संतुलन अपने आप में वायु का संतुलन है, धरती का संतुलन ठोस और तरल-विरल पदार्थ का संतुलन है । ठोस, तरल, विरल वस्तुओं में सह-अस्तित्व, अविभाज्यता, पूरकता संतुलन के ध्रुव पर दिखाई पड़ती है। इस प्रकार धरती के संतुलन की महिमा, उसकी अनिवार्यता अपने-आप में स्पष्ट है तभी मानव इस धरती पर उदय हुआ है ।

प्रौद्योगिकी विधि जो उपभोक्तावादी, संचार क्रमवादी, सामरिक तंत्रवादी विधियों से आरंभ हुआ, अभी भी इन तीन

कोणों में अपने यांत्रिक उपक्रमों का विस्तार हो ही रहा है । यह सर्वविदित है । इन उपक्रमों के चलते ईंधन संयोजन एक मूलभूत उपक्रम है । ईंधन संयोजन का जो कुछ भी वस्तुएँ हैं वन खनिज तेल और खनिज कोयला हैं, जिसको वृहद ईंधन सामग्री मानते आये हैं, इसी का अर्थात ईंधनावशेष का नकारात्मक प्रभाव पर्यावरण के क्षेत्र में प्रभावित होना भी विदित है । इस प्रकार हम सभी उपभोक्तावादी प्रचूर वस्तुओं को उत्पादन करने के लिये जुड़े ही हैं । इसी सिद्धान्त से शोषण प्रदूषण कार्य से भी जुड़े हुए हैं जो स्वयं किसी व्यक्ति को स्वीकार्य नहीं है । इस तथ्य का इसीलिये यहाँ स्मरण दिलाया कि यह समाजशास्त्र है, सामाजिकता के नजरिये में पर्यावरणीय संतुलन भी एक अनिवार्य आयाम है क्योंकि पर्यावरण संतुलन = धरती का संतुलन = खनिज, वनस्पतियों का संतुलन = ऋतु संतुलन = अन्न-वनस्पतियों, जीवों और मनुष्यों का नित्य संतुलन । इस सूत्र से यह भी पता लगता है कि विज्ञान का इतिहास और वर्तमान में दिखता हुआ पर्यावरणीय परिणाम, दोनों का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विज्ञान विधियाँ संतुलन के लिये शुरूआत ही नहीं किया । इनके संतुलन का कोई मापदण्ड आरंभिक विज्ञानियों के हाथ नहीं लगा जबकि जीते-जागते हुए हर ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी, मूर्ख ऋतु संतुलन को देखते ही है । जिस देश और ऋतु काल में जो-जो अन्न वनस्पतियाँ, पेड़-पौधे और वन पुष्ट होता है वे सबको दिखता ही है । यही मुख्य बात है । इस प्रकार धरती

का संतुलन बनाम ऋतु संतुलन का क्रम के चलते जीव व वनस्पतियों में संतुलन को देखा गया । धरती के साथ मानव द्वारा किया हुआ कार्यकलाप को देखते हुए मनुष्य स्वयं संतुलित रहा या नहीं रहा इस बात को सोचने के लिये हम बाध्य होते हैं । पहले इस बात को बताया जा चुका है कि विज्ञान विधि से धरती के संतुलन का मापदण्ड उल्लेखित नहीं है और सकारात्मक विधि से मानव ही इसे तय कर सकता है ।

इस शताब्दी के इस दसवें दशक तक मानव ने अनेक समुदाय या भाँति-भाँति समुदाय परम्परा के रूप में अपने-अपने को प्रकाशित किया है। जिसमें जागृति का संकेत भय, प्रलोभन, आस्था, प्रिय हित, लाभ, सुविधा, संग्रह, भोग इन 9 बिन्दुओं में अवसर आवश्यकता और चित्रण के रूप में प्रस्तुत हो पाया ।

प्रिय = इन्द्रिय सापेक्ष प्रवृत्ति प्रक्रिया ।

हित = स्वास्थ सापेक्ष प्रवृत्ति प्रक्रिया ।

लाभ = ज्यादा लेने कम देने की प्रवृत्ति प्रक्रिया।

भय = **भ्रम** = अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति, अव्याप्ति दोष ।

प्रलोभन = संग्रह, सुविधा, भोग, अतिभोग, प्रवृत्ति, प्रक्रिया ।

आस्था = किसी के अस्तित्व को न जानते हुए

मानना (स्वीकारना)।

सुविधा = सौन्दर्य कामना सहित, इन्द्रिय लिप्सा समेत उपभोग करना।

संग्रह = प्रतीक मुद्रा को भविष्य में सुविधा भोग कामनापूर्वक कोष रचना रूप प्रदान करना।

भोग = भय, शंका, रहस्य मानसिकता सहित वस्तु और यौन सेवन मानसिकता और कार्य व्यवहार।

इन परिभाषाओं के ढाँचे-खाँचे में सुदुर विगत से आयी समुदाय परंपराएँ सकारात्मक पक्ष के रूप में चित्रित, व्यवहृत किये जाने का साक्ष्य समाजशास्त्र में (प्रचलित) देखने को मिलता है। इसी के साथ समुदाय-समुदायों के बीच वर्तमान घटनाओं के रूप में घृणा, उपेक्षा युद्ध का भी जिक्र है। इसी के साथ शोषण, अपहरण आदि का भी उल्लेख है। ये सब नकारात्मक पक्ष है। फिर भी इसमें ग्रसित रहने के लिए सभी समुदाय मजबूर है।

समुदायों के रूप में मनुष्य पहचानने का आधार और उनका सीमा चित्रण :-

इस धरती पर मानव में भिन्नताओं सहित परिवार एवं समुदाय को अपनत्व दायरा की मानसिकता के रूप में विकसित

होना पाया जाता है। उल्लेखनीय घटना यह है कि द्वेष मुक्त समुदाय एवं परिवार नहीं हो पाये हैं। हर मनुष्य, समुदाय, को समाज कहता हुआ, समाज कल्याण एवं विकास का भाषण प्रवचन करता है। परिवार का हित चाहता है। परिवारगत कुकर्मों, अत्याचारों को छिपाने में एक दूसरे का सहायक होना सर्वाधिक रूप में देखा गया है। ऐसे समुदाय दो प्रकार के आधारों पर स्पष्ट हुए है। पहला आहार सेवन, वस्त्र, साज-सुविधाओं का प्रस्तुतीकरण, आगन्तुकों-अतिथियों के साथ संबोधन प्रस्तुति या विवाह आदि घटनाओं का निर्वाह विधि प्रक्रिया, गायन, रचना, गाने की लय, ताल, नृत्य इन आधारों पर संस्कृतियों को पहचाना गया है। दूसरे क्रम में संस्कृति को पहचानने का प्रधान कार्य उपासना, आराधना, प्रार्थना अभ्यास, उनमें विन्यास कृत्यों (कर्मकाण्डों)। पहले विधा में बताये गये सभी विन्यास दूसरे क्रम में भी रहता है। दोनों विधा विविधता सहित होना पाया जाता है।

संस्कृति के साथ सभ्यता का पहचान हर समुदाय स्वीकारा है। सभ्यता विशेषकर आगन्तुक व्यक्ति के साथ किया गया संबोधन परस्पर परिचय क्रम, परस्परता में घटित घटना, हाट (बाजार), सभा, सम्मेलनों में राजधर्म, संबंधों में आशय, मार्गदर्शन, निर्देशन का अनुसरण सभ्यता के मूल में स्पष्ट है। संस्कृति सभ्यता विधि व्यवस्था का नाम हर परंपरा, समुदायों के मूल में होना पाया जाता है। धर्म, संविधान और राज्य संविधान दोनों संविधानों में शक्ति केन्द्रित है, दिखती है। सभी राज्य

(आर्थिक राज्यनीति सम्पन्न संविधान) संविधान शक्ति केन्द्रित शासन के रूप में है । इसका व्यवस्था सुविधावादी होना भी देखा गया है ।

धर्म संविधान के अनुसार भी द्वन्द्व, प्रायश्चित, बहिष्कार रूप में शक्ति केन्द्रित रहा है । यहाँ धार्मिक राज्य (ईश्वरीय राज्य) के रूप में मान्यतायें प्रभावित रहा है । हर संविधान के अनुसार सम्प्रभुता, प्रभुसत्ता, अखण्डता, अक्षुण्णता का दावा करते रहते हैं अर्थात सभी संविधानों का प्रभाव सीमा सहित रहना पाया जाता है । उस सीमा में कोई समुदाय रहता ही है ।

समुदाय चित्रण स्वरूप निम्नतः है ।

1. **नस्ल रंग** - भौगोलिक परिस्थिति और वंशानुषंगीयता।
2. **रंग नस्ल** - संचेतना हर रंग नस्ल वाले मनुष्य में जीवन शक्ति, बल, लक्ष्य समान रूप में रहती ही है इसलिये ये सब मानव के रूप में पहचानने योग्य है और आवश्यकता है ।
3. **जाति** - मानव की जाति एक, कर्म अनेक हैं । जबकि विभिन्न आजीविका के आधार पर विभिन्न जाति मानते हैं ।
4. **मत** - प्रमाणिकता को प्रतिपादित करने के क्रम में सम्मतियों का सत्यापन मत है । जबकि वाद-विवाद को आज मत माना जाता है ।

5. **पंथ** - किसी मत/धर्म के आनुषंगीक निश्चित व्यक्ति का पहचान सहित आस्था रखने वाली परंपरा ।
6. **परंपरा** - पूर्णता के अर्थ में समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व पंथ या परंपरा हो, जबकि आज रूढ़ियों को परम्परा माना जाता है ।
7. **धर्म** = धारणा - जिससे जिसका विलगीकरण न हो । मानव धर्म सुख है । सुख, मानव से विभाजित नहीं किया जा सकता । सुख = समाधान = व्यवस्था + व्यवस्था में भागीदारी । वक्तव्य - सुदूर विगत से धर्म का भाषा प्रयोग हुई । धर्म अपने मूल रूप में किसी भी शास्त्र में प्रतिपादित हुआ नहीं । धर्म के लक्षणों को विभिन्न जलवायु में विभिन्न समुदाय धर्म मानते हुए आज तक चल रहे हैं ।
8. **भाषा** - सत्य भास जाए यही **भाषा** है । भाषा के प्रयोग में हम संप्रेषणा शब्द प्रयोग करते हैं । पूर्णतया प्रेषित हो जाना **संप्रेषणा** का तात्पर्य है । इस प्रकार भाषा संप्रेषणापूर्वक परंपरा में सार्थक होना उसकी महिमा है । जबकि सत्य मानव कुल में प्रमाणित न होने के कारण भ्रमित रूप में अपने इच्छा, कामना और कल्पनाओं को एक दूसरे तक पहुँचाने के लिये भाषाओं का प्रयोग किया गया ।
9. **देश** - इस धरती पर किसी सीमित भौगोलिक परिस्थिति

सहित क्षेत्रफल है ।

वक्तव्य - इस क्षेत्रफल में निवास करने वालों को उस क्षेत्र का नाम दिया जाता है ।

10. धन - संग्रह के आधार पर । शोषण पूर्वक ही संग्रह होता है।

11. पद - भ्रमित रूप में मान्य शक्ति केन्द्रित शासन में भागीदारी।

जागृति क्रम में 2 पद (पशुमानव, राक्षसमानव) और जागृति पूर्वक तीन पद है । अस्तित्व में 4 पद हैं । प्राणपद, भ्रांतपद, देवपद और दिव्यपद (पूर्णपद) हैं । जिसको सटीक देखा गया है ।

ऊपर वर्णित क्रम में विविध समुदायों के रूप में पनपता हुई परंपरायें अपने-अपने परंपरानुगत विधि से पीढ़ी से पीढ़ी को क्या-क्या सौंपते आये और इस बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में जीती जागती पीढ़ी को क्या से क्या सौंप गया है । इन मुद्दों पर एक सामान्य अवलोकन आवश्यक है ।

परंपरा विगत में मानव, मानव के साथ क्या किया ? मानव मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ क्या किया? यही दो अवलोकन का मुद्दा है ।

अभी तक अनेक समुदाय परंपराओं के रूप में विविध आधारों के साथ पीढ़ी से पीढ़ी को अनुप्राणित करता हुआ

देखा जा रहा है । **अनुप्राणित** करने का तात्पर्य जिस-जिस परंपरा जिन-जिन आधारों अथवा मान्यताओं के साथ मानसिकता को, प्रवृत्तियों को, प्राथमिकताओं को अपनाते हुए आये हैं उसे अग्रिम पीढ़ी में स्थापित करने के लिए किया गया क्रिया-प्रक्रिया और संप्रेषणाओं से है । यह भी हम हर परंपराओं में देख पाते हैं कि वही मानसिकताएं विविधता के साथ प्रचलित है । विविधताओं में से अपना-पराया एक प्रधान मुद्दा है । इनके समर्थन में संस्कार, शिक्षा, संविधान और व्यवस्था परंपराएँ प्रधान हैं । **दूसरे विधि** से संस्कृति सभ्यता विधि-व्यवस्था के रूप में होना देखा जाता है । **तीसरे विधि** से रोटी, बेटी, राजनीति और धर्मनीति में एकता के आधार पर भी समुदायों का कार्य-व्यवहार दिखाई पड़ती है ।

शिक्षा विधि प्राचीन समय से ऊपर कहे तीन प्रकार के एकता-अनेकता के आधार पर संपन्न होता हुआ इतिहासों के विधि से समझा जा सकता है । हर संविधान जो-जो धर्म और राज्य का संयुक्त मानसिकता के साथ चलने वाले सभी समुदाय अथवा प्रत्येक समुदाय अपने-अपने धर्म, अथवा राज्य मानसिकता के आधार पर और उसके समर्थन में शिक्षा-संस्कारों को स्थापित करने में सतत जारी रहा । कालक्रम से अधिकांश देशों में धार्मिक राज्य के स्थान पर आर्थिक राज्य, संविधान, विज्ञान के सहायता से स्थापित होता आया क्योंकि विज्ञान की सहायता से सामरिक दक्षता को बढ़ाने का अरमान प्रत्येक राजसंस्था का अपरिहार्य बिन्दु रहा । इसी सत्यतावश विज्ञान

और तकनीकी इन्हीं अपरिहार्यता की सहयोगी होने के आधार पर विज्ञान का बढ़ावा, बिना किसी शर्त के होता रहा ।

विज्ञान मूलतः प्रकृति पर शासन करने के लिये अथवा प्रकृति पर विजय पाने के लिए शुरूआत किया । प्राकृतिक घटनाओं से भयभीत अथवा प्राकृतिक संपदा से प्रलोभन मानस सम्पन्न मानव इस आवाज को स्वीकार कर लिया, अपने पक्ष का है मान लिया । इसी बीच विज्ञान भले ही सामरिक मानसिकता की पुष्टि में कार्य किया हो क्योंकि उसे राजाश्रय की आवश्यकता रही है । साधारण रूप में समीचीन परिस्थिति के अनुसार जो कुछ भी विज्ञान और तकनीकी से संभव हो पाया उससे मनुष्य सहज देखने-सुनने-करने की जो प्रवृत्तियाँ रही है, जिसको हर मनुष्य ही जीवन सहज प्रवृत्तियों के आधार पर (चाहे वह भ्रमित रहा हो, निर्भ्रमित रहा हो) करते ही आया है । इसमें पारंगत व्यक्ति का निश्चित गति दूरी के आधार पर थी और बारम्बार उसी कार्य को सटीक रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता व प्रवृत्तियाँ कार्यों के रूप में प्रमाणित थी उससे कहीं अधिकाधिक, मानव में ही वांछित रूप में गतियाँ स्थापित हुई । यथा दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन प्रौद्योगिकी स्वचालित, यंत्र-उपकरण कृषि कार्यों का यंत्रीकरण के रूप में मानव परंपरा को करतलगत हुआ । भौतिक रासायनिक शोध जितने भी हो पाये उन्हीं के आधार पर जितने भी यंत्र, रचनाएं सम्पन्न हुई उसका उपयोग सामान्य जनता के लिये उपलब्ध हो गया। मानसिकता और समझ समुदाय मानसिकता का मूलभूत आधार

जो पहले चित्रित कर चुके हैं वह यथावत रहते हुए देखने को मिलता है ।

हर समुदायों में संस्कृतियों के सम्बन्ध में जो आधार देखने मिलते है वह यही है कैसा गाते है, कैसा नाचते हैं, कैसा शादी करते हैं, जन्म और मृत्यु घटनाओं में कैसे उत्सव मनाते हैं, कैसे अलंकार करते हैं, यही सब प्रधान मुद्दे हैं । इसके बाद आज की स्थिति में अति प्रधान मुद्दा स्वास्थ संरक्षण है । स्वास्थ्य संरक्षण का प्रमाण संग्रह, सुविधा, भोग, संघर्ष कार्यों के साथ देखना आज की स्थिति में प्रचलित है । सभी समुदायों के साथ कोई न कोई भाषा बना ही रहता है । भाषा, संग्रह, सुविधा और सामरिक क्षमता के योगफल में विकसित, अविकसित, विकासशील के नामों से देशों को, समुदायों को पहचानने की तर्ज अथवा समीक्षा आज प्रचलित है ।

आज की स्थिति में विज्ञान शिक्षा की स्वीकृति सभी देश, सभी समुदायों में सहज रूप में होना पाया जाता है । ऐसे विज्ञान और तकनीकी से जो घटित हुआ वह पहले स्पष्ट हो चुका है । विज्ञान और वैज्ञानिकों का तर्ज प्रकृति पर विजय पाने की ठोक बजाऊ घोषणा रही, वह धीरे धीरे धीमा होता हुआ देखने को मिलता है । विशेषकर विज्ञान संसार अपने संपूर्ण ज्ञान प्रक्रिया सहित संतुलन और संभावना के पक्षधर के रूप में दिखते हैं । इनके अनुसार संतुलन का तात्पर्य अपने प्रयोग विधि से जो कुछ भी घटना रूप में यंत्रों को प्राप्त किये यही इनका आद्यन्त प्रमाण है । ऐसे यंत्र और उनके अनुमानानुसार

कार्य कर जाना संतुलन मानते हैं और ऐसे यंत्र अनेक बनने की संम्भावनाओं पर ध्यान दिये रहते हैं। जबकि मानव कुल का संतुलन मनुष्य - मनुष्य से, मनुष्य और नैसर्गिकता से अपेक्षित है । यह प्रत्येक व्यक्ति अपने में समझ सकता है जबकि संतुलन मानव का सह-अस्तित्व सहज आवश्यकता उपलब्धि और उसका उपयोग-सदुपयोग और प्रयोजनों के रूप में होना स्वाभाविक है । प्रयोजन सदा ही संतुलन है जिसकी अपेक्षा सर्वमानव में होना पाया जाता है । संतुलन ही अभय समाधान के रूप में और अभय समाधान सहज विधि से सह-अस्तित्व क्रम में समृद्धि का होना पाया जाता है। **सह-अस्तित्व क्रम** का तात्पर्य चारों अवस्थाओं में परस्पर उपयोगिता, पूरकता ही प्रमाणित होने से है । **अभय-समाधान क्रम** का तात्पर्य व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी से है । **समृद्धि** का तात्पर्य परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन से है । यही विधि से ग्राम परिवार-विश्व परिवार पर्यन्त समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व प्रमाण क्रम में संतुलन और उसकी निरंतरता मानव परंपरा सहज होना निश्चित सम्भावना है, जिसकी आवश्यकता सर्वमानव में होना पाया जाता है । सम्भावनाएं नित्य समीचीन है।

इस प्रकार संतुलन का अर्थ सुस्पष्ट हुआ । इसी क्रम में आदर्शवादियों का ईश्वरवाद, भक्तिवाद, विरक्तिवाद, उपासनातंत्रवादियों के अनुसार संतुलन का जिक्र हुआ है । विरक्ति, भक्ति, ईश्वर और आध्यात्मवादियों ने मोक्ष को

संतुलन स्थली माना है । इनके संतुलन का अथवा मुक्ति का तात्पर्य दुःखों से मुक्त होना, ऐसे दुःख मायामोहवश, अज्ञानवश, पापवश, स्वार्थवश होना बताया गया है । विरक्ति, भक्ति, त्याग, वैराग्य, योग, अभ्यास, पूजा, पाठ, प्रार्थना आदि उपायों से दुःख निवृत्ति के लिये मार्ग बताया गया है । ईश्वर, परमात्मा, कृपा से मुक्ति बताए ।

पाप मुक्ति के क्रम में पापमुक्ति को निश्चित स्थान, व्यक्ति के सम्मुख किये गये पापों को स्वीकार किया जाना निवारण के लिए विविध उपाय बताया गया है । ऐसे पाप स्वीकृति से पापकार्यो में प्रवृत्ति क्षीण होगी, ऐसा भी सोचा गया है ।

स्वार्थ, दुरावा-छुपावा पाप के लिये कारण बताया । स्वार्थी के साथ संग्रह, सुविधा, भोग, अतिभोग, द्वेष यही प्रमुख विकारों को स्वीकारा गया । धार्मिक राजनीति के मूल में संग्रह-सुविधा अर्हता को ईश्वर प्रतिनिधी, राजा राजगद्दी और ईश्वरीय मार्ग-दर्शक एवं ईश्वर प्रतिनिधि के रूप में गुरू को मानते हुए सर्वाधिक संग्रह-सुविधा के लिये हर मनुष्य से अपर्ण-समपर्ण, भाग और कर के रूप में प्रभावित रहना देखा गया । कालक्रम विज्ञान युग के अनंतर अधिकांश लोगों में संग्रह, सुविधा, भोग की आवश्यकता जग गई । इसके लिये संघर्ष ही एक मात्र रास्ता दिखाई पड़ा । इसलिये हर व्यक्ति, परिवार, समुदाय परस्पर संघर्ष के लिये अपने को तैयार करता

रहा । आज भी सर्वाधिक व्यक्ति, परिवार, समुदाय संघर्ष के लिए तैयारी करता हुआ देखने को मिलता है। इसे हर व्यक्ति देख सकता है । भक्ति विरक्ति के मार्ग-दर्शकों के रूप में पहचाने गये विविध प्रकार के धर्म गद्दी यती, सती, संत, तपस्वी, ज्ञानी, भक्त, विद्वान ये सब अपने तौर पर बहुत सारा प्रवचन उपदेश करने के उपरान्त भी आमूलतः कोई प्रमाण परंपरा के रूप में व्यवस्था और शिक्षा के अर्थ को सार्थक बनाने के लिये अभी तक पर्याप्त नहीं हुआ। दूसरी विधि से शिक्षा व्यवस्था, अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में, से, के लिये आवश्यकीय सूत्र-व्याख्या प्रमाण विधियाँ किसी एक परंपरा से अथवा संपूर्ण परंपराएं मिलकर अध्ययन गम्य विधि से प्रस्तुत नहीं हो पायी । इन्हीं कारणवश पुनर्विचार की आवश्यकता समीचीन हुई । विकल्प प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत है ।

आस्थावादी विचारों, प्रतिबद्धताओं, सहित व्यक्त किया गया निष्ठा को पंथ, संप्रदाय, मत और धर्म के नाम से बताया गया है । ऐसी निष्ठाएँ एक-एक विभिन्नता के साथ देखने को मिली । यही आदर्शों का भी आधार होना पाया गया । ऐसी निष्ठाओं को सर्वाधिक लोग आदर्श मानकर स्वीकारते आये हैं । जैसे - 1. पूजा करने का तरीका, 2. इसके लिए उच्चारण का तरीका, 3. आशयों का तरीका, 4. मान्यताओं का तरीका। इन सबके मूल में पाये जाने वाले रहस्यमयी आधार जैसे - ईश्वर, देवी-देवता, ब्रह्म, परमात्माओं का स्वरूप, कार्य, महिमा वर्णन भी अतिरहस्यमयी होने के रूप में बताये जाने वाले

वांग्ङमय को पावन ग्रन्थों के रूप में माना जाता हैं । ऐसे वांङ्गमय और मान्यताओं, महिमावर्णनों के साथ अनेकानेक व्यक्ति जुड़कर अनेक प्रकार से साधना, अभ्यास करने वाले लोग ही साधु, संत, तपस्वी, यति-सती, सब प्रख्यात हुए हैं । यही महापुरूषों के नाम से भी ख्यात हैं । ईश्वर ही अनेक अवतारों के रूप में, अवतारी पुरूष और अवतारों के नाम से स्थापित हुए । यह सब होने के उपरान्त भी समुदाय और उसकी मान्यताएँ अन्तर्विरोधी - बाह्य विरोधों सहित होना पाया जाता है । **अंतर्विरोध** का तात्पर्य जिस प्रकार के आदर्श वांङ्गमय - आराधना आदि को मानते हैं उसी में मतभेद होने से है । बाह्य विरोध का तात्पर्य एक-दूसरे को विधर्मी-अधर्मी, श्रेष्ठ-नेष्ठ क्रम में एक दूसरे के बीच दिखने वाली घृणा, उपेक्षा, भय और आतंक साक्षी है । मतभेदों, विरोधों के साथ भय और आतंक का होना स्वाभाविक है । इसके मूल में घृणा उपेक्षा तिरस्कार ये सब कारण है । इन आधारों पर अपने में अपर्याप्त रहते हुए अन्य समुदायों के साथ विरोधों को बनाए रखते हैं । ऐसे ही समुदाय विधि राज्य का आधार है । राज्य भी विरोधों के साथ अर्थात अड़ोस, पड़ोस देशों को दुश्मन मानते हुए देशवासियाँ गलती करते हैं, इसको मानते हुए पूरा संविधान को कानून-कायदा प्रक्रियाओं को स्थापित कर लिये हैं । यही मुख्य मुद्दा है कि अन्तर्विरोध, बाह्यविरोध रहते हुए समुदाय - समुदाय के बीच सामरस्यता संगीत हो कैसे ?

उक्त सभी प्रकार की विविधताएं राज्य और धर्मगद्दी के

रूप में स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो पाते हैं । इन्हीं गद्दियों के कार्यक्रम कार्यवाही के फलस्वरूप अपने में अथवा अपने-अपने में अपरिपूर्णता, अपर्याप्तता के परिणाम में विज्ञान का स्वागत हुआ । इस शताब्दी के पूर्व विज्ञान तकनीकी दूर-दूर तक प्रवेश कर चुका था । इस शताब्दी के मध्य तक सब जगह पहुँच गया । इसके बावजूद समुदाय और विविधता यथावत बना ही है । अन्तः कलह - बाह्य कलह भी वैसे हैं । इसलिये विज्ञान को अपनाने मात्र से परस्परता में अथवा अपने-अपने समुच्चय में मतभेद और विरोधों का उन्मूलन नहीं हो पाया । यही हर समुदाय का अपर्याप्तता का अर्थात अपने में असंतुलित होने का द्योतक है । इसको परिवार में द्वेष, गांवों में द्वेष, नगरों में द्वेष और गलती अपराधों शोषण के रूप में सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक असंतुलन के रूप में दिखता है । हर समुदाय संतुलित रहना चाहता ही है । इसी आधार पर हर

मानव संतुलित रहना चाहता है । संतुलन का मूल तत्व आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक विधा ही है । सामाजिकता राज्य समेत ही वैभवित होना पाया जाता है । राज्य का तात्पर्य ही वैभव है । समाज - वैभव का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में मानव अथवा सम्पूर्ण मानव उन्मुख होने से, प्रमाणित होने से हैं । इसीलिए समाज सहज अर्थ सार्थक होने के लिये हम समाज और समाजिकता का अध्ययन करेंगे ।

0-0-0

2

व्यवहारवादी समाजशास्त्र की परिभाषा

परिभाषा - वर्तमान में विश्वास, मौलिक अधिकार पूर्ण विधि से मनुष्य, मनुष्य के साथ पहचाना गया । संबंध में मूल्य मूल्यांकन पूर्वक उभय तृप्ति, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन में भागीदारी, मूल्य, चरित्र नैतिकतापूर्ण आचरणपूर्वक, व्यवस्था सहज प्रमाण को प्रस्तुत करते हुये समग्र व्यवस्था में भागीदारी व भागीदारी के प्रति सम्मति का सहज स्वरूप में प्रमाणित होना ही व्यवहारवादी समाज है; और **शास्त्र** का तात्पर्य शिक्षा-संस्कारपूर्वक ग्रहण योग्य सभी उपक्रम और कार्यप्रणाली है । इस प्रकार व्यवहारवादी समाज व शास्त्र का धारक, वाहक मानव ही होना स्पष्ट है ।

विश्वास का तात्पर्य वर्तमान में सर्वतोमुखी समाधान और उसकी निरंतरता से है, **सर्वतोमुखी** समाधान का तात्पर्य अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन (अस्तित्व में मानव स्वयं अपने अविभाज्यता को दृष्टा पद प्रतिष्ठा रूपी महिमा सहित वर्तमान में होने की स्वीकृति और उसमें दृढ़ता और अस्तित्व ही

सह-अस्तित्व । सह-अस्तित्व में ही विकास जागृति रासायनिक भौतिक रचना-विरचना सहज प्रमाणों की स्वीकृति सहित प्रमाणीकरण क्रिया सम्पन्नता) से है । **समाज** शब्द का अर्थ भी उक्त स्पष्ट परिभाषा और उसके आशयों को पुष्ट करता है यथा पूर्णता के अर्थ में किया गया यत्न सहित गति है । **यत्न** का तात्पर्य जिस रूप में समाधान और उसकी निरंतरता प्रमाणित होता है । व्यवहार में यत्न को प्रयत्न शब्द का भी प्रयोग किया जाता है । **प्रयत्न** का तात्पर्य प्रज्ञा सहित यत्न से है । **प्रज्ञा** का तात्पर्य फल परिणामों को भले प्रकार से अथवा संपूर्ण प्रकार से जानते हुये मानते, पहचानते हुये निर्वाह करने की क्रिया कलापों से है । समाज की परिभाषा स्वयं जिन-जिन तथ्यों को परम्परा में प्रमाणित करने को इंगित करता है इसे सार्थक बनाने की कार्यक्रमों को सामाजिक कार्यक्रम कहेंगे, क्योंकि हर व्यक्ति समाज परिभाषा का प्रमाण होना एक सर्व स्वीकृति तथ्य है । यह भी इसमें मूल्यवान अथवा आवश्यकीय स्वीकृत है कि मानव ही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का धारक-वाहक होने योग्य इकाई है, साथ ही इसकी अनिवार्यता भी स्वीकृत है, नैसर्गिक रूप में अर्थात, विकास और जागृति क्रम सहज रूप में जागृति नित्य समीचीन है । जागृति वर्तमान में ही प्रमाणित होती है, प्रमाणित करने वाली इकाई केवल मानव है। शुद्धतः इसका मूल रूप मानव अपने स्वत्व रूपी मानवीयता अथवा मानवत्व में, से, के लिए जागृत होना ही है । मानवत्व मानव को स्वीकृत वस्तु है । मानवत्वपूर्वक ही मनुष्य अपने

गौरव और वैभव को स्थिर बनाना चाहता है ऐसी मानवत्व की अपेक्षा को विविध प्रकार से मनुष्य व्यक्त करता ही है । इसी क्रम में बहुमुखी अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन होने के आधार पर बहुमुखी कार्य सम्पन्न होना भी एक आवश्यकता रहा है । ऐसी सुदृढ़ आधार पर ही सुदूर विगत से ही कम से कम चार आयामों में अपने परम्परा को बनाये रखे है । जैसा शिक्षा, संस्कार, विधि और व्यवस्था। दूसरे विधि से संस्कृति, सभ्यता, विधि और व्यवस्था है । इसे सभी समुदायों में स्वीकारा हुआ और निर्वाह करता हुआ देखने को मिलता है चाहे सार्थक न हो । इससे सुस्पष्ट हो जाता है भले ही मानव कुल अनेक समुदायों में बंटे क्यों न हो यह चारों अथवा चौ-दिशा वादी परम्परायें सभी देशकाल में सभी समुदाय में देखने को मिला । इन चारों आयामों में मानवीयता को समावेश कर लेना ही मानवीयतापूर्ण परम्परा का तात्पर्य है । जैसा मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार, विधि व व्यवस्था संस्कृति सभ्यता ही मानव परम्परा में अखण्डता का सूत्र है ।

मानव परम्परा का संतुलन अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणिक होना सहज है । यह दोनों अविभाज्य रूप में प्रतिष्ठा और गरिमा है । मानव कुल का संतुलन सर्वतोमुखी समाधानपूर्वक ही सम्पादित होना पाया जाता है क्योंकि सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न परिवार संतुलित रहना पाया गया है । हर परिवार में एक से अधिक व्यक्तियों का होना सर्वविदित है अथवा सम्मिलित कार्य व्यवहार का होना पाया

जाता है। परिवार की परिभाषा भी इसी तथ्य को पुष्ट करता है यथा परिवार में प्रस्तुत अथवा सम्मिलित सभी व्यक्ति एक दूसरे के संबंध को पहचानते हैं, निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभय तृप्ति पाते हैं और परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य में सभी पूरक होते हैं । इन्हीं आधारों पर समाधान और समृद्धि का प्रमाण प्रस्तुत हो पाता है । मानव का परिभाषा समाहित रहता ही है यथा मनाकार को साकार करने वाला मनः स्वस्थता सहज प्रमाण प्रस्तुत करने वालों के रूप में होना देखा गया है ।

उद्देश्य - समाज परिभाषा में पूर्णता की ओर निर्देश है, अस्तित्व में परमाणु का विकास और जागृति सहज अध्ययन क्रम में गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता और इसकी निरंतरता को देखा गया है । देखने का तात्पर्य समझने से ही है । परमाणु का वैभव को, अस्तित्व में व्यवस्था की मूल इकाई के रुप में इनके कार्य कलापों को देखा गया है । यह जड़-चैतन्य प्रकृतियों के संबंध में स्पष्टतया समीकरण होता है। परमाणुओं की रचना परमाणु अंशों से रचित रहना पाया जाता है । परमाणु अंश अस्तित्व में रहते ही है । यदि कोई अंश देखने को मिलता है तब वह आवेशित अवस्था में ही होना पाया जाता है । हर अवस्था में आवेश अव्यवस्था का द्योतक है जैसे मनुष्य में पायी जाने वाली छैः प्रकार के आवेश अव्यवस्था का द्योतक होना देखा गया है । मनुष्य में घटित होने वाले

आवेशों को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मात्सर्य के रूप में गणना किया गया है । यह प्रसिद्ध रूप में मानव कुल में चर्चित, विश्लेषित, निष्कर्षित विवशता है। **प्रत्येक आवेश विवशता के रूप में मानव सहज मानस विधि से मूल्यांकित होता है । मानव सहज मानसिकता मानवीयतापूर्ण विधि से कार्यरत रहना पाया जाता है ।**

किसी व्यक्ति, परिवार, समुदाय को अथवा संपूर्ण समुदायों को विवशतायें स्वीकृत नहीं हो पाते हैं । यही मुख्य बिन्दु है जिस पर विचार करना आवश्यक है । **विवशताओं से मुक्ति हर एक मनुष्य में आवश्यकता के रूप में होना पाया जाता है, ऐसे विवशता का मूल रूप ही बंधन है । ऐसे बंधनों के स्वरूप को आशा, विचार, इच्छा बंधनों के रूप में देखा गया है । यह जीवनगत क्रिया रूपी आशा, विचार, इच्छायें भ्रमित रहने पर्यन्त बंधन का, बंधन पर्यन्त आवेशों का, सम्पूर्ण आवेश पर्यन्त विवशताओं का होना आंकलित होता है ।** इसे प्रत्येक व्यक्ति निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षणपूर्वक प्रमाणित कर सकता है ।

मानव जीवन के अध्ययन क्रम में यह पाया गया है, जीवन ही भ्रम अथवा अजागृतिवश किये जाने वाली क्रियाकलाप भ्रम के रूप में बंधन को और जागृति पूर्णतापूर्वक बंधन से मुक्ति को अनुभव करना एक सहज क्रिया है । इस प्रकार जीवन जागृति ही बंधन मुक्ति का स्वरूप होना, कार्य

होना, व्यवहार होना, व्यवस्था और आचरण होना पाया गया है।

जागृति मूलक विधि से जागृतिगामी कार्यक्रम सफल होता है । जागृति मूलक अभिव्यक्ति संप्रेषणाओं को कोई न कोई एक मानव अपने अनुसंधान पूर्वक निश्चित चिंतन, अभ्यास, विचार, अनुभव प्रमाण के आधार पर ही इसका अभिव्यक्ति, संप्रेषणा संभव होना पाया जाता है । जागृति सर्वमानवों में स्वीकृत तथ्य है जैसे प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक कार्य, व्यवहार विचारों को जागृतिपूर्वक ही सटीक मानने का प्रमाण वर्तमान होना पाया जाता है । हर व्यक्ति जागृति पूर्वक ही दिशा, मार्ग, कोण, संस्था, विकास, ह्रास, जागृति परमाणु, अस्तित्व, सह-अस्तित्व, मूल्य, मूल्यांकन, समाधान, प्रमाण-प्रमाणिकताओं को अभिव्यक्त व संप्रेषित करता है, मार्ग और दिशा इन दो मुद्दों पर विचार कर देखें ।

मानव यह आदिकाल से मानते ही आया है, मुझको दिखता है कि हमें दिखता है । देखने की मूल क्रिया आँखों को माना गया है, आँखों में जैसा भी दिखता है वह हाथों से वैसा, हाथों के जैसा नाक से, नाक जैसा कान से, कानों से जैसा जीभ से, न दिखकर हर वस्तु का विभिन्न आयाम उन ज्ञानेन्द्रिय से पहचान में आता है । जैसे कि एक आँवले को आँखों से देखने से, जीभ से, और हाथों से देखने का विभिन्न आयाम दिखती है, गंध से भी भिन्न आयाम दिखाई पड़ती है,

आँखों से केवल आकार, आयतन, घन में से आकार आयतन का कुछ अंश समाती है और चीजें आँखों में आती नहीं । इन आँखों से देखी हुई एक मार्ग को देखने पर भी मार्ग का चौड़ाई कुछ दूरी तक लम्बाई आंखों से आता है । कहाँ तक मार्ग गया है, वहाँ तक आँखों से दिखाई आता नहीं है; जहाँ तक आदमी को जाना है वहाँ तक मार्ग है, यह तथ्य समझ में आता है ।

यह भी मानव सोच कर देखा है, स्मृति के आधार पर यह सब समझकर जो आँखों में नहीं आता है वह सब सुना हुआ है । आदमी से सुनकर स्मृतियों के रूप में क्या चीज पाया यह सोचा गया । उनमें बहुत दिन तक यह मानते रहे सिर में कोई चीज है वहाँ स्मृतियाँ रहती है । अन्ततोगत्वा बुद्धिजीवी और तकनीकी मानव ने सिर को भी खोलकर देख लिया वहाँ भी शरीर के अंग अवयव के रचना में भागीदारी किया हुआ वस्तु और द्रव्य ही दिखाई पड़ी । इसी के साथ नस जालों का सूक्ष्म-सूक्ष्मतर बिछाई देखा गया। पहले से पता लगाये हुए मांस-पेशियाँ भाग में था ही-आँख, कान, नाक, गल तंत्र और सिर भाग में बनी हुई ये मेधस तंत्र और मेधस तंत्र से जुड़ी हुई विधियों को अध्ययन किया जा चुका है । इसी के साथ हृदय तंत्र, फुफ्फुस तंत्र वृक-यकृत तंत्रों को और मलाशय, गर्भाशय, मूत्राशय व अन्नाशय पक्वाशय, पित्ताशय सभी प्रकार के रस ग्रन्थियों को, गल ग्रन्थियों को, स्वर ग्रन्थियों और तंत्रों को चर्म, रस, वसा, हड्डी, रक्त, पुष्टि और कोशाओं में निहीत प्राण सूत्रों उसमें समाहित रचना विधि संकेतों तक अध्ययन करने का

प्रयास मानव ने किया है । इसका अन्तिम प्रक्रिया और मूल प्रक्रिया को इस प्रकार देखा गया है कि रासायनिक द्रव्यों, प्राणकोशाओं और रचना सूत्र सम्पन्नता के आधार पर संपूर्ण रासायनिक रचनायें और विरचनायें सम्पन्न होता हुआ देखने को मिलता है । इसी विधि से प्रत्येक मनुष्य शरीर रचनायें गर्भाशय या गर्भाशय सदृश्य वातावरण में रचित होता हुआ देखा गया । ऐसा शरीर रचना का स्वरूप उपर संक्षिप्त रूप से बताया गया ।

रासायनिक भौतिक योग-संयोग के रूप में संपूर्ण मनुष्य शरीर जीवों का शरीर और प्राणावस्था के संपूर्ण प्रकार अन्न-वनस्पतियों का रचना विरचना अध्ययनगम्य हो चुकी है । इन अध्ययनों में पूर्णता, परिपक्वता और समग्रता के साथ अन्तर संबंध और बाह्य संबंध प्रयोजन और निष्कर्षों को पाने के लिए प्रयास चल ही रहा है । ऐसे प्रयास विविध देश काल में सम्पन्न होता हुआ आया है । यह मानव परम्परा में विदित तथ्य है ।

शरीर रचना संबंधी तथ्यों के साथ-साथ जितने भी मानव अपने में जीव प्रकृति अथवा जीव चेतना के साथ निर्णय लिये गये वह सब अधूरा अथवा संदिग्ध अथवा निराधार अवैधता को वैध मानने वाला होना देखा गया । जैसा रचना के अनुरूप चेतना कार्य करने के आधार पर अर्थात् शरीर वंशानुषंगीय विधि से कार्य करने की विधि पर विश्वास किये अथवा मान लिए । हर दिन, हर क्षण, हर पल मनुष्य का निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण विधियों के चलते इसके निराधरता स्पष्ट होता आया ।

जैसा रचना क्रम में मेधस तंत्र एक अद्भुत बहुप्रक्रिया, बहु नस जाल तंत्र, पावन और सुरक्षा विधि से निर्मित-रचित रहते हुये उसमें स्मृति क्षेत्र को पता लगाते निराधरता की स्थली में हम होना पाते हैं । इसी क्रम में रोगादि की । जबकि हर देशकाल में विभिन्न वातावरण नैसर्गिकता और संयोग विधियों के अनुपात प्रक्रियाओं के अनुरूप और मानव के आहार-विहार सहित संयोगों के फलन में अथवा फलस्वरूप ये रोग निरोगता को पहचानना संभव हुआ है और यह सदा सदा के लिये मानव परम्परा में से प्रमाणित होता ही रहेगा । इस प्रकार मनुष्य शरीर का अध्ययन और जीव शरीर का अध्ययन से वंश का स्वरूप स्पष्ट होता है । यह डिम्ब और शुक्र सूत्र का संयोग, उसकी पुष्टि और पुष्टि के लिए प्राप्त द्रव्यों की पवित्रता, शुद्धता और संयोग विधियों के आधार पर विविध प्रकार से प्रभाव पड़ते हुये देखने को मिलती है । इन्हीं आधारों पर एक ही माता पिता से संभावित, प्रमाणित, प्रस्तुत संतानों में विविधतायें होना पाया गया । यथा मूर्ख माता-पिता के संतान विद्वान और विद्वान माता-पिता के संतान मूर्ख भी होता हुआ उन्हीं उन्हीं के रूप में होता हुआ और उनसे भिन्न रुप होता हुआ भी देखा गया है । इन जीते जागते प्रमाणों से वंशानुषंगीय का स्थिरता, विश्वसनीयता आवश्यकता और उसकी सार्थकता अध्ययन गम्य नहीं हो पाया । इन इच्छाओं के प्रति विश्वास भी किया एवं अथक प्रयास किया । ऐसे अपेक्षित संतुलन बिन्दु को पाया नहीं है । इसकी गवाही यही है । 'मात्रा का स्थिर बिन्दु' मानव

आज तक पाया नहीं। इसका कारण परमाणु अंश में मूल मात्रा (स्थिर मात्रा) को खोजने गये जबकि अस्तित्व सहज व सह-अस्तित्व में अथवा सह-अस्तित्व रूपी प्रमाण रूप में किसी न किसी परमाणु में और उस परमाणु सहज व्यवस्था में भागीदारी के रूप में कार्यरत रहता हुआ प्रत्येक अंश देखा गया है । इसलिये मूल मात्रा का स्वरूप परमाणु है न कि परमाणु अंश ।

2. जैविकता का मूल रूप प्राणकोशा होना हम पहचान चुके हैं, परम्परा इसको स्वीकार भी चुका है । इसके मूल रूप में प्राणकोषा, जो स्पंदनशील कार्यकलाप सहित देखने को मिलता है, वह किस विधि से स्पंदन क्रिया में परिवर्तित हो जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर पाना भी मानव सहज अपेक्षा रही है । जबकि प्राणकोषाओं को खोल देने (तोड़ देने) पर अणु और उसके मूल में परमाणु ही होना पाया गया है । इसी क्रम में परमाणु के मूल रूप परमाणु अंश को मात्रा का आधार रूप होने का अनुमान मानव ने किया । सह-अस्तित्व सहज रूप में प्रत्येक परमाणु एक से अधिक अंशों के साथ गतिपथ सहित निश्चित आचरण सम्पन्न रहना पाया जाता है । इसी गवाही से सह-अस्तित्व में ही मात्रा, सह-अस्तित्व में ही व्यवस्था (निश्चित आचरण) और निश्चित रचना स्पष्ट हो जाती है । इन तीनों विधाओं को स्पष्ट करने के क्रम में ही श्रम, गति, परिणाम रूपी क्रिया को स्पष्ट करना देखा गया है । इस प्रकार परमाणु मूल मात्रा, अनेक परमाणुओं से एक अणु, अणु अपने में एक निश्चित मात्रा, एक से अधिक प्रजाति के अणु निश्चित

अनुपात (मात्रा) सहित संयोग, वातावरणिक, नैसर्गिक सह-अस्तित्व सुलभता, उष्मा का अनुपात के फलस्वरूप में अणुओं का अपने-अपने आचरण सर्वथा त्यागकर तीसरे आचरण के लिये सर्वथा तत्परता ही रासायनिक उर्मि के रूप में देखने को मिलता है । ऐसे अनेक रसायन द्रव्य भौतिक रूप में किसी भी धरती में संभावित होना सहज है । ऐसे धरती में से एक धरती यह भी है । ऐसे अनेक प्रकार के रसायन द्रव्यों से समृद्ध होने के उपरान्त रासायनिक द्रव्यों का मिश्रण होना पाया जाता है । जैसे अम्ल और क्षार का मिश्रण । इसी प्रकार रसायन द्रव्य ठोस, तरल, वायु के रूप में वैभवित होना देखा गया है । ऐसा ठोस स्वरूप ही प्राण कोषाओं के रूप में भी (प्राण-कोषा रूपी रचना के रूप में भी) होना पाया जाता है । ऐसी प्राण कोषाओं में प्राण-सूत्र स्थापित होना देखा गया है । ऐसे प्राण सूत्र सहित प्राण कोषा रसायन द्रव्य में आप्लावित रहते हुए निश्चित उष्मा एवं दबाव सहित स्पंदनशील होना स्वाभाविक है । यही प्राणकोषा का सार्थक रूप है । ऐसे प्राण कोषा में निहित प्रत्येक प्राण-सूत्र जब तक अपने जैसे ही एक-एक प्राण सूत्र को बनाते हैं अर्थात दोनों मिलकर पुनः दो प्राणसूत्र को निर्मित कर लेते हैं तब तक यह एक कोशीय रचना के रूप में पहचाना जाता है । जब यही प्राणसूत्र अपने ही जैसे दो-दो के दो जोड़े बना लेते हैं तब द्विकोषीय रचना कहलाते हैं । प्राणसूत्र का रचना सम्पन्न होते ही उसके लिये आवश्यकीय कोषा समीचीन रहता ही है । यही रासायनिक उर्मि का मर्म और वैभव है ।

इसके आगे एक-एक प्राणसूत्र अपने जैसे दूसरे सूत्र को बना लेते हैं और पुनः 2-2 बना लेते हैं । इस विधि से बहुकोषीय रचना विधि स्थापित है ।

इस क्रम में एक प्रजाति की प्राणावस्था की रचना अपनी पराकाष्ठा तक सम्पन्न होने के उपरान्त, दूसरे प्रजाति की रचना के लिए उन्हीं प्राणसूत्रों में लहरे उठती हैं जिसे रासायनिक उर्मि कहा जाता है । जो परंपरा के रूप में स्थापित हो चुकी है वह बीज वृक्ष विधि से आवर्तनशील और समृद्ध होता ही रहता है और अनुसंधान क्रम में परंपरा से भिन्न एक रचना विधि प्राणसूत्र में उत्सव पूर्वक स्थापित हो जाती है । यह परंपरा विधि सम्पन्नता + रासायनिक उर्मि अथवा तरंग का संयोग से भिन्न रचना विधि सम्पन्न होना पाया जाता है। इसी क्रम में अनेक प्रजाति की रचना और उसका बीज, फलस्वरूप परंपरा आवर्तनशीलता के रूप में स्थापित होना पाया जाता है । ये सब इसी धरती पर प्रमाणित है ।

प्राणावस्था के उपरान्त ही प्राणावस्था के अवशेषों, धरती के संयोग और उष्मा, वायु, जल संयोग से बहुत सारे स्वदेज-कीटों, जन्तुओं का प्रकट होना आज भी देखने को मिलता है । इस क्रम में अण्डज प्रवृत्ति रचना विरचना का होना देखा जाता है । यही क्रम से प्राणावस्था के अवशेषों सहित पुनर्प्रक्रिया क्रम में स्वदेज प्रवृत्ति और प्रक्रियाएं विपुलीकृत होना आज भी देखना संभव है । इनमें से कुछ अण्डज विधि से

अपनी परंपरा बनाना देखा जाता है । अण्डज परंपपराएं शनैः शनैः प्रयोग विधि से उदात्तीकरण नियमों के अनुसार समृद्ध होते जलचर, भूचर, नभचर के रूप में देखने को मिलता है । इनमें पराकाष्ठा की समृद्धि, अग्रिम अवस्था की समीचीनता, अनुकूल परिस्थितियों के आधार पर अण्डज संसार से पिण्डज संसार प्रकट होने की बात इस धरती पर घटित हो चुकी है । यह भी अपने-अपने परंपरा के रूप में वंशानुषंगीय विधि से आज भी स्पष्ट है ।

इन्हीं अण्डज-पिण्डज संसार रचना क्रम में शरीर रचना के लिये आवश्यकीय सभी रासायनिक द्रव्य और भौतिक वस्तुएं सहज सुलभ होने के क्रम मे, मेधस रचना क्रम शरीर रचना क्रम के साथ आरम्भ होकर समृद्ध होना विकास क्रम में स्वाभाविक कार्य प्रणाली रही है । यह अण्डज-पिण्डज दोनों प्रकार के जीवावस्था का वैभव वंशानुषंगीयता को प्रमाणित अथवा व्यक्त करता हुआ देखने को मिलता है । इसी क्रम में पिण्डज प्रकटन के रूप में मानव शरीर रचना परंपरा भी सुस्पष्ट है । मानव भी अपनी परंपरा के रूप में स्थापित हो चुका है । इन सभी घटनाक्रम के मूल में प्रत्येक परंपरा स्थापित होने की प्रक्रिया है । परंपरा स्थापित होने के उपरान्त वह मूल-क्रिया का दोहराना अपने-आप शिथिल हो जाता है । परंपरा उन्नत हो जाती है । उन्नत होने का तात्पर्य परंपरा में निखार और उसका नियतिक्रम, आचरण स्पष्ट होने से है । मानव पंरपरा अनेक समुदायों के रूप में अपने को परंपरा सहज प्रकटन प्रमाणित हो चुकी है ।

अस्तित्व में प्रत्येक एक त्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में वैभव और प्रमाण है । प्रमाण का तात्पर्य वर्तमान में हर व्यक्ति इसे समझ सकता है । फलस्वरूप अपना प्रभाव स्वरूप मानव भी स्वयं व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी की कल्पना, अध्ययन, निश्चय एवं प्रमाणित होने का कार्य कर सकता है । इसे हम प्रमाणित कर देख लिये हैं । यह भी इसके साथ हमें पता लग चुका है और लोग भी पता लगा सकते हैं कि समुदाय विधि से कोई सार्वभौम सूत्र नहीं पाये हैं और न ही पा सकते हैं । इसी आधार पर मानवत्व को पहचानने, निर्वाह करने के क्रम में अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तन अध्ययन एक आवश्यकता रही है । यह बलवती होने के आधार पर ही इसमें हम पारंगत होने का प्रमाण सहज ही प्रमाणित हुई ।

अखण्ड समाज की आवश्यकता, कल्पना केवल मानव प्रकृति अथवा मानव सहज अस्तित्व के साथ ही सूत्रित हुआ है । अर्थात और किन्हीं जीवों का समाज अथवा वनस्पतियों का समाज, मृत पाषाण, मणि, धातुओं का समाज रूप प्रमाणित नहीं होती । हर प्रजाति के जीव, हर प्रजाति की वनस्पति, हर प्रजाति के मृत पाषाण मणि धातुएँ अपने-अपने त्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित हैं । अतएव समाज का केन्द्र बिन्दु अखण्ड समाज रूप में प्रमाणित होने के लिए केवल मानव है ।

मानव विविध परम्पराओं को झेलते हुए अर्थात राज्य, धर्म, अर्थ परम्पराओं को झेलते हुए आज इस दशक में जिस स्थिति में है उसका चित्रण इस प्रकार है :-

1. भय, प्रलोभन, आस्था,
2. सुविधा, संग्रह, भोग,
3. प्रिय, हित, लाभात्मक दृष्टियों की क्रियाशीलता और
4. आशा, विचार, इच्छाओं का अथक प्रयोग हो चुका है।

इच्छाएँ जो मानव में उद्गमित हैं जिनका विचार समर्थन मिल पाया है और आशा के रूप में स्वीकृत हो पाया है और व्यवहार में प्रमाणित नहीं हो पायी उनका चित्रण इस प्रकार है । प्रस्ताव है ।

1. सर्वतोमुखी न्याय होने पाने की इच्छा;
2. सर्वतोमुखी समाधान होने-पाने की इच्छा;
3. परमसत्य दृष्टा होने की इच्छा;
4. व्यवस्था में जीने की इच्छा समग्र व्यवस्था में भागीदारी की इच्छा;
5. पूर्ण जागृत होने की इच्छा मानव परंपरा में समाधान, समृद्धि, अभय सह-अस्तित्व सुलभ होने की इच्छा;
6. स्वायत्तता की इच्छा;
7. वैरविहीन परिवार की इच्छा;

8. स्वराज्य की इच्छा; एवं
9. स्वतंत्रता की इच्छा, समग्र मानव में सकारात्मक शुभेच्छा।

उक्त चित्रण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हम मानव इस धरती पर जबसे स्थापित-गतित हैं तब से अभी तक किस-किस आशा, विचार, इच्छा सहज बिन्दुओं के सम्बन्ध में प्रमाणित हुए हैं ? अर्थात करके देखे हैं । जिसका परिणाम अथवा फल की भी समीक्षा हो चुकी है । इसी क्रम में और इच्छाएँ जो मानव परंपरा में व्यवहृत नहीं हो पायी हैं उसका चित्रण भी स्पष्ट है । जिन-जिन इच्छाओं को अभी तक हमने मानव परंपरा में चरितार्थ किया है वह सब अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में सूत्रित होना संभव नहीं हो पाया क्योंकि अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का वैभव रूप अथवा फल स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सर्वसुलभ होना सहज है । यह तभी संभव है जब जीवन ज्ञान जैसा परमज्ञान, यह अस्तित्व दर्शन जैसा परमदर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी परम आचरण में पारंगत होने की स्थिति सहज सुलभ हो पाए । यही प्रस्ताव है ।

नियम, नियंत्रण, संतुलन सहित व्यवहार में प्रमाणित नहीं हो पाये हैं वह इच्छाएं

न्याय + समाधान = सुख = मानव धर्म

धर्म + समृद्धि = शांति

सत्य + अभय = संतोष = अखण्ड समाज

सह-अस्तित्व में अनुभव परंपरा = आनन्द = सार्वभौम व्यवस्था

सर्वाधिक लोगों में ये इच्छाएँ सर्वेक्षण से स्पष्ट हो जाती हैं । इससे पता चलता है कि इन इच्छाओं से आशित सभी तथ्य चरितार्थ होने के लिये व्यवहारवादी समाजशास्त्र का अनुसंधानित प्रस्ताव है ।

0-0-0

3

जीवन ज्ञान की ओर संकेत

हर मानव शब्दों, वाक्यों, सूत्रों से निर्देशित अर्थ को अस्तित्व में वस्तु के रूप में समझना ही ज्ञान, अध्ययन पूर्वक समझा हुआ को अनुभवपूर्वक विधि से प्रमाणित करना ईमानदारी है ।

सम्पूर्ण व्यवस्था सह-अस्तित्व ही है । सह-अस्तित्व अपने स्वरूप में सत्ता में संपृक्त प्रकृति है । इसी प्रमाण के आधार पर अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व होना स्वाभाविक है । सत्ता में संपृक्त प्रकृति नित्य वर्तमान है । सत्ता सर्वत्र विद्यमान, व्यापक और असीम है । सत्तामयता ही ऊर्जा स्वरूप में पारगामी है । ऊर्जा सम्पन्नता का प्रमाण प्रकृति में है । प्रकृति का प्रमाण साम्य ऊर्जा में नित्य वर्तमान में अथवा सम्प्रवृत्तता में होना पाया जाता है । यथा आप हम दो वस्तु, दो जीव, दो पदार्थ, दो अणु, दो परमाणु, दो परमाणु अँश के परस्परता में अलग-अलग दिखता हुआ आँखों में भी दिखती है, समझ में आती है । अलग-अलग जो वस्तु दिखता है, समझ में आता है उसके सभी ओर दूसरे वस्तु के बीच में उभय वस्तु के सभी

ओर है, सत्ता है । यह पारगामी है इसका प्रमाण हर वस्तु, हर मनुष्य, हर ग्रह-गोल ब्रह्माण्ड, सौर-व्यूह ऊर्जा सम्पन्न रहने के आधार पर प्रमाणित होता है । ऊर्जा सम्पन्नता का प्रमाण श्रम, गति, परिणाम से, श्रम गति परिणाम का प्रमाण परमाणु में ही गठनपूर्णता फलतः जीवन प्रतिष्ठा, जीवन जागृति अर्थात क्रियापूर्णता और आचरण पूर्णता के रूप में होना प्रमाणित होना पाया जाता है । मानव ही अस्तित्व में सम्पूर्ण क्रियाकलापों का नामकरण करने वाला इकाई है । इसी क्रम में शब्द वांङ्मय होना सबको विदित है । मानव ही अस्तित्व सहज प्रमाणों को समझता है, समझाता है । समझाने के क्रम में वाङ्मय एक उपाय अथवा सशक्त उपाय है । इसी क्रम में सम्पूर्ण अस्तित्व सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में वांङ्मय के द्वारा इंगित होता है । ऐसा अस्तित्व ही जड़-चैतन्य के रूप में नित्य कार्यरत रहना पाया जाता है । ऐसी क्रियाशीलता के ही फल में जीवन पद गठनपूर्णता पूर्वक गठित है ही । इसमें भी परंपरा की बात आती है । गठनपूर्णता गठित होने के उपरान्त चैतन्य पद में संक्रमण जीवन पद प्रतिष्ठा, जीवनी क्रम, सम्पूर्ण समृद्ध मेधस युक्त जीव शरीरों में जीवन प्रमाणित किया। यह वंशानुषंगीयता के रूप में समीक्षीत है । मानव शरीर परंपरा के उपरान्त कल्पनाशीलता सहज विधि से प्रकाशित होना देखा गया है। इसी क्रम में इसे जागृति क्रम नाम दिया गया है । जागृति क्रम में हम मानव सुदुर विगत से अभी इस दशक तक क्या-क्या कर पाये । यह पहले स्पष्ट हो चुकी है । सह-अस्तित्व की

रौशनी में अभी तक किये गये सभी कृत्य मानव सहज इच्छापूर्ति अर्थात् शरीर संवेदनाओं के अर्थ में ही चरितार्थ हुआ है । और मानव में ही पाये जाने वाली शेष इच्छाएं जो चरितार्थ होना शेष है वह भी चित्रण सहज तालिका में प्रस्तुत हो चुकी है । इन दोनों चित्रण से यह भी निश्चय हो चुकी है सार्वभौम-व्यवस्था अखण्ड समाज को चरितार्थ रूप देने के लिये शेष इच्छाएं मानव में, से, के लिये प्रतीक्षित है । शेष इच्छाएं चरितार्थ होना अनिवार्य है।

इसी तारतम्य में ज्ञान, विवेक, विज्ञान सहज आधारों पर ही अभी तक जो कुछ भी किये, आगे भी जो कुछ भी चरितार्थ रूप देना है इसके मूल में भी ज्ञान,विवेक, विज्ञान स्वाभाविक रूप में समाहित रहेगा ही । पूर्वावर्ती ज्ञान, विवेक, विज्ञान का आधार दो विधा से गुजरकर देख चुका है।

1. रहस्यमूलक ईश्वर केन्द्रित ज्ञान ईश्वरेच्छा, देवेच्छा के आधार पर सृष्टि स्थिति लय पर आस्था । मनुष्य स्वतंत्र नहीं है । यही विवेक ज्ञान-विज्ञान का आधार रहा है ।

2. दूसरे विधि से भी हम गुजर चुके हैं वह यह रही कि अस्थिरता मूलक वस्तु केन्द्रित चिंतनज्ञान यांत्रिकता, सापेक्षता विधि और यंत्र प्रमाणों के आधार पर जो कुछ भी किये जिसका परिणाम हमें प्राप्त हो चुका है ।

न्याय शब्द का प्रयोग, उसी के साथ-साथ अन्याय शब्द का प्रयोग होता आया है । सार्वभौम रूप में न्यायापेक्षा

सर्वमानव में रहे आया । न्याय का ध्रुवीकरण अर्थात निश्चयन और उसकी व्यवहारीकरण अभी भी मानव कुल में प्रतीक्षित है । न्याय को सर्वथा आचरण रूप में सदा-सदा के लिये इस प्रकार पहचानना संभव हो गया है कि अस्तित्व में सदा से ही सम्बन्ध समीचीन रही है । ऐसा सम्बन्ध दो प्रकार से होना देखा गया है ।

(अ) मानव-मानव संबंध - परिवार-समाज-व्यवस्था के रूप में न्याय, धर्म सत्य सहज प्रमाण ।

(ब) मानव प्रकृति संबंध - नियम, नियंत्रण, संतुलन रूप में ।

मानव भी चैतन्य प्रकृति सूत्र से सूत्रित है ही इस प्रकार मनुष्य और मनुष्येत्तर प्रकृति के रूप में मानव ही देख पाता है । मनुष्येत्तर प्रकृति में जीवावस्था, प्राणावस्था और पदार्थावस्था की सम्पूर्ण वस्तुएँ, गण्य है । इसी में धरती, जलवायु व वन खनिज समायी है । इस सबके साथ सम्बन्ध सदा-सदा से बनी हुई है । इसे हमे जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने की संभावना है ही । आवश्यकता भी है । इसी क्रम में मानव संबंध भी स्थापित रहता ही है । इन सभी संबंधों का सार्थक, आवश्यक, अतिवांछनीय जैसा विचार स्वीकृति और आशा के रूप में भी स्वीकृतियाँ मनुष्य में रहता ही है। ऐसा सम्बन्ध और सम्बन्धों का प्रयोजन निम्न प्रकार से पहचाना जाता है ।

प्राकृतिक संबंधों का प्रयोजन

धरती का संतुलन, जल का संतुलन, वायु का संतुलन, वन, खनिज का संतुलन, इनके संतुलन के फलस्वरूप ऋतु संतुलित रहना पाया जाता है। धरती के संतुलित होने के उपरांत ही अन्य सभी संतुलन साकार होना स्वाभाविक रहा है । उसके उपरांत मानव प्रकृति का धरती पर अवतरित होना स्वाभाविक रहा है । मानव ने अभी तक इन चारों विधाओं में असंतुलन न्युनातिरेक रूप में पैदा कर चुका है । इसका मूल कारण अनानुपाती वन खनिज का शोषण । जलवायु का प्रदूषण, धरती में ताप व प्रदूषण प्रधान रहा है । यह सर्वविदित हो चुकी है ऐसे प्रदूषणों के आधार पर मानव का इस धरती पर जीना दूभर होता जा रहा है । इससे छूटना अति आवश्यक मुद्दा है । इसीलिये कि धरती ही असंतुलित होने के उपरान्त मनुष्य का इस धरती पर रहने का प्रश्न ही नहीं रहता । इसी कारणवश सर्वमानव को अपेक्षा सहज जागृति सम्पन्न होना आवश्यक है । ऐसी जागृति के लिए तीन महत्वपूर्ण अध्ययन कार्य सम्मुख है । 1. जीवन ज्ञान, 2. अस्तित्व दर्शन, 3. इन दोनों मुद्दे में पारंगत होने का फल परिणाम मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान देखा गया है । तीनों मुद्दे पर पारंगत होने के लिये सर्वमानव में जीवन सहज रूप में अर्हता है ही । अस्तु सर्वमानव जीवन ज्ञान रूपी परमज्ञान सह-अस्तित्व दर्शन रुपी परम दर्शन मानवीयता पूर्ण आचरण रूपी परम आचरण ज्ञान में सहज पारंगत हो सकता है । इसके मूल में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ही प्रधान

वस्तु है । अस्तित्व में दृष्टा केवल मानव होने के कारण ही बहुमुखी बहुआयामी प्रतिभा व्यक्तित्व, व्यवहार और व्यवसाय (उत्पादन) सम्पन्न होने का आधार सर्वमानव में प्रकारान्तर से रहता ही है । इसी प्रवृत्तियों प्रमाणों के आधार पर मानव संतुलन और प्राकृतिक संतुलन को हर व्यक्ति के ध्यान में लाना, आवश्यकता के रूप में स्वीकारना, अनिवार्यता के रूप में मूल्यांकित करना फलस्वरूप कार्य व्यवहार में प्रमाणित करना सहज है ।

ऊपर कई निश्चयों के समर्थनों में अथवा विकल्पात्मक प्रस्ताव के समर्थन में सर्वमानव में वांछित सर्वशुभ का स्वरूप भी हमें समझ में आता है इससे समाधान समृद्धि अभय सह-अस्तित्व सर्वसुलभ होने की अपेक्षा भी धरती और मानव संतुलन के साथ-साथ निहित है ।

जीवन विद्या भले प्रकार से बोधपूर्वक अनुभवगामी विधि से अध्ययन कराया जाना सहज है । क्योंकि हर मनुष्य जीवन मूलक विधि से ही जी पाता है । जीवन मूलक विधि से जीने में विश्वास हो पाना ही स्वयं के प्रति विश्वास होने का तात्पर्य है । जीवन ज्ञान से अस्तित्व में मानव ही दृष्टा पद में होना समझ में आता है । इसी आधार पर मानव को ज्ञानावस्था की इकाई के रूप में पहचाना गया । ज्ञान का तात्पर्य सुस्पष्ट हो चुका है कि जीवनज्ञान व अस्तित्व दर्शन है । इसमें जागृत होने के उपरान्त स्वयं स्फूर्त विधि से ही विवेकपूर्ण तर्क, विज्ञान सम्मत

होना पाया गया है । ज्ञानावस्था सहज ज्ञान समृद्ध मानव ही, प्रमाणिकता, समाधान और न्यायपूर्ण विचार व्यवहार व कार्यप्रणालियों को प्रमाणित करता है । प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिये अनुभव व्यवहार और प्रयोग ही प्रमाण है । अनुभव मूलक विधि से किया गया व्यवहार व प्रयोग तर्क सम्मत होना व प्रयोजनकारी होना पाया जाता है । यही ज्ञानावस्था का वैभव है ऐसा वैभव ही स्वराज्य व स्वतंत्रता के रूप में प्रमाणित होता है ।

मानव परम्परा में ही प्रमाणों की अपेक्षा बनी हुई है । प्रमाणों के सम्बन्ध में मनुष्य सुदुर विगत से अपेक्षा, आकांक्षा को व्यक्त करता हुआ ही आया है । ऐसे प्रमाणों का नामकरण विगत में सर्वप्रथम शब्द प्रमाण के रूप में; दूसरा आप्त पुरूषों के वचन को प्रमाण और प्रत्यक्ष अनुमान आगम को प्रमाण माना गया है । अभी इस व्यवहारवादी समाजशास्त्र जो अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन का फलन है, जिसे भली प्रकार से अनुभव किया गया है, इसमें मानव मानस चिराशित प्रमाण को अनुभव, व्यवहार और प्रयोगों में प्रमाणित होने के साक्ष्य को उद्घाटित किया है ।

जनमानस अभी तक शब्द ही सम्पूर्ण प्रमाण होना अर्थात् कायिक, वाचिक, मानसिक; कृत, कारित, अनुमोदित; जागृत, स्वप्न, सुसुप्ति और सर्वदेशकाल दिशा परिप्रेक्ष्य, आयामों में प्रमाणित करना संभव नहीं हुआ । इसी प्रकार आप्त वाक्य

भी सर्वदेश काल में आप्त वाक्य के रूप में फलित होकर प्रमाणित होने किसी भी परंपरा में संभव नहीं हुआ । इसी के साथ-साथ प्रत्यक्ष प्रमाण आगम प्रत्यक्ष के विरोधी संख्यों और अनुमान से संभावित घटना व तथ्य की परिकल्पनाएँ, अनुमान व प्रत्यक्ष के विपरीत अनेक संख्या व विधि में प्रस्तुत हुआ है । जैसे एक मनुष्य । मनुष्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये प्रयत्न किया । इसके लिए प्रथम व प्रत्यक्ष विधि अपनाया । प्रत्यक्ष रूप में एक मनुष्य से दूसरा मनुष्य का रूप व कार्य भिन्न होता हुआ देखा गया । फलस्वरूप प्रत्यक्ष सत्य नहीं है ऐसा सोचा गया । फिर इसी प्रकार एक गाय, वृक्ष, पत्थर, मिट्टी, मणि, धातुओं को देखा सभी में विविधतायें दिखीं । परिवार में दस व्यक्तियों के बीच में विविधता दिखी । आकाश में असंख्य तारागण अनेक ग्रह-गोल और सौर-व्यूह जितने भी दिखते हैं इन सबमें छोटा बड़ा, कम प्रकाश, अधिक प्रकाश रूपी विविधताएँ देखने को मिली । ऐसे ही कारणों से प्रत्यक्ष को असत्य मान लिया ।

इस अनुमान को मनुष्य ने बहुत सारे कल्पना कहा और करते हुये जीव नाम को कोई चीज होने का परिकल्पना दी । जीवों के रूप में जितनी भी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया उसमें भी विविधताएं दिखाई पड़ी । प्रवृत्तियों को विशेषकर चार विषय और तीन इषणाओं के आधार पर आंकलन किया। इसमें प्रवृत्तियों की विविधता जीव सत्य कहने में ही शंकायें अथवा विरोध कर दिया । जबकि जानना, मानना, पहचानना व निर्वाह

करना बहुत दूर रह गया । तीसरा इन अनन्त रूप में दिखने वाली विविध रूपी संसार का मूल रूप में जो वस्तु है वही आगम रूप है, उसी में सब विलय हो जाता है । विलय होना ही निगमन है । वही सत्य है इस प्रकार आगम निगम का मूल रूप ही आगम प्रमाण है । इस प्रकार से मानते हुये इन वचनों के प्रति पूर्ण निष्ठा दृढ़ता सहित बहुत सारे मेधावियों ने अपने को अर्पित किया । बहुत कुछ साधना अभ्यास करने के उपरान्त भी परम्परा के रूप में सिद्ध नहीं हुआ । आगम प्रमाण सर्वाधिक रहस्यमय हो गया और अनुमान व प्रत्यक्ष वादग्रस्त हो गया । इस प्रकार मानव प्रमाण सहित जीना चाहते हुए भी सार्थक न होने की स्थिति व घटना बनते ही आया ।

इसके अनन्तर वैज्ञानिक विधि प्रयोग यंत्र प्रमाणों को स्वीकार गया । क्योंकि पूर्वावर्ती प्रमाणों से तृप्ति नहीं मिल रहा था । प्रयत्न जारी था इसी को अपना लिया । प्रमाण स्थली में एक प्रयोगशाला अथवा यंत्र स्थापित होता गया फलस्वरूप सर्वाधिक संख्या में मनुष्य प्रयोग विधि व उसके परिणामों को स्वीकारता आया ।

प्रयोग विधियों से अभी तक सर्वमानव में वर्तमान में प्रमाणित क्रियाओं में से ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय गति बढ़ाने की उपलब्धि हुई है । चिन्हित रूप में हाथ-पैर, आँख-कान की क्रिया गतियाँ जो मनुष्य में होती हैं उसे बढ़ाने के लिये यंत्रों की परिकल्पना व प्रमाण सिद्ध हुआ है । साथ ही गति बढ़ी भी है जैसे किसी भी यान-वाहन से पैर की गति से अधिक गतिपूर्वक

गम्य स्थलियों में पहुंचता हुआ देखने को मिलता है । हाथ से करने वाली क्रियाओं में से यथा हल जोतने व लिखने वाली क्रियाओं में गति स्थापित हुई है । यंत्रों से कृषि कार्यों को सम्पन्न होता हुआ देखने को मिलता है जैसे:- ट्रेक्टर, उड़ाने वाली मशीन व बोने वाली मशीन के रूप में स्पष्ट हुई है। हाथ से होने वाली लिखाई के लिये टाइप मशीन से आरम्भ होकर कम्प्यूटर मशीन तक पहुँच चुका है । इसके अतिरिक्त भी कपड़ा व बर्तन बनाने में लोहादि धातुओं से जो-जो स्वरूप आवश्यकता के अनुसार मानव की परिकल्पना में आती है उसे सफल बनाने के लिये आवश्यक यंत्र उपकरण उपलब्ध हुआ है । इसी के साथ-साथ दूरश्रवण, दूरदर्शन सम्बन्धी सभी तंत्र-यंत्र कार्य विधि प्रचलित हो चुकी है । ऐसे यंत्रों से खनिजों का धरती के पेट से निकाल कर अपने को कृत-कृत्य मानते आये हैं । इतना ही नहीं उपग्रहों की सहायता से दूरसंचार उपक्रम को प्रशस्त बनाने का कार्य, इससे मौसम को पहचानने में सहायता हुई है।

इन्हीं यंत्र उपकरणों के सहायता से अनेक स्वचालित प्रौद्योगिकी प्रक्रियायें सफल हो चुके हैं । इन सबको मानव स्वीकार कर चुका है । आज यह सब सुविधावादी विचार मानव के लिए उपलब्धि के रूप में पहचाना गया है । इसमें उल्लेखनीय तथ्य यही है सुविधा के लिए संग्रह अनिवार्य है । यही मुख्य आकर्षण और फंसाव है। सुविधा के लिए संग्रह अनिवार्य है । संग्रह के लिए सुविधा अपेक्षित है । इसमें एक अवधि की सुविधा संग्रह के उपरान्त एक सीढ़ी और एक सीढ़ी होते-होते

संग्रह सुविधा में व्यक्त मानव अपने शरीर यात्रा काल को अथवा शरीर काल को पूर्णतया अर्पित करने के उपरांत भी बहुत सी सीढ़ियाँ शेष रह जाती हैं । इससे परिगणित होता है कि मनुष्य तृप्ति चाहता है, तृप्ति के लिए संग्रह सुविधा को स्वीकार किया जाता है, इसके पहले सीढ़ी में जितना संग्रह सुविधा के प्रति अभाव विरानी, अतृप्ति, शंका, कुशंका, ईर्ष्या, द्वेष, वितण्डावाद मनुष्य के लिए पीड़ादायक था, वह दूसरे, तीसरे कितने भी सीढ़ी पार किया गया है, उसके बाद पहले से अधिक ऊपर कहे पीड़ा सूत्र बढ़ते आये हैं ।

संपूर्ण मानव राहत पाने की अपेक्षा से ही यंत्र प्रमाण (प्रयोग प्रमाण) और सुविधा संग्रह को स्वीकारा है । मनुष्य तो स्वयं राहत पाया नहीं है, इसका साक्ष्य यही है । 1. बढ़ती हुई सामुदायिक कलह, परिवार कलह, 2. बढ़ती हुई प्रदूषण, 3. बिगड़ती हुई धरती । ये तीनों मुद्दे मानव के सम्मुख चिंता के रूप में प्रस्तुत हो चुके हैं । इसमें से धरती का शक्ल बिगड़ना अनेक उपद्रवों का कारण बन चुकी है जिन्हें कुछ लोग मानते हैं और कुछ लोग मानते नहीं है । यथा धरती के पेट से खनिज कोयला और तेल, धातुओं का निकालने की प्रक्रिया । इस कार्य में जितना तीव्र गति उत्पन्न किया है, उसको प्रगतिशील मानी जा रही है । इससे जो कुछ भी धरती का पेट खाली हो गया अथवा धरती को खोखला बना दिया गया, उसका भरपायी अभी इस धरती पर वर्तमान मानव परंपरा रहते तक हो पायेगी या नहीं एक विचारनीय बिन्दु है । भरपाई तो बाद की

बात है इसके पहले हम मानव को क्या-क्या सोचने की जरूरत है, किस प्रणाली, पद्धति और नीतिपूर्वक परिवर्तन को अपनाने की आवश्यकता है, इसके लिए हमें समझ क्या चाहिए? यह गंभीरता से विचार करने और निर्णय लेने की बिन्दु है । इस निर्णय के पहले और एक बिन्दू है, धरती की शक्ल जैसी भी बिगड़ी है, उससे भावी परिणाम क्या-क्या घटित हो सकते हैं इस पर भी एक बार विधिवत विचार करने की आवश्यकता है । इसलिए कि कम से कम अवधि में शीघ्रतीशीघ्र प्रदूषण कार्यकलापों को सर्वथा स्थगित कर सकें और विकल्पों को अपनाने में उत्साहित हो सकें ।

धरती आज जिस शक्ल में दिखाई पड़ रही है, उसमें से खनिज तेल और कोयला धरती से बाहर कर दिया गया । धरती को एक अपने ढंग से क्रियाशील, स्वचालित वस्तु के रूप में पहचानने के उपरान्त यह समझ में आता है कि यही धरती इस सौर व्यूह में एक मात्र वैभवपूर्ण स्थिति में है क्योंकि इसी धरती पर पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था व ज्ञानावस्था चारों अवस्थायें प्रगट हो चुकी हैं । इसमें से ज्ञानावस्था के मनुष्य ही इस धरती का पेट फाड़ने के कार्यक्रम को प्रस्तुत किया है । इसके सामान्य दुष्परिणाम भी आने लगे हैं जैसे - जल, वायु और धरती में प्रदूषण । प्रदूषण का तात्पर्य असंतुलन से ही है । असंतुलन का स्पष्ट रूप अथवा चिन्हित रूप धरती सहज उर्वरकता का घट जाना अथवा उर्वरकता कम होना लुप्त हो जाना, इसके स्थान पर अम्लीय, क्षारीय और रासायनिक धूलि

धूसरित होने के आधारों पर धरती में असंतुलन उर्वरकता प्रणाली को अनुर्वरकता में बदलते हुए देखने को मिलती है । यही धरती का असंतुलन है, एक विधि से । दूसरे विधि से धरती का असंतुलन इसका वातावरण में परिवर्तन जिसका क्षतिपूर्ति अभी मनुष्य के हौसले के अनुसार दिखायी नहीं पड़ती । यह धरती के वातावरण सहज विरल वस्तुओं का कवच सभी ओर दिखायी पड़ती है, इसमें जितना ऊँचाई सभी ओर फैली हुई है, वह अपने आप में कम होना स्वीकारा गया है । मुख्य रूप में सूर्य किरणों (ताप और वस्तु का संयोग का प्रतिबिम्बन) असंतुलन कार्य प्रभावों को सामान्य बनाने का कार्य, यही कवच, जो आज लुप्त हो गया अथवा होने वाला है, से होता रहा है । अब इस कवच का तिरोभाव होने से धरती का ताप बढ़ना शुरू हो गया आंकलित हो चुका है । धरती के ताप बढ़ने का तात्पर्य है धरती बुखार से ग्रसित हो गयी है । आदमी के शरीर में होने वाले बुखार की दवाई (फिर बुखार न हो ऐसी दवाई) अभी तक तैयार नहीं हुआ है । ऐसी स्थिति में धरती के बुखार की दवा कौन बनायेगा। यह एक अलंकारिक प्रश्न रूप है । साथ ही इस प्रश्न चिन्ह के मूल में मानव का ही करतूत है, यंत्र प्रमाण की ही विकरालता है । इसके आगे ताप बढ़ते-बढ़ते इसे 4 डिग्री बढ़ने के उपरांत इस धरती के ध्रुव प्रदेश में धरती अपने संतुलन के लिए संग्रहित बर्फ पिघलने का अनुमान बन चुकी है । फलस्वरूप समुद्र की सतह सैकड़ों फीट बढ़कर पानी धरती को अपने अंतराल में छुपा सकता है, उस स्थिति में

मानव परम्परा रहेगी कहाँ, सोचना पड़ेगा । यह एक विपदा की स्थिति स्पष्ट हो चुकी है । ऐसा भी कल्पना किया जा सकता है कि इस धरती पर प्रथम बूंद पानी का घटना ब्रह्माण्डीय किरणों के संयोगवश ही संभव हो पायी है, इसी के चलते ताप किरण पाचन विधि से मुक्त, अर्थात धरती में पचने की विधि से मुक्त प्रवेश होना संभव हो गया है। पानी के बूंद के मूल में विभिन्न भौतिक तत्वों का अनुपातीय मिलन विधि है, वह विच्छेद होने का बाध्यता बन जाये; उस स्थिति में कौन इसे रोक पायेगा । तीसरी परिकल्पना और बुद्धिमान व्यक्ति कर सकता है कि इस धरती के दो ध्रुवों की परस्परता में निरंतर एक चुंबकीय धारा बनी हुई है, ऐसी चुम्बकीय धारा को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए इस धरती की गति स्वयं में व्यवस्था के रूप में और समग्र में (सौर्य व्यूह में) भागीदारी के रूप में प्रमाणित है । इससे चुम्बकीय धारा की स्थिरता, दृढ़ता बने रहने की व्यवस्था है । अभी जैसे ही धरती का पेट फाड़ दी गयी है अगर यह असंतुलित हुई तब कौन सी नस्ल व रंग वाला इसे सुधारेगा और जात, सम्प्रदाय, मत, पंथ वाला कौन ऐसा है जो इसे सुधार पायेगा । इन्हीं सबकी परस्परता में हुई विरोध, विद्रोह, युद्ध ही इस धरती के पेट फाड़ने की आवश्यकता को निर्मित किया है, यह भी ऐतिहासिक घटनाओं से स्पष्ट है ।

जहाँ तक जल प्रदूषण की बात है, उसका सुधार संभव है, क्योंकि हर दूषित मल, प्रौद्योगिकी विसर्जनों को विविध संयोग प्रक्रिया से खाद के रूप में अथवा आवासादि कार्यों में

लेने योग्य वस्तुओं के रूप में परिणित कर सकते हैं, ऐसे परिणित के लिए सभी प्रकार से - मनुष्य से, प्रौद्योगिकी विधि से, संपूर्ण विसर्जन को अपने-अपने स्थानों में ही कहीं, धरती के गहरे गढ्ढों में संग्रहित करने की आवश्यकता बनती है, उसके बाद ही इसका विनियोजन संभव हो जायेगा । जहां तक वायु प्रदूषण है, इसका निराकरण तत्काल ही खनिज कोयला और तेल के प्रति चढ़े पागलपन को छोड़ना पड़ेगा । इसका सहज उपाय विकल्पात्मक ऊर्जा स्रोतों को पहचानना जिससे प्रदूषण न होता हो । ऐसा ऊर्जा स्रोत स्वाभाविक रूप में यही धरती प्रवधानित कर रखी है। जैसे वायु बल, प्रवाह बल, सूर्य, ऊष्मा और गोबर-कचड़ा गैस । यह सब आवर्तनशील विधि से उपकार कार्य के रूप में नियोजित होते हैं । जैसा सूर्य ऊष्मा से ईंटा पत्थर को पकाने की भट्टियों को बना लेने से वह पक भी जाता है और उससे प्रदूषण की कोई सम्भावना भी नहीं रहती । प्रवाह दबाव कई नदी-नालों में मानव को उपलब्ध है जैसा ब्रह्मपुत्र, गंगा, यमुना नदियाँ जहां सर्वाधिक दबाव से बह पाती हैं, ऐसे स्थलों में प्रत्येक 20-25 मी. की दूरी में बराबर उसके दबाव को निश्चित वर्तुल गतिगामी प्रक्रिया से विद्युत ऊर्जा को उपार्जित कर सकते हैं । इस विधि से सर्वाधिक देश में आवश्यकता से अधिक विद्युत शक्ति के रूप में संभावित है । अभी तक बनी हुई प्रदूषण का कारण केवल ईंधन संयोजन विधि में दूरदर्शिता प्रज्ञा का अभाव ही रहा है । अतएव, गलती एवं अपराधों का सुधार करना, कराना, करने के लिए सम्मति

देना हर मनुष्य में समायी हुई सौजन्यता है ।

पहले इस बात को स्पष्ट किया है कि मानव अपने को विविध समुदायों में परस्पर विरोधाभासी क्रम में पहचान कर लेने का अभिशाप ही इन सभी विकृतियों का कारण रहा है मूलतः इसी का निराकरण और समाधान अति अनिवार्य हो गया है । क्योंकि शोषण, द्रोह, विद्रोह और युद्ध को हम अपनाते हुए किसी भी विधि से वर्तमान में विश्वस्त हो नहीं पायेंगे बल्कि भय, कुशंका, दरिद्रता, दीनता, हीनता, क्रुरता मंडराते ही रहेंगे। इस सबके चुंगल से छूटना ही मूलतः विपदाओं से बचने का उपाय है ।

तालिका-1

क्र.	जीवन बल	क्रिया	जीवन शक्ति	क्रिया
1.	मन	आस्वादन	आशा	चयन
2.	वृत्ति	तुलन	विचार	विश्लेषण
3.	चित्त	चिंतन	इच्छा	चित्रण
4.	बुद्धि	बोध	ऋतम्भरा	संकल्प
5.	आत्मा	अनुभव	प्रमाणिकता	प्रमाण

टीप - 'जीवन ज्ञान' का विस्तृत अध्ययन के लिए मध्यस्थ दर्शन, सह-अस्तित्ववाद शास्त्र का अवलोकन कर सकते हैं । यही विकल्प के रूप में प्रस्तुत समझदारी का सूत्र है।

4

व्यवहारवादी समाज का स्वरूप

यह पूर्णतया समझ में आ चुका है समुदाय विधियों से चलकर कितने भी श्रेष्ठतम आदर्शों के साथ निभते हुए भी कटुता का कगार सम्मुख होते ही आया । कटुता का ही स्वरूप द्रोह, विद्रोह शोषण और युद्ध है । यह सब मानव में तनाव ग्रसित मानसिकता के रूप में अध्ययनगम्य है । यह सर्वविदित भी है । ऐसे मानसिक तनावों और इन्द्रिय लिप्सा का संयोग से सुविधा, संग्रह ही राहत की स्थली महसूस होना देखा गया है । इसी क्रम में मानव अपने-अपने समुदायों के भलाई के लिए भी सोचा है । ऐसा शुभ सदा ही पुनः सुविधा संग्रह रहे आया है । इस क्रम में हम और कितने भी शताब्दी प्रयत्न करे शुभ परिणामों के साथ जुड़ना संभव नहीं है ।

सर्वशुभ का स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व ही है; और हम समाधानित रहने की स्थिति में ही समस्याओं का निराकरण कर पाते हैं । इसे वर्षों-वर्षों अनुभव कर देखा गया है । ऐसे समाधान अनेक दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्य, आयामों के लिये आवश्यक होना पाया गया है । प्रत्येक मनुष्य

अपने में समाधानित होने की विधि मूलतः मानव जाति एक कर्म अनेक के रूप में देखने, समझने, करने, करने के लिये मत देने के रूप में होना पाया गया ।

मानव जाति को सर्वमानव में, से, के लिए अपेक्षित सर्वशुभ का धारक-वाहकता के रूप में होना, पहचाना गया है । सर्वशुभ ऊपर कहे हुए चार ही रूप में होना देखा गया है । यह समाधान, समृद्धि का प्रमाण रूप में जीकर देखा गया है । इन दोनों का धारक, वाहक होने के उपरान्त अभयता, अखण्ड समाज और सह-अस्तित्व का प्रमाण अनिवार्य हो जाता है । इस अनिवार्यता को सहज सुलभ रूप में समाधानित करने की विधि जीवन ज्ञान, अस्तित्वदर्शन पूर्वक होता देखा गया है । जीवन ज्ञान ही परमज्ञान होने के कारण सर्व मनुष्य में अभयता का स्रोत सहज विधि से वर्तमान होना देखा जाता है। देखने का तात्पर्य समझने से है । समझ अपने मूलरूप में जानना, मानना, पहचानना निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित है । समझ का धारक, वाहकता, जीवन सहज महिमा होना देखा गया है । जानने, मानने के क्रम में ही जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन पूर्वक प्रत्येक मनुष्य समाधानित हो जाता है । यही सर्वतोमुखी समाधान का नित्य स्रोत है । इसके मूल में सत्य यही है कि अस्तित्व नित्य वर्तमान है। अस्तित्व न बढ़ता है न ही घटता है । अस्तित्व में जीवन भी अविभाज्य है । अस्तित्व में ही रासायनिक, भौतिक रचना-विरचना परिणामों के रूप में दृष्टव्य है । ऐसे भौतिक-रासायनिक रचनाओं में से एक रचना मनुष्य

शरीर भी है । मनुष्य शरीर रचना विधि मानव परंपरा में सर्वविदित है । इसीलिये जीवन ज्ञान की आवश्यकता अति अनिवार्य है ।

जीवन ही जीवन को, जीवन से जानने मानने की व्यवस्था बनी हुई है । प्रत्येक मनुष्य स्वयं का अध्ययन कर सकता है । क्योंकि प्रत्येक मनुष्य में चयन-आस्वादन, विश्लेषण-तुलन, चित्रण-चिन्तन, संकल्प-बोध, प्रमाणिकता और अनुभव, सम्पन्न होता हुआ देखा जा सकता है । प्रत्येक मनुष्य में यह सभी क्रियायें पूर्णतया क्रियाशील होना, इसके दृष्टापद में होना, यह सब सत्यापित प्रमाणित होना ही मानव में जागृत परंपरा का स्वरूप है । उल्लेखनीय तथ्य यही है कि प्रत्येक मनुष्य जागृत होना चाहता है । जागृति और अजागृति के बीच कौन सी ऐसी वस्तु है, कारण है, इसे परिष्कृत रूप में समझना ही एक मात्र उपाय है । हम इसे स्पष्टतया देखे हैं और सभी देख सकते हैं कि शरीर को जीवन समझना ही मूल मुद्दा है भ्रम का । इसके साथ जुड़ी हुई दूसरा मुद्दा शरीर के बिना मानव परंपरा नहीं है । इन्हीं के अनुपम संयोग से ही अनेक समस्या और समाधानकारी गति और प्रवाह है । प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी अंश में आशा, विचार, इच्छा के रूप में प्रभाव है क्योंकि यह दूर-दूर तक प्रभावित करते आया । इसीलिये इसे प्रवाह के रूप में देखना सबके लिये सुलभ है । मानव में व्यक्त होने वाली संपूर्ण गतियाँ, प्रवाहित होने वाले आशा, विचार, इच्छा, सहित किये जाने वाले कायिक वाचिक, मानसिक कृत, कारित, अनुमोदित

क्रियाकलाप ही हैं। क्योंकि गति और प्रवाह अलग-अलग होते नहीं । इसे दूसरे विधि से प्रवाह और दबाव कहा जा सकता है । तीसरे विधि से प्रवाह और प्रभाव क्षेत्र कहा जा सकता है ।

यह सर्वविदित है कि प्रत्येक एक अपने वातावरण सहित सम्पूर्णता सहज वैभव है । ऐसी सम्पूर्णता में गति, स्थिति निहित रहती ही है । प्रभाव क्षेत्र ही प्रत्येक एक का अपने सीमा से अधिक वैभव का प्रमाण है । इसी क्रम में एक परमाणु अपने लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई से अधिक क्षेत्र में अपने प्रभाव को बनाए रखता है । इसका प्रमाण एक परमाणु, दुसरे परमाणु के बीच में शून्य स्थली दिखाई पड़ती है । इसी प्रकार परमाणु में निहित प्रत्येक अंश के परस्परता में भी शून्य स्थली रहता ही है । यह साम्य ऊर्जा सहज वैभव है। ऐसे ऊर्जा में निहित प्रत्येक परमाणु अपने त्व सहित पहचान और महिमा को स्थापित किया रहता है । यही प्रभाव क्षेत्र का तात्पर्य है । इसको और भी समझने जाए तो हर एक, एक-दूसरे के साथ व्यवस्था सहज वैभव में भागीदारी रुप में ही होते हैं । इससे प्रभाव क्षेत्र का तात्पर्य व्यवस्था और भागीदारी का अर्थ और ध्वनि, मनुष्य में आवश्यकता का होना समझ में आता है । इसी प्रकार एक से अधिक परमाणु, अणु, अणु रचित पिण्ड और परमाणु ही स्वयं गठनपूर्णता सहित जीवन पद में संक्रमित होने, अमरत्व अर्थात् परिणाम विहिन स्थिति गति सहित सम्पन्न होने का साक्ष्य, आशा, विचार, इच्छा, संकल्प, प्रमाण के रूप में दृष्टव्य है । आशा और आंशिक विचारों के रूप में जीवों में दृष्टव्य है ।

वनस्पतियों में जीवन होता नहीं है। अर्थात झाड़-पौधे को जीवन संचालित करता नहीं है ।

मानव में जीवन का अध्ययन मानव से ही हो पाता है । जीवन का सहज वैभव और साक्ष्य आशा, विचार, इच्छा, संकल्प प्रमाणिकता के रूप में मानव परंपरा में देखने को मिलती है । इनकी क्रियाएं स्वाभाविक रूप में अपने अर्थों को सर्वमानव में प्रकाशित करते ही रहते हैं और स्वीकृत रहते हैं । मानव सहज उक्त पाँचों अभिव्यक्ति में से आशा, विचार, इच्छाओं को कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा व्यक्त करते हुए मानने तक शरीर को जीवन मानता हुआ देखा जाता है, उक्त विधि से आशा, विचार, इच्छाओं को कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों की सीमा में परिसीमित करना जब संभव नहीं हो पाता है तभी से आशा, विचार, इच्छाओं का मूल रूप जानने, मानने, पहचानने की इच्छाएं स्वयंस्फूर्त होना पाया जाता है । इसी के साथ-साथ जैसा आशा, विचार, इच्छा, संकल्प और प्रमाणिकता और आस्वादन, तुलन, चिन्तन बोध और अनुभव जीवन सहज क्रियायें होने के कारणवश जीवन समुच्चय आशा, विचार, इच्छा के परिसीमा में व्याख्यायित नहीं हो पाती है। यही मुख्य कारण है ।

जीवन प्रत्येक मनुष्य में मूल रूप है । जीवन शक्तियाँ और बल अविभाज्य रूप में क्रियाशील रहते ही हैं । इसी कारणवश जीवन के आँशिक क्रियाविधि से सम्पूर्ण क्रियाओं का व्याख्या होना संभव ही नहीं है। यह भी देखा गया है

अनुभव के अनन्तर भी सम्पूर्ण क्रियाएं सहज रूप में वर्तमान रहता ही है । इन सभी क्रियाएं अनुभव के अनुरूप होना अवश्य ही देखा गया है । साथ ही अनुभव अस्तित्व में ही होना, अस्तित्व से होना, अस्तित्व के लिये होना पाया गया । प्रत्येक मनुष्य अपने अस्तित्व को स्वीकारता ही है जबकि शरीर समयाविधि के अनुसार विरचित हो जाता है । इसे परंपरा के रूप में देखा गया है । इसलिये ऐसी शरीर रचना विरचना को जन्म और मृत्यु कहा जाता है । जबकि जीवनज्ञान के अनन्तर जीवन का अमरत्व, स्वाभाविक रूप में जीवन को समझ में आता है ।

अस्तित्व में जीवन ही अमर पद में और अस्तित्व नित्य पद में होना पाया जाता है । अस्तित्व ही व्यापक, अनन्त, अमर, रचना-विरचना के रूप में वर्तमान है । रचना विरचनाएँ परिणामों के रूप में विद्यमान है ही। रचना की अवधि में जो द्रव्य वस्तुएँ दिखाई पड़ती है, विरचना के अनन्तर भी उतने ही वस्तु अस्तित्व में होते ही है । जैसे इस पत्थर को कूट-कूटकर अनन्त टुकड़े में बाँटने के उपरान्त भी मूलतः पत्थर के रूप में जितने भी द्रव्य वस्तुएँ है, वे सब पत्थर के रूप में पाया जाता है । इसी प्रकार एक झाड़ अपने रचना रूप में जितने द्रव्य वस्तुओं से वैभवित रहता है उसे अनेक रूप में बांटने के उपरान्त भी यथा उसको कूट-पीसकर, सुखाकर, जला करके और कुछ भी करके देखने के उपरान्त भी तरल, विरल, ठोस के रूप में अथवा विरल और ठोस के रूप में सभी पदार्थ

यथावत विद्यमान रहते हैं । तीसरे विधि से एक जीव, एक मनुष्य शरीर रचना में कितने भी द्रव्य और वस्तुएँ समाहित, संयोजित और वैभवित रहते हैं, उसे जलाने, गलाने, कुछ भी विधि से अनेक, अनंत टुकड़े में बांटने के उपरान्त रचना के दौरान जितने द्रव्य वस्तुएँ रहती हैं वे सब उतने ही रहते हैं। यही मुख्य रूप में रचना विरचना के रूप में देखने की विधि है । इसे सम्पूर्ण, व्यक्ति देखता ही है या देख सकता है । रचना विरचना स्वयं इस बात का द्योतक है । कोई रचना अमर नहीं है । यह ध्वनि अपने आप से निष्पन्न होती है । यह स्मरण में रखने योग्य तथ्य है कि सम्पूर्ण रचना विरचनाएँ, किन्हीं ग्रह-गोल पर ही होना पाया जाता है । ऐसा सभी ग्रह-गोल जिस पर रचनाएं होते है वह सदा-सदा ही पदार्थ, प्राण जीव और ज्ञानावस्था मानव के रूप में होना पाया जाता है । इस धरती पर इसका साक्ष्य सम्पन्न हो चुकी है । विचारने और निष्कर्ष पाने का बिन्दु है कि यह धरती भी एक रचना है और इस धरती में सम्पूर्ण रचनाएं है । जैसे पहले चारों अवस्थाएं कही गई है । इस धरती में जीता जागता चारों अवस्थाएं विद्यमान है । इन चारों में ये अर्थ दृश्यमान होते हुए धरती विरचित होते हुए देखने को नहीं मिलता है और इन चारों अवस्थाओं के होते धरती अपने दृढ़ता को बनाए रखता हुआ मनुष्य को देखने को मिला है । इससे यह पता चलता है और प्रमाणित होता है कि भौतिक-रासायनिक रचना विरचनाएँ धरती के ऊपरी सतह पर होते हुए धरती अपने वैभव बनाए रखने में क्षमता सम्पन्न है । दूसरे क्रम

में यह धरती अपने आप में व्यवस्था होते हुए समग्र व्यवस्था में भागीदारी करता हुआ दृष्टव्य है । जैसा यह धरती अपने चारों अवस्था सहित एक व्यवस्था के रूप में है ही इसी के साथ-साथ एक सौर व्यूह में भागीदारी निर्वाह करता है । यह भी हर जागृत मानव को स्पष्ट रूप में ज्ञात है । हर सौर व्यूह अनेक सौर व्यूहों के साथ व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने के क्रम में अनन्त सौर व्यूह, अनन्त ग्रह-गोल मानव सहज कल्पना में आता ही है । असंख्य रूप में अर्थात मानव गिन नहीं सकता है इतना संख्या में ग्रह गोल असीम ऊर्जा में आकाश में दिखाई पड़ते हैं । इस प्रकार यह धरती अपने में चारो अवस्थाओं से समृद्ध होना स्पष्ट है और मनुष्य जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में इस धरती पर है । शरीर परंपरा स्थापित हो चुकी है । जीवन अस्तित्व में है ।

गठनपूर्ण परमाणु जीवन पद में वैभवित होते हैं । जीवन पद में संक्रमण अस्तित्व सहज व्यवस्थानुसार सम्पन्न होता है। इस क्रियाकलाप में मनुष्य की कोई योजना समाहित नहीं है । जीव प्रकृतियों और मनुष्य शरीर रचना विधि पर्यन्त भी मनुष्य का कोई हस्तक्षेप नहीं है । जब से मनुष्य इस धरती पर प्रकट हुआ तब से ही जागृति की अपेक्षा रहते हुए जागृति की ओर निश्चित दिशा, गति, प्रक्रिया, प्रणाली, पद्धति सहज ज्ञान, विज्ञान, विवेकपूर्ण प्रवृत्तियाँ प्रमाणित न होने के फलस्वरूप शरीर को जीवन समझते हुए अथवा शरीर को निरर्थक समझते हुए, जितने भी प्रयास हुआ उन सभी प्रयासों के फलन में

जागृति प्रमाणित नहीं हो पाया । इस विधि से जीवन और शरीर अस्तित्व सहज रूप में अवस्थित होते हुए जिस अर्थ के लिये मानव का इस धरती पर अवतरण हुआ है भ्रमवश उसके विपरीत कुछ भी किये गये, उससे मानव अपने चिराशित जागृति की दिशा और कार्यक्रम को पाना एक अनिवार्य स्थिति निर्मित हुई । इसको ऐसा भी सोचा जा सकता है जितने भी प्रकार से मानव इस धरती पर जीने का प्रयास किया उन सबसे जहां पहुंचे उस स्थिति पर पुनःविचार करने के लिये बाध्यता निर्मित किया है। यही विगत के सम्पूर्ण प्रयोगों का फलन है । इसमें चिन्हित स्वरूप यही है कि धरती अपने संतुलन को खो रहा है अथवा धरती संतुलन से असंतुलन की ओर परिवर्तन होने की सूचना संभावना मानव को विदित हो चुकी है । दूसरा इसका कारण में मानव अपने संतुलन को न पहचानना ही प्रधान कारण है । हर मुद्दे मोड़ में मानव आवेश और आवेशकारी विधियों को अपनाया है । इसका साक्ष्य यही है भोगोन्मादी समाजशास्त्र, लाभोन्मादी अर्थशास्त्र और कामोन्मादी मनोविज्ञान है जिसको परंपरा में अति महत्वपूर्ण विधि से पढ़ाया जाता है । न पढ़ाते हुए भी आचरण व्यवहार मुद्रा भंगिमा में अपेक्षा आकांक्षा के स्थानों पर अधिकांश स्थानों में मनुष्य में अधिकांश भाग इन्हीं आवेशजन्य वाली लक्षणों को प्रकाशित करता रहता है । इन नजरिया से पता चलता है मानव अपने चिराशित जागृति को पहिचाना नहीं है । इन्हीं उन्मादत्रय में ऊँचाई को पाना सम्मान का और वैभव का आधार भी माना

गया है । इस मुद्दे को यहां ध्यान दिलाया गया कि यह मान्यताएँ अर्थात उन्मादत्रय संबंधी जितने भी विचार हैं, प्रवृत्तियाँ है यह सब जागृति के विपरीत हैं । जागृति का प्रमाण समाधान, समृद्धि, अभय सह-अस्तित्व का अविभाज्य वर्तमान है । यह अथ से इति तक ध्यान में आने व सर्वमानव में सार्थक होने का आशय समाहित है । इसके साथ यह भी आशय समाहित है कि हम संग्रह सुविधावादी विधि को सटीक मूल्यांकन करे। सर्वशुभ रूपी कार्यक्रमों, विचारों, प्रवृत्तियों, निष्कर्षों को मानव के सम्मुख प्रस्तुत करना व्यवहारवादी समाजशास्त्र का प्रधान उद्देश्य है ।

उपभोक्तावादी संस्कृति सदा-सदा के लिये सामाजिक होना संभव नहीं है । **उपायों से भोग विधियों को पहचान लेना ही उपभोक्तावाद है।** उपभोक्तावादी विचार स्वयं संग्रह की ओर है और सुविधा उसका लक्ष्य बना रहता है । सम्पूर्ण सुविधाएँ इन्द्रिय सन्निकर्ष में व्याख्यायित है । इसे भोगवाद के लिये आधार रूप में पहचानने सर्वोपरि उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत किया गया । कर ही रहे हैं । ऐसे उपभोक्ता संस्कृति में अच्छे से अच्छे मकान, अच्छे से अच्छे गाड़ी, अच्छे से अच्छे वस्तु, आभूषण अथवा प्रसाधन और अलंकार विधियाँ गण्य है । उन्मुक्त विचारों और प्रवृत्तियों के लिये अनुकूल स्थलियों का भी परिकल्पनाएँ है । यही एक परिवार की सीमा में शयनागार, प्रसाधनागार और आहार स्थली (भोजनागार) के रूप में पहचाना गया है । इसकी साज सजावट रचना उपयोग भंगिमाओं

पर चर्चायें उन्नतशील विधि से होती ही रहती है । ऐसे प्रवृत्तियों में पले हुए व्यक्तियों को देखने पर सर्वेक्षण करने पर यही दिखाई पड़ती है । इनमें से सर्वाधिक लोग उत्पादन से जुड़े हुए नहीं है । सम्पूर्ण वैज्ञानिक आवाजों का बुलंद होने के क्रम में प्रौद्योगिकियों की स्थापना और उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन जोर शोर विधि से देखने को, सुनने को मिलती ही रहती हैं । इन आवाजों में जोर शोर से यही कहा जाता है हर वस्तु आप जो चाहेंगे वह सब डब्बा में बंद होकर आपके घर पहुंचेंगे । उसके भरपायी में हर उपभोक्ता को मुद्रा भर देना है आपको कुछ करना नहीं है । उपभोक्ताओं को उत्पादन की ओर सोचना ही नहीं है । सभी उत्पादन उपभोक्ताओं के उपहार के रूप में ही प्रस्तुत होने का घोषणा करते हैं । यह विशेषकर आहार वस्तुएँ, अलंकार वस्तुएँ और आवास वस्तुओं में से ईंटा, पत्थर, रेत और लोहा को छोड़कर बाकी सब बंद पैक में ही आती है । सभी बंद पैक, उत्तम पैक, आकर्षक पैक में सुरक्षित होकर उपभोक्ता के पास पहुंचता है । इसमें उपभोक्ता भी बहुत बाग-बाग होते हैं । इसमें बाग-बाग होने के तर्क में से एक डब्बे के खाने से घर काला नहीं होता है । भले ही सम्पूर्ण शहर प्रदूषण से भरा हो । यथा कहीं भी शुद्ध हवा नहीं मिलता हो घर के अन्दर धुँआ का दाग न होने पर बाग-बाग होता हुआ, गदगद होता हुआ उपभोक्ताओं को देखा जा सकता है। स्वच्छ-सुंदर डब्बे के अंदर आहार औषधि वस्तुएँ बंद होने के उपरान्त उसे पावन वस्तु मानी ही जाती है । भले ही उसके अन्दर कुछ भी

रहता हो। इस विधि से पैक और नामों पर विश्वास दिलाना ही सम्पूर्ण उपभोक्ता संसार में प्रचार वह भी आकर्षक प्रचार को अपनाया जाना देखा गया है । आकर्षक प्रचार के तात्पर्य में सर्वाधिक भाग किसी लड़का-लड़की का स्वीकृतियाँ, मुद्राएँ, भंगिमाएँ अंगहार सब सविपरीत यौन उन्माद के लिए सूत्रित है । यही आकर्षक प्रचार का तात्पर्य है । जैसा एक व्यक्ति प्रचार तंत्र विधि से बीड़ी पीता हुआ अपने निश्चित मुद्रा, भंगिमा, अंगहार सर्वाधिक वैभवशाली स्थिति में प्रस्तुत हो ऐसी बीड़ी पीने की प्रक्रिया को देखकर अनेकानेक लोगों को पसंद आ जाये। इसमें लड़कियों को पसंद आना भी एक मुद्दा रहती है । इसी प्रकार गांजा, दारू पीने की विधि में अनेकों प्रकार के व्यंजनों के साथ खाना खाने की प्रक्रिया के रूप में और उसके सजावट के रूप में, कपड़ों के पहनावा-पसंदी के रूप में अंततोगत्वा प्रचार माध्यम से जिस वस्तु को बेचना है । उसको भ्रमित लोकमानस स्वीकारना प्रचार का सफलता माना गया है ।

अस्तु, संग्रह सुविधा भोग, अतिभोग, बहुभोग मानसिकता-उपक्रम, प्रौद्योगिकी, विज्ञान विधि से समाज रचना उसका निरंतरता और इस पृथ्वी का नैसर्गिक संतुलन अर्थात पृथ्वी के चार अवस्थाओं के परस्परता में संतुलन और सम्पूर्ण मानव में संतुलन चिन्हित रूप में प्राप्त नहीं हो पाता है। यह सम्पूर्ण मेधावियों में स्पष्ट हो चुकी है । अतएव इसका विकल्प गतिशील होना ही एकमात्र उपाय है ।

विकल्पों का प्रधान बिन्दुओं को,

1. चेतना विकास मूल्य शिक्षा-संस्कार तकनीकी शिक्षण कार्य में विकल्प,
2. ज्ञान, दर्शन, विवेक, विज्ञान विधि विचारों में विकल्प,
3. न्याय सुरक्षाा विधान में विकल्प,
4. स्वास्थ्य संयम कार्य में विकल्प,
5. विचार व आचरण विधि में विकल्प,
6. व्यवहार कार्य विधि में विकल्प,
7. उत्पादन विधि में विकल्प,
8. विनिमय विधि में विकल्प,
9. उपयोग विधि में विकल्प ।

इन विकल्पों को हम भले प्रकार से पहचान चुके हैं । इस विश्वास से कि हम जिन विकल्पों को अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के सूत्र के रूप में समझ चुके हैं वह सर्वमानव में स्वीकृत है ही । जैसे प्रसंग के रूप में -

1. उत्पादन कार्य में स्वायत्त होने के उद्देश्य सहित प्रत्येक परिवार उत्पादन कार्य में भागीदारी का निर्वाह करना । समझदारी से समाधान, श्रम से समृद्धि ।
2. उत्पादन कार्य में नियोजित होने वाले श्रम मूल्य का पहचान उसका मूल्यांकनपूर्वक श्रम विनिमय प्रणाली को

अपनाना । यह लाभ हानि मुक्त होना स्वीकार्य है ।

3. आवश्यकता से अधिक उत्पादन, उत्पादन से उपयोग, उपयोग से सदुपयोग, सदुपयोग से प्रयोजनशील विधियों को स्वीकारा गया है । उपयोग विधि से परिवार न्याय और व्यवस्था, सदुपयोग विधि से समाज न्याय और व्यवस्था, प्रयोजनीयता विधि से प्रमाणिकता और जागृति मानव कुल में लोकव्यापीकारण होने का सहज सुलभता को देखा गया ।

4. व्यवहार विधि में मूल्य मूलक मानसिकता कार्य व्यवहारों को स्वीकारा गया है । यह कम से कम विश्वास के रूप में पहचाना गया है । विश्वास को वर्तमान में ही पहचानना, मूल्यांकन करना सहज है । वर्तमान में विश्वास अनिवार्यता के रूप में पहचाना गया है ।

5. विचार विधि में विकल्प को सह-अस्तित्ववादी विचार को स्वीकारा गया है । यह अस्तित्व सहज विधि से सम्पूर्ण विधाओं में सह-अस्तित्व प्रभावशाली होने, सर्वमानव जीवन सहज रूप में ही साथ-साथ जीने के अरमानों के रूप में पहचानी गई है । इसे हम भली प्रकार से स्वीकार कर चुके है । इसे सर्वमानव तक पहुंचाने के लिए 'समाधानात्मक भौतिकवाद', 'व्यवहारात्मक जनवाद' और 'अनुभवात्मक अध्यात्मवाद' को प्रस्तुत किया जा चुका है । इसमें सम्पूर्ण इकाई

अपने स्वभावगति में समाधान उसकी निरंतरता है । व्यवहारपूर्वक ही सर्वमानव आश्वस्त विश्वस्त होने की व्यवस्था है और चाहता है । इसे भले प्रकार से देखा गया । यही सर्वमानव में समाधान है । अस्तित्व में अनुभव होता है इसे प्रमाणित कर भी देखा है । हर मनुष्य अनुभव (तृप्ति) मूलक विधि से जीना चाहता है । यही विचार में विकल्प है ।

6. ज्ञान दर्शन विज्ञान में विकल्प क्यों, कैसा, क्या प्रयोजन को इस प्रकार समझा गया है । जीवन ज्ञान अध्ययनगम्य है इसीलिये यह सबको सुलभ हो सकता है । दूसरा सम्पूर्ण अस्तित्व ही मानव को देखने में आता है । अर्थात् समझने में आता है । इसलिये अस्तित्व दर्शन हमें समझ में आया है और सर्वमानव समझने योग्य है और चाहता है । विकास विधि सह-अस्तित्ववादी सूत्रों के आधार पर सम्पूर्ण विज्ञान विश्लेषित होना सहज है । इसीलिये सर्वमानव-मानस इसे समझने का माद्दा रखता है । इतना ही नहीं, इसे सर्वमानव चाहता है ।

7. न्याय विधि मानव सहज आचरण रूप में हम पहचान चुके हैं । सर्वमानव जीवन सहज रूप में न्याय की अपेक्षा करता ही है ।

8. स्वास्थ्य संयम - यह मानव कुल में बारम्बार विचार प्रयोग होते ही आया है । यह जीवन जागृति को व्यक्त

करने योग्य रूप में कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय सम्पन्न मनुष्य शरीर तैयार रहने से ही है । पुनश्च, जीवन सहज जागृति को मानव परंपरा में प्रमाणित करना ही स्वस्थ शरीर का मूल्यांकन है । तीसरे प्रकार से, जीवन जागृति स्वस्थ शरीर द्वारा प्रमाणित होता है । जीवन जागृति का साक्ष्य जीवनज्ञान, अस्तित्वदर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान पूर्वक परिवार सभा से विश्व परिवार सभाओं में भागीदारी को निर्वाह करना, सुख; शांति; संतोष; आनन्द का अनुभव करना, समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना । इसे हम भली प्रकार से स्वीकार कर चुके हैं ।

9. शिक्षा-संस्कार में मानवीकृत शिक्षा को हम भले प्रकार से पहचानें है इसमें मानव का सम्पूर्ण आयाम, दिशा, परिप्रेक्ष्य और कोणों का अध्ययन है । देश और काल, क्रिया, फल, परिणाम सहज समाधानपूर्ण विधि को समझा गया है । यह सर्वमानव में जीवन सहज रूप में स्वीकृत है ही ।

ऊपर कहे अनुसार संपूर्ण मानव में सुखी होने का अपेक्षाएं समान रूप से देखने को मिलता है । उसका भाषा केवल सर्व-शुभ ही है और उसका स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व है । ऐसी सर्वशुभ स्वरूप ही मानव मात्र की अपेक्षा होना, उसका स्वरूप सह-अस्तित्व विधि से अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में परिलक्षित प्रमाणित

होना पाया जाता है । परिलक्षित होने का तात्पर्य परिपूर्णतया लक्ष्य सम्पन्न होने से है अथवा परिपूर्णतया लक्ष्य को जानने, मानने, पहचानने से है । दूसरे क्रम में परिपूर्णतया परीक्षणपूर्वक स्वीकार किये गये लक्ष्य अथवा सार्वभौम लक्ष्य है । सार्वभौमता का मतलब सम्पूर्ण मानव से आवश्यकीय, वांछित, अनिवार्यतः एवं प्रमाण सहज लक्ष्य है । मानव परंपरा में ऊपर कहे नौ विधाओं से सार्वभौम शुभ लक्ष्य के रूप में स्वीकृत होना सहज है । इसके साथ यह भी सम्भावना समीचीन रूप में देखने को मिला है कि ऊपर कहे नौ बिन्दुओं में स्पष्ट किया गया कि अवधारणाओं का धारक-वाहक केवल मानव ही है । ऐसा मानव सहज धारक वाहकता सर्वशुभ के अर्थ में सम्पूर्ण ताना-बाना का आधार प्रत्येक मानव ही जीवन सहज रूप में दृष्टा होना देखा गया है । दृष्टा पद का वैभव को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में देखा गया है । यह केवल मानव में ही प्रमाणित होता है । जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन के अनन्तर प्रत्येक मनुष्य में जीवन दृष्टा होने का सत्यापन सहित, स्वीकृति जीवन तृप्ति अर्थात जीवन जागृति पूर्णता उसी के प्रकाश में अर्थात् जीवन जागृति के प्रकाश में दूसरे विधि से जीवन तृप्ति के प्रकाश में सम्पूर्ण कार्य व्यवहारों को निश्चित करने, निर्वाह करने, आचरण करने का स्वरूप अपने आप समझ में आता है । यह सब आवश्यकता के रूप में स्वीकृत होता है । फलस्वरूप प्रमाणित होना सहज हो जाता है । इस विधि से ही जीवन तृप्ति और सर्वशुभ कार्यक्रम और इनमें सहज

संगीत होना देखा गया है । जीवन तृप्ति का मूलरूप परम जागृति ही है । जागृति का प्रमाण अस्तित्व दर्शन ज्ञान जीवन ज्ञान मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में पारंगत और प्रमाणित होना ही, इन प्रमाण विधि में विचार सहित कार्यक्रम प्रसवित होना देखा गया है । यही मानव को निश्चित दिशा संकेत करने, लक्ष्य सहज विधियों को निश्चित करने का विचार एवं कार्यकलाप है । ऐसे कार्यकलाप ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहित, सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय अर्थात वर्तमान में विश्वास और सह-अस्तित्व को अनुभव करने और प्रमाणित करने का नित्य जागृत कार्य है । यह सर्वमानव स्वीकृत है, अपेक्षा है ही ।

जागृति का मूल कार्यक्रम शिक्षा-संस्कार ही है । मानव परंपरा में भ्रमित विधि क्यों न हो उसमें भी शिक्षा-संस्कार अर्थात हर समुदाय में भी शिक्षा-संस्कार, संविधान और व्यवस्था का चर्चा, स्वरूप, निश्चयन स्वीकृति सहित ही सामुदायिक संविधान और व्यवस्था देखने को मिला । इसके मूल में शिक्षा-संस्कार का होना स्वाभाविक रहा । मानवीयतापूर्ण परम्परा में भी शिक्षा-संस्कार व्यवस्था और संविधान को पहचाना गया है । इन चार मुद्दे में से शिक्षा-संस्कार ही मानव सम्पूर्णता का होना पाया गया है । मानव सहज सम्पूर्णता का अर्थात मानव अपने बहुआयामी अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन सहज अपेक्षा आवश्यकता स्वीकृतियों के रूप में नौ बिन्दुओं में इंगित कराया है । इसी नौ बिन्दुओं में इंगित वस्तु का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा,

सहित व्यवहार, कर्म, अभ्यास पूर्ण विधि से प्रमाणित होना ही शिक्षा-संस्कार, सम्पन्नता और वाहकता; जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण में प्रमाणित होने के उपरान्त सहज होना पाया जाता है । इसे शिक्षा और शिक्षण संस्थापूर्वक ही सम्पूर्ण मानव में लोकव्यापीकरण करना परम आवश्यक है ।

शिक्षण संस्थाएं प्रचलित रूप में अनेकानेक भाषा, देश विधि से स्थापित है ही । इसके बहुसंख्या रूप में मानव अध्ययन किया हुआ है अर्थात शिक्षा-संस्कार पाया हुआ है । प्रचलित शिक्षा-संस्कार से क्या फल, परिणाम, निष्पन्न हुई है यह समीक्षित हो चुकी है । जो मानव मानस में सर्वाधिक भाग नकारात्मक सूची के रूप में दिखाई पड़ती है । इसका भी नीर-क्षीर, न्याय अर्थात स्पष्ट रेखाकरण इस प्रकार देखा गया है कि सामान्य आकांक्षा और महत्वाकांक्षा में सार्थक तकनीकी मानव सहज स्वीकृति के रूप में, सामरिक तंत्र और तकनीकी ह्रास विधि नियम रूपी विज्ञान अस्वीकृत है। जैसे-विखण्डन विधि ह्रास की ओर पदों को इंगित करता है । जैसे परमाणु एक व्यवस्था के रूप में है उसके विखण्डन के अनन्तर वह एक व्यवस्था के रूप में दिखाई नहीं पड़ती है इसके विपरीत अनिश्चित गति से दिखना हो पाता है क्योंकि निश्चित गति परमाणु में ही दिखाई पड़ती है और परमाणु में एक से अधिक अंशों का होना पाया जाता है । निश्चित गति का तात्पर्य हर निश्चित संख्यात्मक परमाणु अंशों से गठित परमाणुओं का आचरण निश्चित रहने से है । इनमें कोई दुविधा नहीं रहती है ।

अतएव परमाणु के विखण्डन के उपरान्त परमाणु सहज व्यवस्था, अणु विखण्डन के उपरान्त अणु सहज व्यवस्था, अणु रचित रचनाओं के विखण्डन के उपरान्त उन-उन रचना सहज व्यवस्थाएँ दिखाई नहीं पड़ती है । इसका तात्पर्य यही हुआ, विखण्डन कार्य का उन्माद से ही व्यवस्था का विखण्डन होना सिद्ध हुआ । उन्माद इसलिये कहा गया कि जागृत मानव किसी व्यवस्था का विखण्डन करता नहीं। इतना ही नहीं हर जागृत मानव व्यव्स्था का पोषक और संरक्षक, धारक-वाहक होना पाया जाता है । इस परीक्षित तथ्य के आधार पर हर मनुष्य यह निश्चय कर सकता है कि विखण्डन विधि और कार्य मानव सहज मानवीयता का द्योतक नहीं है । इसी के साथ यह भी आवाज निश्चित रूप में मिलता है कि व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी ही मानव तथा मानवीयता का द्योतक है । इस विश्लेषणोंपरान्त पाये गये फल-परिणामों का मूल्यांकन से इस निष्कर्ष में आते हैं कि मानव समाज अपने अखण्डता और सार्वभौमता के अर्थ में स्वीकृत है और अपेक्षा बनी हुई है । अतएव इसका मूल स्रोत रूपी मानवीय शिक्षा-संस्कार पक्ष मानवीयतापूर्ण व्यवस्था और मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी सार्वभौम राष्ट्रीय चरित्र, नैतिकता और मूल्यों का अविभाज्य आचरण (संविधान) का स्वरूप और महिमाओं का आवश्यकता सूत्र पर आधारित विधि से अध्ययन करेंगे । क्योंकि अध्ययन से आचरण तक ही समाजशास्त्र का किंवा सम्पूर्ण शास्त्र का प्रयोजन और आवश्यकता स्वयं एवं सार्वभौम शुभ के रूप में

तृप्ति और उसकी निरंतरता को पाना सहज समीचीन रहता ही है । इसलिये इसका अध्ययन और आचरण सुलभ है ।

पहले नौ बिन्दुओं में इंगित किये गये तथ्यों का अध्ययन ही शिक्षा-संस्कार का सर्वसाधारण और आवश्यक स्वरूप है । अस्तित्व में सदा-सदा ही समाधान और सामरस्यता सह-अस्तित्व सहज वर्तमान होने के कारण है । और विरोधाभास और विशेष तथा सामान्य जैसी विषमताओं का कोई गवाही नहीं है । ऐसा विरोधाभास मनुष्य में क्यों आया और कैसे आया इसके उत्तर में पहले विदित कराया गया है कि मनुष्य विभिन्न जलवायु में इस धरती में अवतरण होने और विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में परंपरा को (अर्थात पीढ़ी से पीढ़ी) को सुदृढ़ बनाने के क्रम में विरोधाभास को ही धातु युग, राज्य और आस्थायुग तथा विज्ञान युग में भी स्वीकारना हुआ या सीमित रहना हुआ या विवश रहना हुआ । यही सम्पूर्ण अनिष्ट जो बुद्धिमान मनुष्य जान लिया है, जिसको अभी भी जानना शेष है ऐसे सभी अनिष्ट घटनाओं का कारण सिद्ध हुआ है । यही मानव में अभी तक की भय, प्रलोभन, आस्थाओं से संबंधित सम्पूर्ण मान्यताएँ है । इसी में श्रेष्ठता-नेष्ठता, ज्यादा-कम, विद्वान-मूर्ख, ज्ञानी-अज्ञानी जैसी वितण्डावाद बना ही है । यही विरोधाभास समस्याएँ सब मानव परंपरा में भुक्त-भोगित स्थितियाँ है । वितण्डावाद और विषमताएँ किसी मानव को स्वीकार्य नहीं है । भले ही पंचमानव कोटि में से पशुमानव और राक्षस मानव क्यों न हो । विषमता दुष्टता की पीड़ा मानव को स्वीकार नहीं

हुआ क्योंकि दुष्टता से, विषमता से सदा विरोध होते ही रहा । अब उसका निराकरण ही समाधान होना सहज है । समाधान, समृद्धि विधि से सम्पूर्ण विषमताएँ समाधान में परिवर्तित होने का मार्ग प्रशस्त होता है जैसा प्रत्येक मनुष्य समझदारी से समाधान श्रम से समृद्धि पूर्वक स्वायत्तता से समृद्ध होने से ही समाधानित होता है । यही परिवार मानव का स्वरूप भी है । यह चेतना विकास मूल्य शिक्षा-संस्कार विधि से सर्वसुलभ होने की व्यवस्था मानवीय शिक्षा-संस्कार परंपरा का वैभव है । शिक्षा-संस्कार मानव परंपरा में अविभाज्य अभिव्यक्ति संप्रेषणा है । शिक्षा-संस्कार परंपरा का अभिव्यक्ति संप्रेषणाएं मानव जागृति का प्रमाण है । जागृति के प्रमाण का तात्पर्य स्वायत्त मानव के रूप में पीढ़ी से पीढ़ी समृद्ध बनाने से है । इससे स्पष्ट हो गया है कि शिक्षा-संस्कार का उद्देश्य स्वायत्त मानव के रूप में समृद्ध करने में सक्षम रहना है ।

स्वायत्त मानव स्वयं के प्रति विश्वास, स्वयं में विश्वास का तात्पर्य व्यवस्था के रूप में जीने, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने में विश्वास से हैं । श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, व्यवस्था में जीने और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने में समर्थ सभी व्यक्ति श्रेष्ठ हैं जो प्रमाण के रूप में प्रमाणित किये जा रहे हैं । ऐसे सभी के प्रति सम्मान होना स्वाभाविक है । यही तथ्य से श्रेष्ठता के प्रति सम्मान स्पष्ट है । इसे ऐसा भी कहा जा सकता है स्वयं जिस बात को चाहते हैं उन तथ्यों में प्रमाणित सभी व्यक्ति सम्मान के लिये पात्र हैं । ऐसे व्यक्तियों के प्रति

सम्मान व्यक्त करने से हैं । **सम्मान का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में स्वीकृति और मूल्यांकन सहित संप्रेषित हो पाना ।** संप्रेषणा का भी तात्पर्य पूर्णता के ही अर्थ में ही प्रस्तुत हो पाना बनता है। इसलिये सम्मान सहज श्रेष्ठता सर्वमानव में स्वीकृत होता है । स्वायत्त मानव में स्वयं के प्रति सम्मान, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान सहित ही प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन प्रमाणित होता है । संतुलन का तात्पर्य ज्ञान दर्शन, विवेकपूर्ण तर्क (विवेचना, विश्लेषण) और आचरणों में सामरस्यता, एक दूसरे के साथ पुष्टि प्रमाण होने से है । **व्यक्तित्व का तात्पर्य किये जाने वाले आहार, विहार, व्यवहार और कार्यों से मूल्यांकित होने से है । प्रतिभा का तात्पर्य सम्पूर्ण आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य, देश, कालों में प्रमाणिकता और उसकी निरंतरता, समाधान और उसकी निरंतरता के रूप में अभिव्यक्त संप्रेषित, प्रकाशित करने में विश्वास ।** इसका सत्यापन भी इसी के साथ समाया रहता है । सत्यापन मैं कर सकता हूँ, करूँगा, किया हूँ, कर रहा हूँ, इन ध्वनि और इन ध्वनियों से संकेतिक ध्रुवों से है । किया हुआ हूँ, कर रहा हूँ, यह कर सकता हूँ, करूँगा का प्रेरणास्रोत होना पाया जाता है । इसी विधि से परंपरा समृद्ध होने के तथ्य को समझा गया है ।

स्वायत्त मानव का व्याख्या प्रत्येक मनुष्य ही होना पाया जाता है । इसके बावजूद भाषा और शब्द के माध्यम से सच्चाई को इंगित कराने की प्रक्रिया, इसकी सार्थकता की अपेक्षा है ।

वांङ्मय सार्थकता का तात्पर्य सच्चाइयाँ अपने स्वरूप में इंगित होने से है । यह इंगित होना भी एक प्रक्रिया है । अतएव स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलनपूर्वक ही मनुष्य व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी होना पाया जाता है । व्यवहार में सामाजिक होने का तात्पर्य व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होना ही है । इस प्रकार मनुष्य ही प्रमाण का आधार है न कि वाङ्मय । वाङ्मय का स्मरण यहाँ इसलिये किया गया है कि वाङ्मय प्रमाण के आधार पर मानव जाति विविध परंपरा में क्षत-विक्षत हो चुका है । अर्थात स्वयं पर विश्वास हो पाने का मार्ग प्रशस्त नहीं हो पाता । प्रत्येक मनुष्य स्वयं पर विश्वास नहीं करेगा, तब तक अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का अंगभूत होना प्रमाणित नहीं करेगा । मनुष्य अपने को प्रमाणित किये बिना परंपरा होना संभव नहीं है । इसीलिये स्वायत्त मानव को पहचानने के उपरान्त ही स्वायत्त परिवार प्रमाणित होना देखा गया है । स्वायत्त मानव के परीक्षण, मूल्यांकन और प्रस्ताव क्रम में व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबन एक अनिवार्यतम अधिकार और अभिव्यक्ति है । व्यवहार में सामाजिक होने का मूल रूप आचरण ही है । मानवीयतापूर्ण आचरण में ही मूल्य, चरित्र, नैतिकता का प्रकाशन-संप्रेषणा होना पाया जाता है। मूल्यों का प्रमाण संबंधों को पहचानने के उपरान्त ही होता है । यह सर्वमानव विदित है अथवा सर्वमानव इसे परीक्षण कर सकता है । अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व विधि से सम्बन्ध नित्य

वर्तमान है । संबंध का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित होने से है । अनुबंध का तात्पर्य निष्ठा से है । वह भी स्वीकृतिपूर्वक स्वयं स्फूर्त निष्ठा से है । यह निष्ठा स्वायत्त मानव में ही प्रतिपादित और प्रमाणित होता है ।

मूल्य, चरित्र, नैतिकताएँ अविभाज्य रूप में स्वायत्त मानव प्रमाणित होने का क्रम ही आचरण है । मानव अपने स्वायत्त आचरण सहित ही कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित अनुमोदित रूप में सामाजिक होना प्रमाणित करता है। संबंधों के आधार पर जैसा मानव संबंधों को प्रयोजनों और व्यवस्था के सूत्रों के रूप में देखा गया है कि सम्मान संबंध जिसमें सम्मानित होने वाला और सम्मान करने वाले का परस्परता में होने वाले कार्यव्यवहार सम्मान संबंध का साक्ष्य है । सम्मान संबंध में स्पष्ट हो चुका है कि स्वयं से अधिक जागृत प्रमाणित व्यक्तियों के प्रति, स्वयं के प्रति विश्वास के आधार पर स्वयं स्फूर्त विधि से मुखरित और आचरित होने वाला क्रियाकलाप जिसका प्रयोजन सम्मानित होने वाले व्यक्ति में सम्मान किया या स्वीकृति होना आवश्यक है । सम्मान परस्परता में मूल्यांकन है । ऐसा सम्मान करने और सम्मानित होने का मूल्यांकन उभयतृप्ति का स्रोत होना पाया जाता है । सम्मान करने, सम्मान स्वीकृत करने का क्रियाकलाप ही जागृति सहज व्यवहार कहलाता है । संबंध स्वयं से, स्वयं के लिये, स्वयं में जाना, माना, पहचाना हुआ, निर्वाह करने के लिये आधार है । स्वयं में तृप्ति पाने का उद्देश्य अथवा तृप्त होने का

उद्देश्य और तृप्त रहने का उद्देश्य बना ही रहता है। संबंधों को पहचानने के उपरान्त उसका प्रयोजन केवल भय मुक्ति ही है। भय मूलतः भ्रम के रूप में होना विदित है । भ्रम; अधिक, कम, अथवा विपरीत पहचान और मान्यता है । यही भय प्रलोभन का कारण और स्वरूप है । इसी क्रियाकलाप को भ्रम नाम हैं । यहाँ यह भी स्मरणीय बिन्दु है कि अस्तित्व में केवल मनुष्य ही अपने ही प्रयासों से भ्रमित होता है क्योंकि मानव में ही कर्म करने में स्वतंत्रता, फल भोगने में परतंत्रता दिखाई पड़ती है। कोई भी कार्य करने के मूल में विचारों का होना पाया जाता है । विचार पूर्वक ही ज्यादा, कम या विपरीत कार्यों में ग्रसित हो जाता है । भयपूर्वक मानव भ्रमित कार्यों को करता ही है, प्रलोभनपूर्वक भी करता है । भयपूर्वक सभी भ्रमित कार्य अस्वीकृतिपूर्वक होता है, प्रलोभन से संबंधित सभी कार्य स्वीकृतपूर्वक होता है। इन दोनों विधा में भ्रम ही कारण है । आस्था विधा में स्वर्गवादी, जितने भी कल्पना-परिकल्पना मानव ने कर रखा है वह सब प्रलोभन का ही विस्तार रूप में होना पाया जाता है । नर्क में भी भय का ही विस्तार वर्णन होना पाया जाता है । इसके अतिरिक्त और कोई चीज आस्था विधा से खोजा जा रहा है वह प्रमाणित नहीं हो पायी अर्थात समाज परंपरा में शिक्षा, संस्कार, व्यवस्था, संविधान के रूप में प्रमाणित नहीं हुआ है । इसका विकल्प में ही जीवन ज्ञान परमज्ञान के रूप में जागृति और उसकी प्रमाण सहित परम्परा बनना संभव हो गई है । यह अध्ययनगम्य है । ऐसा जागृत

मनुष्य का आचरण ही मानव कुल का वैभव और संविधान होना पाया जाता है । इसी के पुष्टि में सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान अध्ययनगम्य हुआ है । फलतः मनुष्य में स्वायत्तता की सम्पूर्ण स्रोत नित्य समीचीन है । हर मनुष्य जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में होने के आधार पर जीवन ही जागृतिपूर्वक दृष्टापद में अपने ऐश्वर्य को प्रमाणित करने की सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज और उसके वैभव को जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह करने की आवश्यकता, अवसर समीचीन है । इस प्रकार हर व्यक्ति जागृति पूर्वक ही स्वायत्तता का प्रमाण है । स्वायत्त मानव रूप प्रदान करने की शिक्षा-संस्कार ही मानव परंपरा सहज जागृति का प्रमाण है ।

परंपरा न हो ऐसे स्थिति में इसका कल्पना ज्ञान, दर्शन, विचार और योजना कैसे उपलब्ध हो यह प्रश्न मानव जाति में आता ही है । इस सभी मुद्दे पर अनुसंधानपूर्वक हम प्रमाणित हो चुके हैं । अब केवल शिक्षा विधा में प्रमाणित होने की गति सहित कार्य कर रहे हैं । इसी क्रम में यह व्यवहारवादी समाजशास्त्र प्रस्तुत है ।

संबंधों के क्रम में मानव ऊपर कहे विधि से अपने जीवन सहज जागृति को प्रमाणित करता है । ऐसे सम्पूर्ण मूल्यांकन जीवन तृप्ति, व्यवहार प्रयोजन के ध्रुवों पर समीकृत होना पाया जाता है । जीवन तृप्ति का स्वरूप प्रमाणिकता के रूप में देखने को मिलता है । प्रमाणिकता अपने सम्पूर्णता में जीवन ज्ञान,

अस्तित्व दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही है । जीवन तृप्ति और उसका प्रमाण में, से, के लिये इससे अधिक या कम कुछ होती नहीं है । क्योंकि अस्तित्व स्वयं कम ज्यादा से मुक्त है । जीवन ज्ञान भी कम और ज्यादा से मुक्त है । जीवन ही जागृतिपूर्वक अस्तित्व दर्शन करता है । अस्तित्व में जीवन भी अविभाज्य वर्तमान है । इसी परम सत्यतावश मानव में प्रमाणित होने की आवश्यकता, अवसर सहज ही नित्य समीचीन है क्योंकि अस्तित्व और अस्तित्व में जीवन नित्य वर्तमान रहा आया है । हर मानव शरीर श्रेष्ठ रचना रूपी प्रकृति, विकासपूर्ण रूपी जीवन का संयुक्त साकार रूप में मानव तथा मानव परंपरा है । जीवन अपने जागृति को प्रमाणित करना ही मानव परंपरा में प्रधान कार्य है । जागृति को प्रमाणित करने के क्रम में सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज ही साक्ष्य है । यही जागृति लोकव्यापीकरण होने का भी साक्ष्य है ।

मानव संबंध के अतिरिक्त नैसर्गिक एवं ब्रह्माण्डीय संबंध भी बना ही रहता है । ब्रह्माण्डीय संबंध क्रम में मनुष्य का स्वभावगति सम्पन्न कार्यकलापों के पोषक होना पाया जाता है क्योंकि मनुष्य के इस धरती पर प्रकट होने के पहले भी और बाद भी इस धरती के संतुलन में ब्रह्माण्डीय किरणों का अथवा तरंगों का पूरकता सिद्ध हो चुकी है क्योंकि यह धरती समृद्ध हो चुकी है । इस धरती में जब से मानव धातु युग को पार कर आस्था, राज्य युग को झेलता हुआ वैज्ञानिक युग में प्रवेश होते ही इस धरती के असंतुलनकारी कार्यकलापों को सर्वाधिक

अपनाया । जिसका संस्कृति प्रसव स्वरूप उपभोक्ता विधि में मूल्यांकित हो चुकी है । उपभोक्ता विधि समाज विरोधी है यह भी मूल्यांकित हो चुकी है । अखण्ड समाज की अभीप्सा सर्वमानव में विद्यामन है । यह अभयता के अपेक्षा पर निर्भर है । इसलिये मानव संस्कृतिपूर्वक ही अखण्ड समाज की ओर मार्ग प्रशस्त होना पाया जाता है । अतएव ब्रह्माण्डीय किरणों से लाभान्वित यह धरती संतुलित रहने के क्रम में ही मानव को संतुलित रहने की आवश्यकता और अनिवार्यता है ।

नैसर्गिक संबंध सहज प्रक्रिया मानव में, से, के लिये अविभाज्य है। धरती, वायु, जल के साथ ही मानव शरीर परंपरा का होना पाया जाता है । ऐसी शरीर परंपरा स्वस्थ रहने की आवश्यकता है ही । शरीर स्वस्थता की परिभाषा पहले की जा चुकी है । जीवन जागृति पूर्वक परंपरा में व्यक्त होने योग्य शरीर ही स्वस्थ शरीर है । यह शरीर संतुलन का तात्पर्य है । नैसर्गिकता की पवित्रता इसके लिये एक अनिवार्य विधि है । इसी के साथ ऋतु संतुलन इस धरती पर उष्मा वितरण - विनियोजन कार्यक्रम में सशक्त भूमिका है । वातावरणिक और भूमिगत उष्मा धरती के ऊपरी सतह में संतुलन को बनाए रखने के लिये ऋतु संतुलित कार्यकलाप ही महत्वपूर्ण भूमिका है । ऋतु वातावरिणक उष्मा को भूमिगत करने और उसे आवश्यकतानुसार धरती अपने सतह में उपयोग करने के क्रम को बनाए रखता है । यथा आप हम सब इस बात को देखे हैं जैसे ही ठंडी ऋतु प्रभावित होता है वैसे ही धरती से उष्मा

बर्हिगत होता हुआ दिखाई पड़ती है जिससे धरती के ऊपरी सतह में जो चारों अवस्था है उन्हें संतुलन को प्रदान करता है । ग्रीष्म ऋतु में धरती अपने उपरी सतह के श्वसन द्वारा उष्मा सहित विरल द्रव्यों को अपने में समा लेता है । इसका विधि बाह्य वातावरण में उष्मा का दबाव अधिक होने, और धरती के ऊपरी सतह के कुछ नीचे तक कम होने के आधार पर क्रिया सम्पन्न होती है । इसे हर देश काल में परीक्षण किया जा सकता है, स्वीकारा जा सकता है। वर्षाकाल में धरती के सतहगत उष्मा और वातावरणिक उष्मा संतुलन स्थापित करने और उसे संरक्षित कर रखने का क्रियाकलाप फलस्वरूप सम्पूर्ण फल, वृक्ष, पौधे फलवती होने का कार्य दिखाई पड़ती है । इससे स्पष्ट हो गया है कि धरती की ऊपरी सतह में संतुलन विधि वर्षाकालीन, शीतकालीन और उष्णकालीन अन्न वनस्पतियों को पहचाना जाता है । इसे संतुलित बनाए रखना, इसके लिये मनुष्य स्वयं पूरक होना ही नैसर्गिक संतुलन का तात्पर्य है । ये सब अर्थात मानव संबंध, नैसर्गिक संबंध, ब्रह्माण्डीय संबंध निरन्तर वर्तमान है ही। इनके प्रति जागृत होना ही संबंधों को पहचानना - मूल्यों को निर्वाह करने का तात्पर्य है । मूल्यांकन विधि से उभयतृप्ति का प्रमाण होता है । जैसे - स्वयं पर विश्वास सम्पन्न हर मनुष्य के परस्परता में होने वाली पोषण और पोषित होने की क्रिया; संरक्षित होने, संरक्षित करने की क्रिया; शिक्षित होने और शिक्षा प्रदान करने की क्रिया; समाधानपूर्ण कार्य करने, कराने और करने के लिये मत देने की क्रिया;

न्याय प्रदान करने और न्याय पाने की क्रिया; संस्कार ग्रहण करने कराने की क्रिया; सह-अस्तित्व सहज सम्पूर्णता को निर्देशित करने, निर्देशित होने की क्रिया; अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व को स्वीकार करने योग्य संस्कारों को स्थापित करने और स्वीकारने की क्रिया; अस्तित्व में विकास और जागृति को बोध कराने बोधसम्पन्न होने की क्रिया । इसी प्रकार जीवन और जागृति को बोध कराने, बोध होने की क्रिया; व्यवस्था में जीने की स्वीकृति रूपी संस्कार प्रदान और स्वीकार क्रिया; अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता को बोध कराने बोध होने की क्रिया । समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्वपूर्ण जीने की कला में दृढ़ता को स्थापित करने और दृढ़ता से सम्पन्न होने की क्रियाकलापों में मूल्यांकन सहज तृप्ति को पाया जाता है । यही कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्यों में विधिवत तृप्ति पाने का स्रोत है । यह समीचीन है । यह एक आवश्यकता भी है । इन्हीं तृप्तियों को पाने के क्रम में मूल्यों का निर्वाह करना सहज है । इस प्रकार व्यवहार में सामाजिक होने का सम्पूर्ण अर्हता स्वायत्त मानव में शिक्षा-संस्कारपूर्वक समाहित होता है और प्रमाणित होता है ।

व्यवसाय में स्वावलंबन एक आवश्यकीय प्रक्रिया है । मानव में, से, के लिये आवश्यकताएँ दो रूप में पाया जाता है । 1. सामान्य आकांक्षा, 2. महत्वाकांक्षा से संबंधित वस्तु और उपकरण । सामान्याकांक्षा से वांछित वस्तुएँ आहार, आवास, अलंकार कार्यों में उपयोगी होना पाया जाता है । शरीर पुष्टि

और संरक्षण के रूप में आहार को, संरक्षण के अर्थ में आवास और अलंकार को उपयोगी होना पाया जाता है । महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुएँ ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के गति सीमा से अधिक गति के लिये दूर-श्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन का प्रयोजन देखने को मिलता है । इसे पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है । **उल्लेखनीय तथ्य यही है कि सामान्य आकांक्षा संबंधी वस्तुओं से ही समृद्धि का प्रकाशन हो पाता है । महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुएँ समय-समय पर दूर-संचार समाज गति में पूरक रूप में उपयोगी होते हुए समृद्धि का आधार नहीं बन पाता ।** गति और शीघ्रता के आधार पर इसका मूल्यांकन हो पाता है । अतएव इन यंत्रों के न्यूनतम उपयोग से ही अथवा आवश्यकता विधि से इसका उपयोग करना ही इसके वैभव का प्रमाण है । इन वस्तुओं का राक्षसी, पाशवीय विधि से कितना भी उपयोग करे वह एक व्यसन के रूप में दिखाई पड़ेगा न कि समृद्धि के रूप में । इसको इस धरती के सम्पूर्ण मानव देख चुके है कोई बचा होगा वह देख भी सकता है । इससे यह स्पष्ट हो गया कि सामान्य आकांक्षा संबंधी वस्तु-उपकरण समृद्धि का द्योतक है और इसकी सम्भावना भी समीचीन है ।

दूसरा महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं का अम्बार लगने के उपरान्त भी समृद्धि का अर्थ पूरा नहीं होता है । इनका अम्बार लगाने के क्रम में ही धरती का पेट फाड़ने की गति त्वरित हुई है ।

सामान्य आकांक्षा संबंधी वस्तुओं को पाने के लिये धरती को तंग करने की आवश्यकता उत्पन्न ही नहीं होता क्योंकि धरती के पेट में आहार, आवास, अलंकार संबंधी वस्तुएँ न्यूनतम है और ये वस्तुएँ धरती के ऊपरी सतह से ही प्राप्त हो जाती है । आहार के लिये कृषि, अलंकार के लिये भी कृषि और वन्य उपज पर्याप्त होता है । आवास के लिये भी धरती की ऊपरी सतह में मिलने वाले द्रव्यों से सुखद आवास स्थली को पाया जा सकता है जबकि मानव में निहित अमानवीयता से मुक्त है । मानसिकता जागृत और भ्रमित का द्योतक है । मनुष्य ही जागृत अथवा भ्रमित मानसिकता के आधार पर कार्य व्यवहारों को निश्चय करता है । भ्रमित मानसिकता विधि से भय, प्रलोभन स्वर्गाकांक्षा और उपभोक्ता विधि ही मानव के पल्ले पड़ता है और पड़ा ही है। जागृति सहज विधि से आवश्यकताएँ समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्वपूर्ण विधि से जीने की कला है । ये कितना आवश्यक है अब हर मनुष्य समझ सकता है । अतएव सामान्याकांक्षा संबंधी वस्तओं के विपुलीकरण के आधार पर हर परिवार समृद्ध होने, अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था क्रम में सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न होने, वर्तमान में विश्वास पूर्वक किये जाने वाली सम्पूर्ण कार्य व्यवहार से मानव अभयशील और पूर्ण होने तथा परम जागृति पूर्णता और उसकी निरन्तरता पूर्वक सह-अस्तित्व में समाज गति के साथ नित्य तृप्त होने का कार्यक्रम ही मानवीयतापूर्ण कार्यक्रम है । अतएव मानवीयतापूर्ण शिक्षा

कार्यक्रम, मानवीय संस्कार समुच्चय कार्यक्रम, मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी संविधान कार्यक्रम, मानवीयता सहज स्वास्थ्य-संयम कार्यक्रम, परिवार मूलक स्वराज्य कार्यक्रम का अध्ययन, अवधारणा और आचरण, व्यवहार ही मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा का कार्य है ।

मानव परिवार और कार्य

स्वायत्त मानव ही अर्थात स्वायत्त नर-नारी ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होते हैं । परिवार का परिभाषा में वर्तमान होना ही स्वायत्त मानव का प्रमाण है । मानवीय शिक्षा-संस्कारपूर्वक ही हर विद्यार्थी स्वायत्तता सम्पन्न होता है । मानवीय शिक्षा का परिभाषा भी यही है । जब यह परिवार परिभाषा में प्रमाणित होते हैं तब सहज ही एक-दूसरे के साथ सम्बन्धों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन करते हैं और श्रम मूल्य का भी मूल्यांकन करते हैं । सम्बन्ध निर्वाह, मूल्य निर्वाह का मूल्यांकन करते हैं, उभयतृप्ति पाते हैं । यही परिवार मानव का प्रमाण है । यही परिवार मानव के रूप में अनेक परिवार सभा यथा परिवार समूह सभा, ग्राम परिवार सभा के रूप में संतुलन निर्वाचन विधि से कार्यरत होना पाया जाता है । परिवार मानव, परिवार समूह, ग्राम परिवार और विश्व परिवारों तक सभी परिवार सभा क्रम से, क्रम से का तात्पर्य विशालता और समग्रता की ओर परिवार समृद्धि सम्पन्नता का व सभा विधि

व्यवस्था का धारक-वाहक रूप में समाज और व्यवस्था को अभिव्यक्त करते हैं । हर परिवार, परिवार समूह, ग्राम परिवार, ग्राम परिवार समूह विधि से विश्व परिवार तक संतुलन का स्वरूप मानवीय शिक्षा-संस्कार न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य संयम, मानवीय शिक्षा सुलभता पूर्वक संबंध में सहज स्वायत्त रहना पाया जाता है । हर सुलभता में उभयता एक अनिवार्य स्थिति है । उभयता का तात्पर्य मनुष्य की परस्परता; नैसर्गिक अर्थात, जल, वायु, धरती और सूर्य उष्मा का परस्परता सदा रहता ही है । मनुष्य के परस्परता में संबंधों के साथ ही नैसर्गिक उपलब्धियों अर्थात् उत्पादन होता है । क्योंकि नैसर्गिक संयोग से ही हर उत्पादन होना देखा जाता है । ऐसा उत्पादन, विनिमय के लिये वस्तु होना पाया जाता है । और व्यवहार के लिये हर स्वायत्त मानव; संबंध दृष्टा, मूल्य दृष्टा होना पाया जाता है । जानने, मानने, पहचानने की विधि से संबंधों का पहचान होना पाया जाता है । उसकी स्वीकृति के फलन में जीवन सहज अक्षय शक्ति, अक्षय बल रूपी ऐश्वर्य; मूल्यों के रूप में एक दूसरे के लिये स्वीकार्य योग्य रूप में आदान-प्रदान होता है । यही मानव संबंध और मूल्यों का तात्पर्य है । ऐसे संबंधों को सात रूप में पहचाना गया है । और मूल्यों को क्रम से जीवन मूल्य को चार स्वरूप में, मानव मूल्य छैः स्वरूप में, स्थापित मूल्य नौ स्वरूप में, शिष्ट मूल्य 9 स्वरूप में और वस्तु मूल्य 2 स्वरूप में समझ सकते हैं ।

अस्तित्व में सम्पूर्ण वस्तु है । वस्तु का अभिप्राय वास्तविकता को वर्तमान में प्रकाशित करना है । वस्तु जैसा है वही उसकी वास्तविकता है । हर वस्तु अपने में सम्पूर्ण होना पाया जाता है । हर वस्तु अपने सम्पूर्णता में ही वस्तु है । हर वस्तु अपने संपूर्णता में यथार्थता, वास्तविकता और सत्यता के रूप में है । कोई भी वस्तु का नाश नहीं होता है इसीलिये अस्तित्व सहज सत्यता प्रमाणित है । **रूप और गुण के अविभाज्यता में वास्तविकता; रूप, गुण और स्वभाव के अविभाज्यता में यथार्थता और रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के अविभाज्यता में हर वस्तु सहज सत्यता को पहचाना जाता है ।** इसी आशयों के आधार पर त्रिआयामी अध्ययन प्रत्येक एक के सम्पूर्णता के लिये सीढ़ियाँ अथवा क्रम समझा जाता है । इसी क्रम में पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था में वैभवित सम्पूर्ण वस्तुओं का अध्ययन सहज सुलभ है । चारों अवस्थाओं में रूप, आकार, आयतन, घनता के अर्थ में गण्य होता है । चारों अवस्थाओं का स्वरूप जड़ चैतन्य प्रकृति ही है । भौतिक रासायनिक रूप में जड़ प्रकृति और जीवन सहज दस क्रियाओं के रूप में चैतन्य प्रकृति प्रमाणित होना पाया जाता है । इसी आधार पर ज्ञानावस्था चैतन्य प्रकृति में है ही, जड़ प्रकृति रूपी शरीर का संचालन जीवन ही सम्पन्न करता हुआ देखने को मिलता है । जीवावस्था में समृद्ध मेधस यथा सप्त धातुओं से रचित शरीर रचनाओं को जीवन संचालित कर पाता है । जीवावस्था और

ज्ञानावस्था का अंतर इतना ही है कि जीवावस्था में शरीर रचना विधि के अनुसार (वंशानुषंगीयता) जीवन अपने को प्रकाशित करने में बाध्य है । जबकि ज्ञानावस्था के मानव में यह देखने को मिलता है कि कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता विधि से कर्म करते समय स्वतंत्र और फल भोगते समय परतंत्र विधि से न्याय का अपेक्षा, सही कार्य व्यवहार करने की इच्छा, सत्यवक्ता के रूप में शरीर यात्रा आरंभ काल से देखने को मिलता है । इसलिये समझ के करने योग्य इकाई के रूप में दिखाई पड़ता है । यही संस्कारानुषंगीय इकाई होने का साक्ष्य है । इस मुद्दे पर हमारा सर्वेक्षण के अनुसार 99% सही उतरती है । यह भी हम अनुभव किये है कि हर सर्वेक्षण कार्य में परीक्षण, निरीक्षण क्षमता का जागृत रहना आवश्यक है ।

न्याय का याचक होने का परीक्षण इस प्रकार किया गया है कि समान आयु के चार बच्चे हो, एक-एक फल दे, उसमें ज्यादा देर तक उनमें संतुष्टि का होना देखा जाता है । उनमें से कोई एक जल्दी खाले अथवा गुमा दे, तब दूसरे के हाथ वाले की ओर देखने और दौड़ने-पाने की इच्छा को व्यक्त करने की बात किसी-किसी में होता है, किसी में नहीं होता है । ज्यादा से ज्यादा 40% में होता है । इसे 10 बच्चों के बीच में देखा गया है । तीसरे स्थिति में 10 में से किसी एक को दो फल दे दिया उस स्थिति में बाकी 9 में से कोई न कोई उनको भी 2 फल होने की इच्छा व्यक्त करते हैं, क्रम से सभी में आता है । चौथे स्थिति में देखा गया है कि 10 में से 9 को

फल दिया गया और एक को नहीं दिया गया उस स्थिति में रोते हुए या छीनते हुए देखा गया । इस प्रकार से विविध विधिपूर्वक अध्ययन की गई । सार संक्षेप में हर बच्चे न्याय चाहते हैं इसी बात की पुष्टि होती है। किसी को न देने पर भी, किसी को ज्यादा देने पर भी परेशानी बढ़ती है । इसका निष्कर्ष में यही निकलता है हम किसी को नहीं दिया, हमारे द्वारा ही किया गया अन्याय बच्चों को घायल करता है । इसीलिये बच्चे न्याय का याचक है। किसी के हाथ में दो फल दिये है यह भी हमारे ही द्वारा किया गया अन्याय है । हमारे अन्याय के प्रति सम्मति बाकी नौ बच्चे को नहीं हो पाता है उसके व्यथा को भाँति-भाँति विधि से व्यक्त करते हैं । इसी प्रकार से कपड़े या खिलौने आदि किसी भी आधार पर सर्वेक्षण किया जा सकता है । यह भी हम अध्ययन किये हैं । हर बच्चे न्याय का अपेक्षा रखते हुए सही कार्य व्यवहार करने का इच्छुक है । इसे इस प्रकार से देखा गया है कि अभिभावक (माता, पिता, संरक्षक, पोषक और बच्चों से प्यार करने वाले जितने भी वयस्क व्यक्ति होते हैं) उन सबका मार्गदर्शन को और भाषा को सीखा करते हैं । इससे पता लगता है कि जितने भी सिखाने वाले वयस्क और प्रौढ़ व्यक्ति जो कुछ भी सिखाते हैं उसको बच्चे सीखते ही हैं । उनमें से जिन-जिन मुद्दे पर बच्चे विश्वास करते हैं उन्हें बराबर निर्वाह करते हैं । जिन-जिन पर शंका होती है उन पर अपनी कल्पनाशीलता को प्रयोग करते हैं । इससे पता चलता है कि सही कार्य व्यवहार करने के इच्छुक हैं । बच्चों में यह भी

पाया गया है कि हर मानव संतान जब से बोलना आरंभ करता है, जो देखा, सुना रहता है उसी को बताने का प्रयत्न करता है और बताता है । देखा हुआ वही रहता है जहाँ जो शरीर यात्रा को आरंभ करता है वहीं के घर-द्वार, आदमी, कुत्ता, बिल्ली, बड़े बच्चे, आकाश, धरती, सड़क ये सब देखा ही रहता है । घर के सभी सदस्यों को पहचाना ही रहता है । इस विधि से बताने की सामग्री हर बच्चे में बोलने के पहले से बना ही रहता है । इससे पता चलता है कि अभिभावक, प्रौढ़, बुजुर्ग, उनके जितने भी पुरूषार्थ कार्यकलाप, सम्भाषण, विशेषकर दृश्यमान जो देखे रहते हैं, श्रुतिमान जो सुने रहते हैं, सत्यवक्तता का आधार होना पाया जाता है । जैसे-जैसे बड़े होते हैं भाषा कोई सत्य नहीं है यह पता लगता है । भाषा से इंगित कोई वस्तु होना चाहिये इस मुद्दे पर जब जूझना शुरू होता है तो परम्परा विविध मुद्रा से प्रस्तुत होता है । फलस्वरूप अपने मनमानी अथवा परंपरा की रूढ़ियों के अनुसार चलता है । पुनः अपने ही संतान को ऐसा कुछ विरासत दे जाता है । पहले यह भी स्पष्ट किया गया है राजगद्दी परम्परा से, धर्मगद्दी परंपरा से, शिक्षा गद्दी परंपरा से और व्यापार गद्दियों से सत्य सहज निष्कर्ष न निकलना ही मुख्य बात है पुनर्शोध का । इसी प्रकार धर्म और सत्य का मूल रूप किसी मानव संतान को समझ में न आकर रूढ़ियों के तहत अथवा किसी न किसी रूढ़ि के तहत अपने को समेट लेता है । शिशुकालीन देखी हुई, सुनी हुई सत्य वक्तव्य समय के अनुसार बदलते हुए स्थितियों को देखकर सत्य सदा ही अर्थ

विहीन पीड़ा का कारण बना ही रहा ।

ऊपर कहे अनुसार सत्य संबंधी पीड़ा और अपेक्षा के साथ-साथ मानव जाति पीढ़ी से पीढ़ी, सदी से सदी, युग से युग बीतता-बीताता इस धरती पर यात्रा मोड़ अब ऐसी पेचीदा हो गई है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है । इस धरती पर आदमी को रहना है युगो सदियों तक, तब सत्य सहज वैभव को समझना और समझाना ही होगा । अन्यथा इस धरती पर रहना ही नहीं होगा । पीड़ा और अपेक्षा के बीच जैसे-जैसे नित्य नवीन मनमानी और किल्लोल करते ही आ रहे हैं । किल्लोल का तात्पर्य मानव परंपरा का चारो आयाम जैसा शिक्षा, संस्कार, संविधान और व्यवस्था वही अपेक्षा वही पीड़ा के साथ दिखाई पड़ती है । अपेक्षा के अनुरूप शाश्वत वस्तु न मिलने की स्थिति में मानव अपनी कल्पनाशीलता के चलते, प्रभावशील होते तक कुछ भी कर रहा है, कर लिया, कुछ भी कह लिया, कह रहा है, कुछ भी सोच लिया, सोच रहा है, इस विधि से चल गये । इसमें यह भी एक परीशीलन किये हैं । मानव परंपरा को मानव नकारना भी बन नहीं पा रहा है । जबकि परम्परा सहज स्थिरता के स्थान पर अस्थिरता के लिये परम्परा सहज चारो आयामों को सजा चुका है । अस्थिरता के लिये अनिश्चियता एक प्रधान मान्यता है । यह अनिश्चयता, अस्थिरता मानने के उपरान्त ही मनुष्य कुछ भी मनमानी करने को तत्पर होता है । जब एक परमाणु, अणु, अणुरचित रचना, ग्रह-गोल, सौर व्यूह, अनंत ब्रह्माण्ड अथवा अनंत प्रकृति सतत क्रियाशील

है । मनुष्य कैसे चुप रहेगा ? इसी कारणवश मनुष्य को कितना भी चुप रहने के लिये कहने के उपरान्त भी कुछ भी करने को तैयार हो ही जाता है । ऐसी मानव सहज प्रवाह में कल्पना सहज विधि से ही चारो आयामों को अपनाते ही आया । जैसे नौ संख्या चारो दिशा, नैसर्गिकता (धरती, हवा, पानी, उष्मा) इसको पहचानते ही आया है । इसी प्रकार पाँचों ज्ञानेन्द्रिय, इन्द्रिय सन्निकर्ष को भी पहचानते ही आया । अर्थात इन्द्रिय सन्निकर्ष के आधार पर मानव सुविधा संग्रह के चक्कर में फँस गया । यही मूलतः धरती क्षतिग्रस्त होने का कारण रहा है ।

इससे यह स्पष्ट हो गई है कि पीढ़ी से पीढ़ी को परम्परागत चारो प्रयासों से जैसा शिक्षा, संस्कार, संविधान, व्यवस्था के नाम से जो कुछ भी दिये जा रहे हैं इससे अभी तक इस देश धरती में परम सत्यबोध, परम समाधानबोध, परम न्यायबोध करने-कराने और करने के लिए मत देने का आधार ही नहीं बन पाया है, अर्थात वर्णित चारो आयामों में वांछित, सर्ववांछित, सवर्दा वांछित उक्त तीनों तथ्यों को स्पष्ट करने में असमर्थ है । समुदाय परम्परा के रूप में ही हम सब पलते आये हैं और पहुँच गये है संग्रह सुविधावादी उपभोक्ता मानसिकता स्थली में । अभी तक पहुँचा हुआ लोगों का सामान्य गणना 15% उससे कम ही मानी जाती है । चाहने वाली प्रतिशत 85% शेष है । यह धरती में निवास करने वाले संपूर्ण मानव के संदर्भ में कहा जा रहा है । ऐसे 10% से 15% संख्या में जो लोग आते हैं संग्रह सुविधा के चोटी के ओर दौड़ रहे हैं ।

उल्लेखनीय बिन्दु यही है कि इसका तृप्ति बिन्दु अस्तित्व में नहीं है । इस विधि से संग्रह सुविधावादी सम्मोहन और उन्माद अन्तविहीन वितृष्णा की ओर ले जाता है । एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि इस धरती में 15% वे लोग जो संग्रह सुविधा में लिप्त है उन्हीं को उन्हीं के लिये यह धरती कम पड़ गई है । उनके लिए इस धरती की वन सम्पदा, खनिज सम्पदा और श्रम सम्पदा कम पड़ गई है बाकी 85% के लिये ये सब सम्पदायें और उसका विधिवत शोषण कार्य का स्रोत कहाँ है ? इस प्रकार मानव सुविधा, संग्रह, शोषण, उपभोक्ता (उन्मुक्त भोग, संस्कृति प्रवृत्ति उन्माद) विधि से निग्रह बिन्दु के कगार में है । इसलिए स्वायत्त सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व क्रम को अपनाना ही एक मात्र उपाय है । ऐसा उपाय इसीलिए प्रस्तावित है इस धरती पर मानव परम्परा विश्वस्त एवं आश्वस्त विधि से सदी से सदी, युगों से युगों तक जागृति पूर्ण योजना कार्यक्रम सम्पन्न प्रणाली, पद्धति, नीति पूर्वक ज्ञानावस्था के सहज वैभव को प्रमाणित करने की आशय से है । हमारा सम्पूर्ण निष्ठा सहज रूप में ही मानव सर्वदा शुभ चाहने वाला है । वह भी सर्वशुभ चाहने वाला है । यही कारण रहा इस प्रस्ताव को अर्थात व्यवहारवादी समाज जिसका स्वरूप सार्वभौम एवं अखण्ड व्यवस्था है, का ही यह प्रतिपादन और प्रस्ताव है ।

परम सत्य के रूप में अस्तित्व दर्शन सहज ही अध्ययनगम्य हुआ है । जीवन ज्ञान, दृष्टा पद-प्रतिष्ठा, और उसकी आपूर्ती और उसकी निरंतरता क्रम में अध्ययनगम्य हो

चुकी है । इसीलिए शिक्षा, शिक्षा पूर्वक व्यवहार और कर्माभ्यास सहित प्रमाणित होना पाया गया है । इस शास्त्र में पहले ही जीवन ज्ञान और अस्तित्व दर्शन संबंधी स्वरूप को सर्वविदित होने के अर्थ से प्रस्तुत किया है । यह भी विदित हुआ है कि जीवन ज्ञान ही परमज्ञान अस्तित्व दर्शन ही परम दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही परम आचरण है ।

1. मानव सहज जाति एक - अखण्ड समाज ज्ञान, विवेक, विज्ञान, प्रयोजन, भाषा, कार्य व्यवहार में, से, के लिये जाति पक्ष का विचारना एक आवश्यक मुद्दा है । जाति कल्पना लोकव्यापीकरण होकर विविधतापूर्वक पनपते आई । अनेक जाति कल्पना के आधार पर अनेक समुदाय ही होना पाया गया । ऐसी समुदाय और समुदाय कल्पनाओं में से अखण्डता का सूत्र निष्पन्न नहीं हुआ । जबकि मानव परंपरा का अस्तित्व अखण्डता और उसकी व्यवहारिक मानसिकता के साथ ही वर्तमान में विश्वास, स्वयं में विश्वास सहज विधि से भविष्य में, से, के लिये मानवीयतापूर्ण योजनाओं से सम्पन्न होकर आश्वस्त होने की व्यवस्था है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य देश और कालवादी परिज्ञान से सूत्रित रहता ही है ।

यहाँ-वहाँ के आधार पर देश, व अब-तब के आधार पर कालवाद मानव में घर किया हुआ देखा जाता है । देश, काल संबंधी सीमाओं की आवश्यकता मानव में, से, के लिये वर्तमान में विश्वास करने, कराने, करने के लिये मत देने के

आधार पर ही इनकी विवेचना, व्याख्या सूत्रित है । वर्तमान देश, जहाँ जो रहता रहा उसे पहचानने के आधार पर, वर्तमान काल, जब जो अपने कार्य-व्यवहार, स्थिति, गति का प्रमाण प्रस्तुत किया इसे चिन्हित विधि से पहचानने के क्रम में काल की महत्ता, उपयोगिता को पहचाना जाता है । इसी की भरपाई में शिलालेख, ताम्रलेख, कालपत्र, स्मारक और वाङ्मयों को पहचाना गया है । यह भी समझा गया है हर घटना जो मनुष्य से अथवा प्रकृति सहज विधि से घटित हुआ करता है इन्हीं सब को किसी देश काल में ही इंगित करना संभव है । इसलिये देश काल का ज्ञान-परिज्ञान आवश्यक है ।

हर मुद्दे पर आवश्यक और अनावश्यकता का निर्णय हम इस विधि से पाते हैं कि निश्चित लक्ष्यगामी स्थिति गति के लिए प्रेरक, सहायक होने के सभी तथ्यों को आवश्यकता के अर्थ में और इसके विपरीत अर्थात लक्ष्य के विपरीत सभी प्रकार की देशकाल में हुई घटनाएँ मानव परंपरा के लिये अनावश्यक है । सम्पूर्ण मानव का मूल लक्ष्य इसकी अक्षुण्णता, अखण्डता सार्वभौमता ही है । इसका प्रमाण स्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है । यह दायित्व, कर्तव्य, संज्ञानशीलता, संवेदनशीलता पूर्वक हर मानव में, से, के लिये समान रूप में आवश्यक और समीचीन होना और सार्थकता का मूल्यांकन होना तथा नित्य उत्सव होना पाया जाता है । इसी अर्थ में आवश्यक और अनावश्यकता का वर्गीकरण हो पाता है । लक्ष्य और प्रमाण के सार्थकता, सामरस्यता सहज सभी श्रुति-

स्मृति, साक्षात्कार, अनुभव ज्ञान, दर्शन, व्यवहार, व्यवस्थाएँ, नित्यगति रूप में सार्थक होना पाया जाता है । इसी क्रम में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, परिवार मानव, स्वायत्त मानव, संयोजन, योजन कार्य विधि से मानव परंपरा युगों-युगों तक सफल होने का मार्ग प्रशस्त है ।

पहले इस तथ्य को स्पष्ट किया जा चुका है स्वायत्त मानव अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व वैभव के रूप में स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवसाय में स्वालंबन, व्यवहार में सामाजिक रूप में प्रतिष्ठा है । यह जीवन ज्ञान अस्तित्व दर्शन मूलक विधि से लोकव्यापीकारण होने के तथ्य को स्पष्ट किया है । ऐसे प्रत्येक मानव के सार्थक सफल और परिवार मूलक व्यवस्था का धारक-वाहक होना पाया जाता है । इस विधि से सर्वमानव, स्वायत्त मानव, परिवार मानव, परिवार व्यवस्था मानव के रूप में शिक्षा-संस्कारपूर्वक नित्यवर्तमान होने के आधार पर मानव जाति एक होने का अर्थ अपने आप में नित्यवर्तमान है । अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व विधि ही इसका मूल सूत्र है । सह-अस्तित्व में ही मानव परंपरा, समाधान, समृद्धि, अभय (वर्तमान में विश्वास), जीने की कला, विचार शैली और अनुभव बल में सामरस्यता होना पाया जाता है । इसकी संभावना नित्य समीचीन है । इसीलिए मानव जाति एक है ।

जीवावस्था के स्मरण में मानव अपने को अनेक समुदायों

में बाँटकर स्वयं परेशान है ही और धरती का शक्ल बिगाड़ दिया ।

मानव जाति की एकता, अखण्डता, अक्षुण्णता मानव इसीलिए समझ सकता है मानव ही ज्ञानावस्था की प्रतिष्ठा है और प्रत्येक मानव जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने योग्य इकाई है । इन दोनों कारणों से मानव प्रतिष्ठा को मौलिक रूप में पहचाना जाता है ।

इसलिये भी मानव जाति एक होने का सूत्र सार्वभौम व्यवस्था है । यह सर्वतोमुखी समाधान सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन ही है । यह मानवीयतापूर्ण मानव सहज प्रमाण है । इसका स्वरूप स्वायत्त मानव से परिवार मानव और परिवार सभा, ग्राम परिवार सभा और विश्व परिवार सभा क्रम में समाज के चारो आयाम और व्यवस्था के पाँचों आयामों में सामरस्यता, सहज प्रमाणों को अक्षुण्ण बनाये रखे जाना स्पष्ट किया जा चुका है । मानव का वैभव प्रतिष्ठा और अपेक्षा अनुपम संगीत चेतना विकास मूल्य शिक्षा से ही अपने-आप सर्वसुलभ होता है । इस विधि से भी अर्थात परिवार मूलक स्वराज्य विधि से सार्वभौमता का अर्थ सार्थक होता है । इसीलिये भी मानव जाति एक होना पाया जाता है ।

मानव ही प्रमाणिकता और उसकी निरंतरता को अथवा परम जागृति और उसकी निरंतरता को बनाए रखने में योग्य है और आवश्यकता है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जागृतिपूर्वक स्व

वैभव को प्रमाणित करना चाहता है, प्रमाणित होना समीचीन है । इन्हीं तथ्य के आधार पर मानव सहज सार्थकता अथवा परम सार्थकता को ध्यान में रखते हुए विश्लेषण और विवेचना करने पर सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि जागृतिपूर्वक ही मानव अपने आवश्यकता, सार्थकता, अर्हता का संगीत सेवी, समाधान सेवी हो पाता है । इसका तात्पर्य मानव से अपेक्षित जीवन सहज प्रतीक्षारूपी सुख, शांति, संतोष, आनंद प्रत्येक मनुष्य को सह-अस्तित्व सहज नियति क्रम में सुलभ है ।

इस मुद्दे को अर्थात प्रमाणिकता और उसकी निरंतरता के मुद्दे को और भी विधियों से समझा जा सकता है कि अभी तक जितने भी अथवा अभी जितने लोग जागृत हुए हैं उनमें देखा गया प्रमाण भी इसी की पुष्टि करता है और प्रेरणा देता है कि जागृतिपूर्वक ही मनुष्य सुखी होता है । हर मनुष्य सुखी होना चाहता भी है । जागृत होने की संभावना सदा बना रहता है । मानव परंपरा अभी तक जागृति क्रम में होने के कारण आदर्शों को मानते हुए और जागृति की अपेक्षा को बलवती बनाता ही आया । इसी क्रम में जागृति पद तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्ति का पृष्ठभूमि होना मूल्यांकित होता है । पुनश्च जागृतिक्रम और जागृतिपद में पहुँचने का पृष्ठभूमि है । इस क्रम में जागृति की इच्छा सर्वाधिक बलवती होने की आवश्यकता रहते आया। इसी क्रम में आज स्थिति ऐसी बनी है सर्वाधिक संख्या में मानव जागृत होना अनिवार्यता में बदल चुकी है । क्योंकि जागृति पूर्वक ही व्यवस्था में जीना बन पाता है ।

व्यवस्था में भागीदारी स्वयंस्फूर्त विधि से स्पष्ट हो जाता है, सार्थक होता है । समझदारी के साथ ही ईमानदारी, जिम्मेदारी, भागीदारी सहज अभिव्यक्ति है । समझदारी का मूल रूप जीवन ज्ञान सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान का अविभाज्य अनुभूति और प्रमाण ही मानवीयता पूर्ण आचरण है । इसी के आधार पर जिम्मेदारी निर्वाह होना देखा गया । जिम्मेदारी का सम्पूर्ण स्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण ही है । मानवीयतापूर्ण आचरण समझदारी का ही फलन है । अखण्ड समाज विधि से ही मानवीयतापूर्ण आचरण का मूल्यांकन हो पाता है। मानवीयतापूर्ण आचरण विधि से समस्त मूल्य, मानवीय चरित्र और नैतिकता का अविभाज्यता प्रमाणित होता है । दूसरे विधि से मूल्य, चरित्र, नैतिकता में, से, के लिये हर व्यक्ति प्यासा है । इसलिये समझदारी का फलन रूपी मानवीयतापूर्ण आचरण विधि से मानव जाति का एकता, अखण्डता, व्यवस्था विधि से सार्वभौमता प्रमाणित होती है । इसी विधि से प्राकृतिक, नैसर्गिक और मानवीय संबंधों में समझदारी, ईमानदारी पूर्वक निर्वाह करने की संभावना समीचीन हो गई है । आवश्यकता तो है ही ।

2. सर्वमानव में मानवत्व समान - मानवीयतापूर्ण आचरण मूल्य, चरित्र, नैतिकता के अविभाज्य रूप में वर्तमान होना पाया जाता है । सर्वमानव में मानवत्व ही व्यवस्था का सूत्र है । मानवत्व अपने में स्वायत्तता ही है । उसके प्रमाण में आचरण एक अनिवार्य स्थिति है । मानवत्व, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण का संयुक्त स्वरूप है

क्योंकि मानव ज्ञानावस्था की इकाई है । ज्ञानावस्था का तात्पर्य ही है जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना । यह महिमा केवल मानव में संभावित, कार्यान्वित, इच्छित है। हर मनुष्य अज्ञात, अप्राप्त, पीड़ाओं से मुक्ति चाहता है । ऐसे वैभव अर्थात पीड़ा से मुक्त वैभव जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में दृष्टव्य है । ऐसे वैभव का अधिकार सम्पन्नता स्वयं मानवत्व है ।

अस्तित्व में प्रत्येक एक अपने 'त्व' सहित व्यवस्था है जैसे गाय, घोड़ा, बिल्ली सबमें उन उनका 'त्व' देखने में मिलता है । गायत्व ही गाय का, श्वानत्व ही श्वान का, बिल्वत्व ही बिल्व वृक्ष का, धातुत्व ही धातु का एवं माणित्व ही मणि के पहचान का आधार है । इसी प्रकार मानवत्व ही मानव के पहचान का आधार है । मानवत्व ही अपने में ज्ञानावस्था की प्रतिष्ठा है । इसी आधार पर संज्ञानशीलता, संवेदनशीलता का संगीत बिन्दु अथवा तृप्ति बिन्दु ही मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में प्रमाणित हो जाती है।

इस विधि से सर्वमानव में मानवत्व समान रूप में विद्यमान होना स्पष्ट हो जाती है । यह मानव परंपरा सहज चौमुखी कार्यक्रमों के आधार पर सफल हो जाता है क्योंकि अभी जो कुछ भी इस चौमुखी कार्यक्रमों के द्वारा अग्रिम पीढ़ी को दिया जा रहा है वह अधिकांश आगे पीढ़ी में बहता हुआ देखने को मिलता है । जैसे विज्ञान शिक्षा, उन्मादत्रय शिक्षा,

सुविधा संग्रह शिक्षा दिया जा रहा है यह अग्रिम पीढ़ी में उनके कल्पनाशीलता के साथ अनुरंजित, प्रतिरंजित होकर प्रभावशील रहता है । इसीलिये मानवीयतापूर्ण शिक्षा की संभावना, आवश्यकता समीचीन है । प्रयोजनों के लिये नितान्त अपेक्षा है ही ।

अस्तु, सर्वमानव में मानवत्व समान रूप में होना मूल्यांकित होता है क्योंकि अस्तित्व घटता-बढ़ता नहीं है । जीवन अपने गठनपूर्णता, अक्षय बल, अक्षय शक्ति, जीवन जागृति के लक्ष्य सम्पन्नता में एक ही है । इसलिये जीवन मूलक विधि से ही मानवत्व समझ में आता है। शरीर मूलक विधि से मानवत्व समझ में नहीं आता है । इसी सत्यतावश ज्ञानावस्था के मानव में जीवन सहज अभीप्सा के आधार पर मानवत्व ही जीवन-ज्ञान, अस्तित्वदर्शन इसके प्रमाण में मानवीयतापूर्ण आचरण प्रमाणित होना सहज है। मानवत्व के आधार पर अभी तक बिखरे हुए सभी समुदाय अपने को मूल्यांकित कर सकते हैं और मानवत्व और मानव परंपरा की अखण्डता को पहचान सकता है, निर्वाह कर सकता है । इस प्रकार अखण्ड समाज के अर्थ में और सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में, विविध प्रकार से भ्रमित हुई अपने पराये की दूरियाँ अपने आप जागृति विधि-विधानपूर्वक समाप्त होंगे ।

3. सर्वमानव में शुभाकांक्षा समान - मानव शुभ चाहता ही है, करता ही आया है । यह भी पहले स्पष्ट हो चुका है कि आस्था से इंगित स्वर्ग और नर्क; प्रलोभन और

भय का ही प्रतीक है । इन दोनों से भिन्न और कोई चीज देने की चाहत वाङ्गमयों में इंगित होता है वह किसी परंपरा में प्रमाण के रूप में वर्तमानित नहीं हो पाये हैं । आज का मानव किसी न किसी परंपरा में ही अपने को अर्पित किया है । परस्पर परंपराओं में भय, प्रलोभन, आस्थाओं में जो अंतर्विरोध है, दीवालों के रूप में है । शुभ चाहते हुए विरोधों को पाल रखना विविध परंपराओं के अनुसार किंवा धर्म संविधान, राज्य संविधान, में भी इनकी पहचान, विविधता की पहचान, प्राथमिकता की चर्चा बनी हुई है । इसीलिये शुभ चाहते हुए शुभ घटित न होने में दूरी अभी भी बनी हुई है । इस वर्तमान समय में अधिकांश मानव इस दूरी को मिटाने के लिए इच्छुक है । ऐसे दूरियों को वरदान के स्थान पर अभिशाप के रूप में पहचान चुके हैं । यही अग्रिम परिवर्तन की चिन्हित पहचान है । अग्रिम पहचान स्वाभाविक रूप में अनुभव, व्यवहार और तर्क संगत होना एक आवश्यकता बन चुकी है । अधिक संख्यात्मक मानव इस धरती पर सर्वशुभ के पक्षधर हैं । उसके लिये समुचित मार्ग, विचार, ज्ञान, प्रमाणों को जांच पूर्वक अर्थात परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक अपनाना चाहते हैं, स्वीकारना चाहते हैं। यही सूत्र परिवर्तन के चाहत को सम्भावना के रूप में परिणित करता है। इसका आधार अनेक समाज सेवी संगठन जैसा मानवाधिकार संस्था अलग-अलग नामों से विभिन्न पक्षों में कार्य करता हुआ देखने के मिलता है। यह अभी तक जिन संविधानों अर्थात धर्म संविधानों, राज्य संविधानों में क्रूरता, विकरालता, अश्लीलताओं

को कम अथवा दूर करने में अपने को बारम्बार दुहराता है। साथ ही युद्ध प्रभाव से जो वीभत्सता है, प्राकृतिक प्रकोपों से त्रस्त मानव, अकाल, दुष्काल, और विशेष रोगों से पीड़ित एड्स जैसे रोग पीड़ित व्यक्तियों के प्रति अपने संवदेनाओं को अर्पित करते हुए इन्हें सांत्वना देने का घोर प्रयास करते आया है। इन सब प्रयासों को देखते हुए इनके मूल में अवश्य ही एक सार्वभौम व्यवस्था की अभिव्यक्ति की आवश्यकता बनी हुई है। इस ओर सार्वभौम व्यवस्था जैसा धरती में एक व्यवस्था की चर्चा, पहल, प्रयास भी लोगों ने किये हैं। जो ऐसे प्रयास किये हैं उनमें मानव, मानवत्व, सार्वभौम व्यवस्था का रूप रेखा, मानसिकता, विश्व दृष्टिकोण सहित प्रस्तावित होना प्रतिक्षित है।

ऐसे 'मानवाधिकार' धरती पर एक शासन, विचार या चर्चा, मेधावी मनुष्यों के साथ जुड़ा है। हमारा यह प्रस्ताव है कि इसे सफल बनाने के लिये विश्व दृष्टिकोण संबंधी विकल्प आवश्यक है। इस विधा में अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिन्तनज्ञान प्रस्तावित है। इसी क्रम में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज ही अध्ययन किये हैं। यह पूर्णतया दर्शन और ज्ञान के रूप में, पूर्वावर्ती दर्शन-ज्ञान के विकल्प के रूप में प्रस्तावित है। अस्तित्व ही स्वयं सह-अस्तित्व, नित्य विद्यमान होने के आधार पर सह-अस्तित्व स्वयं विचार का आधार, फलित होने का क्रम हमें अध्ययन गम्य हुआ है। इसीसिये विचारधारा जो पूर्ववर्ती क्रम में प्राप्त है। उसके स्थान पर सह-

अस्तित्ववादी विचारधारा को प्रस्तावित किया है। अभी तक जो-जो शिक्षाएं इस धरती के मानव के साथ बीत चुकी है, इस समय में जो-जो शिक्षाएं दे रहे हैं उसके विकल्प में मानवीयतापूर्ण सह-अस्तित्ववादी शिक्षा कार्यक्रम प्रस्तावित है। सह-अस्तित्व सहज अध्ययन क्रम में यह हम पाये हैं **अस्तित्व में व्यवस्था है, शासन नहीं है। इसीलिये सार्वभौम व्यवस्था शासन के विकल्प के रूप में प्रस्तावित है। इसी क्रम में शक्ति केन्द्रित शासन संविधान के स्थान पर समाधान केन्द्रित व्यवस्था रूपी संविधान मानवीय आचार संहिता के रूप में (सार्वभौम राष्ट्रीय आचार संहिता) प्रस्तावित किया है।** इसके लिये कार्यक्रम का हम धारक-वाहक है। जीवन-ज्ञान अस्तित्व दर्शन का अध्ययन शिविर कार्यक्रमों का आयोजन करते है और शिक्षा का मानवीयकरण कार्य में तत्पर है। मानवीयतापूर्ण आचरण विधि से हम जीते ही हैं। इन सभी कारणों से हम उक्त प्रस्तावों को प्रस्तावित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

उक्त प्रस्तावों के आधार पर मानवाधिकार सुस्पष्ट हो जाता है फलस्वरूप परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था पूर्वक सार्वभौम शुभ रूपी समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को सर्वसुलभ कर सकते हैं। इसकी अक्षुण्णता का होना समीचीन है। यही सर्वशुभ है।

4. सर्वमानव में मानव धर्म समान है - धर्म के

नाम से विडम्बना विविध आधारों से चला हुआ समुदायों का धर्म जो रूढ़ियों के रूप में देखने को मिला है, उसकी विकरालता और अंतहीन समस्याओं से ग्रसित रूपों में दिखाई पड़ती है । किसी भी समुदाय धर्म के पास धर्म का मूल रूप अध्ययनगम्य होना संभव नहीं हुई । इसकी रिक्तता, कुण्ठा, श्रेष्ठता, नेष्ठता, फँसे हुए विचारों के साथ मानव जनजाति अपने आप में यंत्रणा का शिकार हो जाता है, इसे बारंबार देखा जाता है । इसे वांङ्गमयों के आधार पर तर्क विधि से विद्वानों के बीच चर्चित होना देखा गया है । राज्य विधाओं में भी सत्ता संघर्ष, शक्ति केन्द्रित शासन, पीठ और चिन्ह के लिये तमाम घटनायें गुजर चुके हैं । जिसका स्वीकृति आम आदमी के मन में नहीं हो पाता है । इसलिये असंतुष्टि बना ही है । इसलिये इसकी संतुष्टि स्थली का अनुसंधान और प्रकाशन की आवश्यकता है ही ।

‘मानव धर्म’ अपने स्वरूप में समाधान और उसकी निरंतरता है। दूसरे तरीके से सर्वतोमुखी समाधान और उसकी निरन्तरता है । अस्तित्व में समाधान का धारक-वाहक केवल मानव ही है । इस धरती पर आज की स्थिति में जैसा भी मनुष्य दिखाई पड़ता है विभिन्न भौगोलिक परिस्थिति, आर्थिक सम्पदा, शक्ति केन्द्रित शासनाधिकार, सम्पन्नता, प्रौद्योगिकी, कृषि, व्यापार, उपभोक्ता संस्कृति व दलाली, उपदेश, समाजसेवा, धार्मिक कार्यक्रमों में कहीं न कहीं किसी न किसी कार्य में लगा आदमी को देखा जाता है । यह सब

किसी न किसी समुदायगत विचार, धर्म-पंथ, मत, जाति आदि आधारों पर अपना परिचय देता हुआ देखने को मिलता है । इस क्रम में उन उनकी निष्ठा अपने-आप स्पष्ट हो जाती है । आज तक ऐसा कोई परम्परा अध्ययनगम्य नहीं हो पाया जो सर्वतोमुखी समाधान विधि को अध्ययनगम्य कराया । अतएव सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्नता ही मानव धर्म का द्योतक है, प्रमाण है और सर्वाधिक लोगों का अभीष्ट भी है ।

मानव जाति एक होने के आधार पर ही मानव धर्म एक होने का अर्थात सर्वतोमुखी समाधान सबको समीचीन होने का सत्य उद्‌घाटित हो पाता है । समाधान मूलतः मानव जीवन सहज उद्देश्य और प्रमाण है । इस उद्देश्य की पूर्ति जागृतिपूर्वक उजागर होती है । जागृति का सार्थक स्वरूप अस्तित्व में अनुभव है । अस्तित्व नित्य वर्तमान होते हुए अनुभव का घोषणा, सत्यापन, प्रमाण, मनुष्य ही मनुष्य के लिये अर्पित करता है । प्रमाणिकता ही व्यवहार में सर्वतोमुखी समाधान के रूप में प्रमाणित हो जाती है । अस्तित्व में अनुभव ही जागृति परमता का द्योतक है । जागृति ही भ्रम मुक्ति है । आदिकालीन अथवा सुदूर विगत से सुना हुआ ‘मुक्ति’ शब्द का अर्थ सह-अस्तित्व में अनुभव रुप में सार्थक होता है । इसे भली प्रकार से देखा गया है । सह-अस्तित्व में अनुभव सर्वसुलभ होने का मार्ग मानवीय शिक्षा-संस्कार विधि से समीचीन है और प्रशस्त है। सह-अस्तित्व शाश्वत सत्यरूपी, नित्य सत्यरूपी, परम सत्यरूपी न घटते-बढ़ते हुए मानव सहित अविभाज्य वर्तमान है

। इसमें खूबी यही है अस्तित्व ही चार अवस्था में प्रकाशमान है । जिसमें से एक अवस्था स्वयं में मानव है । अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व ही इसका मूल सूत्र है । सह-अस्तित्व ही विकास, पूरकता, उदात्तीकरण, फलस्वरूप रासायनिक भौतिक रचनाएँ, विरचनाएँ सम्पन्न होते हुए देखने को मिलता है । देखने वाला मनुष्य ही है। विकास, अर्थात परमाणु में विकास, पूरकता, पूर्णता, संक्रमण, जीवन और जीवन जागृति प्रणाणित होता है । जीवन में जीवन जागृति का प्रमाण मानव ही प्रस्तुत करता है । मानव अपने में जागृतिपूर्णता में उसकी निरन्तरता सहज विधि से ही सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न परंपरा को बनाए रखना सहज है ।

अस्तित्व में इस खूबी को बहु विधा में देखा गया है । प्रत्येक प्रजाति सहज परमाणु अपने परम्परा सहज आचरणों में सुदृढ़ रहते हैं । जैसे - दो अंश, चार अंश, चालीस अंश आदि विभिन्न अंशों से गठित विभिन्न परमाणु अपने-अपने आचरण को सदा-सदा ही प्रस्तुत करते हैं । इसी क्रम में प्राणावस्था की इकाइयाँ बीज-वृक्ष न्याय से अपने परम्परा रूपी आचरण को सुदृढ़ रूप में आचरित करते हुए देखने को मिलता है । वंशानुषंगीय विधि से सम्पूर्ण जीव अपने-अपने परंपराओं को सुदृढ़ बनाया हुआ दिखाई पड़ता है । इन तथ्यों को देखते हुए मानव अपने परम्परा को मानवीयतापूर्ण आचरण, मानव सहज सर्वतोमुखी समाधान रूपी मानव धर्म (मानवीयतापूर्ण आचरण, विचार, अनुभव सम्मत विधि से) निरन्तरता को पाना संभव है ।

सर्वमानव सहजरूप में ही समान है । इसीलिये मानव धर्म सर्वमानव में समान है । यह तथ्य समझ में आता है । सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य ही है स्वयं व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करना । इसी विधि से मानव अपने में चिरआशित स्वराज्य को पाकर सुख, शांति, संतोष और आनन्द को पाकर; समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को प्रमाणित करता है । यही मुख्य रूप में मानव का चाहत भी है । मूलतः धर्म एक शब्द है । हर शब्द किसी का नाम है । धर्म शब्द से इंगित वस्तु मानव जागृति और उसका प्रमाण रूपी प्रमाणिकता, सर्वतोमुखी समाधान ही है । इसका स्वीकृत स्वरूप ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द है । इसका दृष्टा पद में भी सुख, शांति, संतोष आनन्द है । इसका दृश्य रूप ही व्यवस्था है । वह परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक गुँथे हुए स्वरूप में दिखाई पड़ती है । व्यवस्था सहज अभिव्यक्ति ही अथवा फलन ही समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व है । इस प्रकार जीवन सहज लक्ष्य, मानव सहज अर्थात अखण्ड समाज सहज लक्ष्य, संगीत, विन्यास है, यही समाधान के रूप में निरूपित होती है । सह-अस्तित्व और अनुभव में संगीत है । यही आनन्द के नाम से विख्यात होता है । न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य संयम, शिक्षा-संस्कार में होने वाला अनुभव ही सर्वतोमुखी समाधान है । यह मानव सहज जागृति की अभिव्यक्ति और संप्रेषणा है । सम्पूर्ण मानव अपने परिवार सहज आवश्यकता से अधिक कार्य करता है इसके फलन में समृद्धि

का अनुभव होता है । यह भी समाधान है। हर परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक सम्बन्धों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभयतृप्ति पाने की विधि जागृतिपूर्वक सम्पन्न होता है। यह निरन्तर समाधान है । लाभ-हानि मुक्त विनिमय प्रणाली जागृति सहज मानव की अपेक्षा है । इस विधि से विनिमय कार्य का क्रियान्वयन स्वयं समाधान है । स्वास्थ्य संयम, स्वाभाविक रूप में जीवन जागृति को शरीर के द्वारा मानव परंपरा में प्रमाणित करने योग्य शरीर है । यही स्वास्थ्य का निश्चित स्वरूप है । जागृतिपूर्ण परंपरा में सर्वमानव अपने स्वास्थ्य को स्वस्थ बनाये रखने का उपाय और स्रोत बना ही रहता है । यह स्वयं में समाधान है । प्रत्येक मानव मानवीय शिक्षा-संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव, परिवार मानव, विश्व परिवार मानव के रूप में प्रमाणित हो पाता है । यह सर्वतोमुखी समाधान है ।

सर्वमानव नित्य समाधान का ही प्यासा है न कि समस्या का । समस्याओं से जूझते-जूझते आ रही विविध समुदाय रूढ़ियां और मानसिकताएँ मानव कुल को त्रस्त कर रखा है । हर मनुष्य प्रश्न चिन्हों से घायल है । इससे छूटना हर व्यक्ति चाहता है । इसीलिये अखण्ड समाज उसकी अपेक्षा, उसकी आपूर्ति स्रोत, विधि, नीति, पद्धति सर्वसुलभ होना अति आवश्यक है। इस प्रकार मानव धर्म सर्वतोमुखी समाधान है । यह सर्वमानव के लिए आवश्यक है । इसकी संभावना नित्य समीचीन है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि सर्वमानव का धर्म

एक ही है ।

मानव धर्म परम्परा के रूप में सहज ही अर्पित होता है, प्रवाहित होता है । इसी का नाम संस्कार है । संस्कार का तात्पर्य भी पूर्णता के अर्थ में किया गया कृतियाँ और स्वीकृतियाँ है । ऐसी स्वीकृतियाँ सार्थक होते हैं। इसी का नाम होता है सम्प्रदाय । सम्यक प्रकार से प्रदायन क्रिया, सम्प्रदाय है । मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार परंपरा ही पावन रूप में संस्कार है । ऐसी पवित्रता की धारक वाहकता केवल मानव में होना पाया जाता है । इस प्रकार मानव धर्म और मानव सम्प्रदाय सर्वशुभ के अर्थ में सार्थक होता है ।

मानवीयतापूर्ण धर्म और सम्प्रदाय क्रियाकलाप में सम्पूर्ण अथवा प्रत्येक मानव का सम्मति अर्पित रहता ही है । इससे स्पष्ट हुई मानव धर्म, संप्रदाय और मत अविभाज्य रूप में गतित रहने वाली सर्वशुभ कार्यक्रम है । इसी के साथ यह भी हम अनुभव किये हैं कि सर्वतोमुखी समाधानपूर्वक ही मानव धर्म और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सफल हो जाता है । यही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र भी है । अतएव, हम मानव मानवत्व के प्रति जागृत होना ही एक आवश्यकता है । इसी से सर्वतोमुखी समाधान सबके लिये सुलभ होता है जिससे सार्वभौम शुभ नित्य समीचीन रहेगा ।

5. मानव में, से, के लिये यह धरती एक अखण्ड है । मानव भाषा कारण, गुण, गणित के अर्थ में समान है ।

शून्याकर्षण की स्थिति में स्वयं स्फूर्त गति सहित एक सौरव्यूह और अनेक सौरव्यूह सहज व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करता हुआ यह सौभाग्यमयी धरती है । इस धरती में कहीं भी भाग विभाग नहीं है । सभी भाग-विभाग मनुष्य के द्वारा बनायी गयी सीमाएँ है । यह धरती अपने में ठोस, तरल, वायु सहित रासायनिक, भौतिक रचना-विरचना सहित चारों अवस्था के धारक वाहक के रूप में प्रतिष्ठित है । हम इस सौर व्यूह में यही एक धरती को सौभाग्य सम्पन्न रूप में देखते हैं अर्थात चारों अवस्था से सम्पन्न धरती को देख पाते हैं और कहीं ऐसा सौभाग्य सम्पन्न धरती नहीं, ऐसा नहीं है । ऐसा सौभाग्य सम्पन्न धरती हो उसमें से यह भी एक है । अन्य धरती के सम्बन्ध में हमें दौड़ने की आवश्यकता नही है, यह धरती में आवश्यकीय मानव जागृति, सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज रूपी परम्परा को प्रमाणित करना ही अभी इस धरती का मानव सहज कल्याण मार्ग है । इसका कारण यही है यह धरती को मानवकृत परेशानियों से दूर करने, और प्रकृति सहज नियमों को, जागृति सहज नियमों को नित्य निरन्तर पालन, आचरण और व्यवहार करता हुआ मानव मानस आज प्रमाणित होने की आवश्यकता है । यही सर्व प्राथमिक आवश्यकता है । इसके लिये धरती की अखण्डता और एकता को पहचानना एक आवश्यकता है । यह धरती भी समग्र व्यवस्था में अविभाज्य है । अतएव मानव अपने जीवन सहज जागृति परम्परा रूप में एकता, अखण्डता और सार्वभौमता को पहचानने के योग्य

इकाई है । इसमें से एकता अखण्डता का मूर्त रूप यह धरती भी है । इस धरती को स्वस्थ रूप में बनाये रखना तभी संभव है जब मानव परम्परा जागृत हो जाए । भ्रम पर्यन्त अस्वस्थता की कहानी बन चुकी है ।

मानव भाषा अपने स्वरूप में कारण, गुण और गणित है । इसे किसी लिपि पूर्वक संप्रेषित करें, इसका फलन एक ही होता है अर्थात मानव की समझदारी, उसकी परंपरा के लिये भाषा प्रयुक्त होता है । कारण, गुण, गणित को किसी भी लिपि, किसी भी भाषा में संप्रेषित करने की स्थिति में उसकी सत्यता एक ही प्रकार से फलवती होती है । इस यथार्थ को समझने के उपरान्त सम्पूर्ण मानव में समझदारी की समानता का विश्वास होना अनिवार्य है । सर्वशुभ घटित होने के क्रम में समझदारी का यह भी एक आयाम है । इस विधि से सम्पूर्ण विवाद, अनर्थ प्रवृत्ति, और रहस्यता से मुक्त मानव परम्परा स्थापित होने के उपरान्त अपने आप यह सब समाधान में परिणित हो जाते हैं । इसीलिये सर्वतोमुखी समाधान मानव के लिये समीचीन है ।

6. मानवीय सभ्यता, संस्कृति, विधि, व्यवस्था सर्वमानव में, से, के लिये समान है -

संस्कृति का स्वरूप के सम्बन्ध में पहले भी सामान्य विवरण प्रस्तुत किये गये हैं । मानवीय संस्कृति का पोषण सभ्यता करती है, सभ्यता का पोषण विधि करती है, विधि का

पोषण व्यवस्था करती है और व्यवस्था का पोषण संस्कृति करती है । इस प्रकार आवर्तनशीलता क्रम सुस्पष्ट है । संस्कृति का मूलरूप संस्कार है । संस्कार का मूलरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण ही है । अस्तित्व और मानव से संबंधित अध्ययन बोधगम्य होना ही शिक्षा-संस्कार का तात्पर्य है । ऐसी शिक्षा-संस्कार ही मानवीयतापूर्ण परम्परा का मार्गदर्शक होता है । मानवीयतापूर्ण परम्परा अपने आप में ऊपर कहे चारों आयाम सम्पन्न रहता ही है । ऐसी शिक्षा-संस्कार से प्राप्त स्वीकृतियों, अवधारणाओं, अनुभवों, विचार शैली सहित सर्वतोमुखी समाधान मानसिकता से सम्पन्न होना ही मानवीय संस्कार सफलता का प्रमाण है । यही सभ्यता का आधार है । मानवीयतापूर्ण सभ्यता स्वाभाविक रूप में न्यूनतम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा सहज भागीदारियों को निर्वाह कर लेना ही है । अर्थात व्यवस्था के रूप में जीना ही, समग्र व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करना ही सभ्यता का तात्पर्य है। सभ्यता में ही शिष्टता समाया रहता है । प्रमाण भी समाया रहता है । अनुभव, व्यवहार और प्रयोग के रूप में ही प्रमाणों का प्रयोजन दिखाई पड़ता है । मानव प्रयोजन सर्वशुभ ही है । इसलिये मानव संस्कारों को सर्वशुभ के अर्थ में ही स्थापित करना सहज है। ऐसे सभी स्तरीय परिवार और सभा सहज आचरणों को मानवीयतापूर्ण आचरण और व्यवस्था में भागीदारी का नाम दिया गया है । यही संविधान सूत्र है । इसे हम अध्ययन भी करते हैं और आचरण में पाकर तृप्त होते हैं

अथवा आचरण रूप में पाकर तृप्त होते हैं । इस प्रकार मानव सहज तृप्ति का स्रोत मानवीयतापूर्ण आचरण में होना स्पष्ट होता है । क्योंकि अस्तित्व रूपी सह-अस्तित्व ही समाधान और तृप्ति का सम्पूर्ण स्रोत है । मानव में ही जागृति सहज अधिकार प्रमाणित होता है । जागृति और सह-अस्तित्व के योगफल में ही सर्वशुभ, सर्वसुलभ होना पाया जाता है । अतएव मानवीयतापूर्ण आचरण रूपी संविधान को पहचानना ही राष्ट्रीय मूल्य, चरित्र और नैतिकता का अथवा परिवार मूलक अखण्ड स्वराज्य व्यवस्था का आचार संहिता स्वाभाविक रूप में सर्वमानव के लिये बोधगम्य और व्यवहार गम्य होता है । अतएव सभ्यता का पोषण मानवीयतापूर्ण आचरण जो व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में होता है, इसे अध्ययन करना आवश्यक है । व्यवस्था का स्वरूप पहले 5 आयामों में इंगित किया जा चुका है । सुख का सम्पूर्ण स्रोत अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व ही होते हुए मानव जागृतिपूर्णता विधि से ही हमें सर्वशुभ, सर्वसुलभ होना पाया जाता है। अतएव इन तीनो विधा में सामरस्यता विधि ही अर्थात परिवार सभा, ग्राम मुहल्ला सभा और विश्व सभा सहज व्यवस्था हमें सर्वसुलभ कर लेना ही आज के सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान है । जितने भी बिगाड़े गये है उसका पुनः सुधार किन्ही-किन्ही भागों में पूर्णतया हो सकती है और किसी-किसी भागों में आंशिक सुधार हो सकती है । धरती आज से अधिक स्वस्थ हो सकती है । धरती पर मानव युगों तक समाधान, समृद्धि, अभय, सह-

अस्तित्व पूर्वक रह सकता है । यह व्यवहारवादी समाजशास्त्र का प्रस्ताव है ।

7. सर्वमानव में लक्ष्य समान - इसके पहले स्पष्ट किये गये मुद्दों के साथ-साथ सर्वमानव में लक्ष्य समानता की बात, तथ्य विभिन्न विधि से स्पष्ट किया गया । मुख्यतः मानव सहज लक्ष्य केवल जागृति और उसका प्रमाण है। प्रमाण केवल परंपरा में ही होना देखने को मिलता है । मानव का प्रमाण मानव परंपरा में ही होना स्वाभाविक है क्योंकि मानव ज्ञानावस्था की इकाई है और संस्कारनुषंगीय अभिव्यक्ति है । संस्कार के मुद्दे पर पहले स्पष्टतया संस्कार स्वरूप प्रक्रिया और प्रमाण के संदर्भ में इंगित कराया है । संस्कार का स्वरूप पूर्णता के अर्थ में बोधपूर्वक स्वीकारने योग्य सम्पूर्ण अध्ययन और उसे अनुभवमूलक विधि से व्यवहार में प्रमाणित करने की यह सम्पूर्ण क्रियाकलाप ही संस्कार और प्रमाण का तात्पर्य है । संस्कार कार्यकलाप विभिन्न विधियों में पहले से भी इस नाम का प्रयोग किया है । यह विभिन्न समुदायों में विभिन्न प्रकार से क्रियान्वित होते हुए देखने को मिलता है । यह सब प्रयास अवश्य ही प्रयास क्रम में उपादेयी है किन्तु प्रयोजन के अर्थ में अभी तक और कोई अर्थात पूर्वावर्ती सामुदायिक संस्कार परंपरा में प्रमाणित नहीं हो पाये ।

जागृति और उसका प्रमाण सहज रूप में ही जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण सहित परिवारमूलक

व्यवस्था विधि से सफल होना पाया जाता है, सार्थक होना पाया जाता है। सफल होने का तात्पर्य मनुष्य स्वयं स्फूर्त विधि से व्यवस्था के रूप में प्रमाणित हो जाने से है । सार्थकता का तात्पर्य समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने से है । अस्तित्व सहज रूप में ही मानव अपने त्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने योग्य इकाई है । यही मानव जागृति को निरीक्षण-परीक्षणपूर्वक प्रणाणित होने, करने का एवं करने के लिये मत देने का सूत्र है । इस विधि से सार्वभौम लक्ष्य रूपी जागृति और जागृति प्रमाण, मानवीयतापूर्ण आचरण स्वयं कर्त्तव्यों, दायित्वों, प्रेरकताओं और सम्पूर्ण कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत-कारित, अनुमोदित विधियों से मानव परंपरा में स्पष्ट हो जाता है । यही प्रधान रूप में संविधान की मंशा है ।

ह मानवीय आचार संहिता रूपी मानसिकता यही है कि सर्वशुभ सर्वसुलभ हो । इसी क्रम में संविधान का प्रवेश रूप यह है कि सर्वमानव सहज सार्वभौम स्वतंत्रता, स्वराज्य व्यवस्था सहज आचरण को अभिव्यक्ति, संप्रेषणा व प्रकाशन सहित प्रत्येक मनुष्य मूल्य व मूल्यांकन पूर्वक सम्पूर्ण आयाम, कोण, परिप्रेक्ष्य व दिशा में सभी देश काल में सुरक्षित, नियंत्रित, संतुष्ट, समृद्ध, समाधानित होने, रहने, करने, कराने, करने के लिये, मत देने के लिये यह न्याय संहिता मानव में, से, के लिये अर्पित है ।

ह **वक्तव्य :-** मानव अपने में (प्रत्येक मनुष्य अपने में) तृप्ति और उसकी निरंतरता को चाहता है । इसका सफल स्वरूप जीवन में सह-अस्तित्व, समाधान और वर्तमान में विश्वास के रूप में पहचाना गया है । यह हर मानव और मानव परंपरा सहज अधिकार के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है । ऐसी तृप्ति को मानव परंपरा में प्रमाणित करना हर मनुष्य की अभीप्सा है । इस क्रम में समृद्धि भी एक आवश्यकता है । समृद्धि को इस प्रकार पहचाना गया है कि यह प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन का ही फलन है । ऐसे सभी आवश्यकीय उत्पादित वस्तुओं के प्रयोजनों को शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति के लिये पहचाना गया है । इस प्रकार यह संविधान समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को प्रमाणित करने, कराने, करने के लिये मत देने के अर्थ में स्पष्ट है ।

ह **संविधान का लक्ष्य -** 1. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था (मानव धर्म) स्वानुशासन रूपी स्वतंत्रता है । 2. मानव धर्म समाधान सहज तृप्ति (सुख शांति, संतोष, आनन्द और समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व) और उसकी निरंतरता ही ''स्वत्व'' है ।

ह **लक्ष्य सहज प्रमाणों का**

मूल्यांकन विधि - 1. स्वयं में, एक दूसरे के परस्परता में यथा प्रत्येक मनुष्य अपने में, परस्पर मानव संबंधों में और नैसर्गिक संबंधों में । 2. समझदारी, समझदारी के अनुरूप निष्ठा

(कर्तव्य, दायित्व के रूप में किया गया निर्वहन और उसका फल-परिणाम) सहज विधि ।

तालिका - 2

मानवीय संविधान का प्रारूप

व्यवहार	परिवार	सम्बन्ध मूल्य
व्यवहार	परिवार समूह	सम्बन्ध मूल्य
व्यवहार	ग्राम स्वराज्य परिवार	सम्बन्ध मूल्य
व्यवहार	ग्राम समूह परिवार	सम्बन्ध मूल्य
व्यवहार	ग्राम क्षेत्र परिवार	सम्बन्ध मूल्य
व्यवहार	मंडल परिवार	सम्बन्ध मूल्य
व्यवहार	मंडल परिवार समूह	सम्बन्ध मूल्य
व्यवहार	मुख्य राज्य परिवार	सम्बन्ध मूल्य
व्यवहार	प्रधान राज्य परिवार	सम्बन्ध मूल्य
व्यवहार	विश्व राज्य परिवार	सम्बन्ध मूल्य
सार्वभौम व्यवस्था	विश्व राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	प्रधान राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	मुख्य राज्य सभा	भागीदारी
व्यवस्था	मंडल समूह सभा	भागीदारी
व्यवहार	मंडल सभा	भागीदारी
व्यवहार	ग्राम क्षेत्र सभा	भागीदारी
व्यवहार	ग्राम समूह सभा	भागीदारी
व्यवहार	ग्राम स्वराज्य सभा	भागीदारी
व्यवहार	परिवार समूह सभा	भागीदारी
व्यवहार	परिवार सभा	भागीदारी

5

मानवीय संविधान का धारक-वाहकता

जागृतिपूर्ण सभी मानव इस संविधान के धारक वाहक हैं। प्रत्येक मनुष्य जागृति में, से, के लिये मानव पंरपरा में मनुष्य के रूप में प्रस्तुत हैं। इसीलिये जागृत हैं या जागृत होने योग्य हैं । प्रत्येक जागृत मनुष्य मानवीय शिक्षा-संस्कारपूर्वक स्वतंत्रता और स्वराज्य का धारक-वाहक और प्रेरक है । इसलिये प्रत्येक मनुष्य शिक्षा-संस्कारपूर्वक जागृत होता है ।

'मानवत्व' ही मानव परम्परा में स्वत्व, स्वतंत्रता और अधिकार के रूप में नित्य प्रणाणित है । 'मानवत्व' प्रत्येक स्त्री, पुरूष में समान होता है।

स्वत्व :- जागृति ही मानव का 'स्वत्व' है । सम्पूर्ण अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण में परिपूर्णता ही जागृति है । जागृति सहज स्थिति सुख, शांति, संतोष और आनंद की सहज निरंतरता है। जागृति सहज गति समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व ही है । स्थिति और गति अविभाज्य है ।

स्वतंत्रता :- प्रत्येक मानव अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था (मानव धर्म) में भागीदारी निर्वाह करने, कराने एवं करने के लिये मत देने में स्वतंत्र है । अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था की अक्षुण्णता मानवीय शिक्षा-संस्कार, स्वास्थ्य-संयम, न्याय-सुरक्षा, उत्पादन-कार्य, विनिमय-कोष, सुलभता सहित है जिसका क्रियान्वयन दस सीढ़ी में होता है । 1. 'परिवार' सभा, 2. 'परिवार समूह' सभा, 3. 'ग्राम परिवार' सभा, 4. 'ग्राम समूह' परिवार सभा, 5. 'ग्राम क्षेत्र' परिवार सभा, 6. 'मंडल' परिवार सभा, 7. 'मंडल समूह' परिवार सभा, 8. 'मुख्य राज्य' परिवार सभा, 9. 'प्रधान राज्य' परिवार सभा और 10. 'विश्व राज्य' ।

परिवार सभा अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की दस सीढ़ी हैं । सभी सीढ़ीयाँ एक दूसरे के पूरक हैं और अविभाज्य हैं । अविभाज्यता का तात्पर्य इन दस सीढ़ीयों में से किसी को अलग करना, अलग रखना, अलग सोचना ही संभव नहीं है । सकारात्मक विधि से अविभाज्यता का तात्पर्य प्रत्येक सीढ़ी दूसरे सीढ़ी के लिए अनुप्राणन सूत्र है ।

अधिकार :- मानवीयतापूर्ण आचरण करना, कराना एवं करने के लिये मत देना प्रत्येक मानव का मौलिक अधिकार है। मानवीयतापूर्ण आचरण मूल्य, चरित्र और नैतिकता का अविभाज्य स्वरूप है । 'मानव' शब्द से प्रत्येक/सम्पूर्ण नर-नारी सम्बोधित हैं ।

मानव में समानता

समानता का स्वरूप आवश्यकता, संभावना और सार्थकता के सम्बन्ध में यह समझा गया है कि मानव अपने परम्परा के रूप में नर-नारियों के संयुक्त विधि से प्रमाणित होना सर्वविदित है । मानव परंपरा और उसकी निरंतरता के लिये नर-नारियों का होना सह-अस्तित्व सहज अभिव्यक्ति है । ऐसा वैभव जीवावस्था और प्राणावस्था में भी दृष्टव्य है । मानव परंपरा में एवं जीव परंपरा में भी जीवन का समानता होना पाया जाता है । जीवन अपने स्वीकृतिपूर्वक स्त्री या पुरूष शरीर को चलाता है । जीवन के रूप में न तो स्त्री होते हैं न पुरूष होते हैं । जीवन सदा ही जागृति का प्यासा है। इसे प्रमाणित करने के लिये सदा-सदा ही प्रवृत्ति बनी ही रहती है। बारम्बार शरीर यात्रा का विफल होना भी जनसंख्या वृद्धि का कारण है। इसी के साथ-साथ जीव कोटि के शरीरों की संख्या का घटना भी एक कारण है । क्योंकि इस धरती पर जितने जीवन जीवनी क्रम में और जागृति क्रम और जागृति में प्रमाणित होने के लिये नियतिविहित नियंत्रण रहता ही है। उसमें से मानव परंपरा में केवल जागृति क्रम परंपरा के स्थिति में ही बारम्बार शरीर यात्रा की स्थिति बनी हुई है । इन आधारों पर स्पष्ट हो जाता है जागृतिपूर्वक ही मानव परंपरा का जनसंख्या नियंत्रण हो पाता है । जागृति परंपरा के उपरांत स्वाभाविक रूप में हर जीवन जागृति होने के लिये योग्य परंपरा बना रहता है । इसलिये हर जीवन जागृत होना सहज संभव हो जाता है । जीवन जागृति के

उपरान्त शरीर यात्रा की आवश्यकता नहीं रहती है या न्यूनतम हो जाती है । जागृति की अर्हता, अपेक्षा, संभावना स्त्री-पुरूषों के लिये समान रूप में विद्यमान है । इसीलिये इनमें समानता की परम्परा और उपलब्धि होती है ।

1. मानव जागृतिपूर्वक ही सामाजिक होता है ।
2. मानव जागृतिपूर्वक सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करता है ।
3. मानव ही जागृतिपूर्वक सम्पूर्ण भ्रम से मुक्त होता है ।
4. मानव जागृतिपूर्वक ही 'भ्रम ही बंधन का कारण होना' समझ पाता है ।

संतुलन

जागृत शिक्षा-संस्कार विधि से प्रत्येक मानव जागृत होना पाया जाता है । शिक्षा ग्रहण करने की अर्हता सम्पूर्ण मानव में विद्यमान है । जीवन अनेक बार अथवा मानव बारंबार, मानव परंपरा में जागृत होने का प्रयत्न करता है । इसे हम सब देखे हुए हैं । मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार उपलब्ध होने के उपरांत ही हर मानव में, से, के लिये संतुलन एक नित्य उत्सव का आधार बिन्दु है । संतुलन का मूल रूप सम्पूर्ण मानव में संतुलन, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करता हुआ दसों सीढ़ियों में परस्पर पूरकता पूर्वक मानव सहज जीने की कला को प्रमाणित करने के रूप में है । ऐसे संतुलन का

स्वरूप -

1. शिक्षा-संस्कार-व्यवस्था और संविधान में सामरस्यता
2. मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था में सामरस्यता
3. मानवीय व्यवस्था सहज पाँचो आयामों में सामरस्यता
4. सम्बन्ध-मूल्य-मूल्यांकन और उभयतृप्ति में सामरस्यता
5. नैसर्गिक सम्बन्ध और मानवीयतापूर्ण विधि से जीने की कला में सामरस्यता
6. दसों सीढ़ियों में परस्पर उपयोगिता, पूरकता और सामरस्यता
7. व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभव में सामरस्यता

यही संतुलन का प्रमाण है ।

मानव और नैसर्गिकता में पूरकता ही आगे और उसके आगे आने वाली पीढ़ी में व्यवस्था में जीने की आवश्यकता, सम्भावना और प्रयोजनों को हृदयंगम करने की परम आवश्यकता है । नियति सहज संतुलन को बनाए रखना ही वर्तमान में विश्वास,दूसरी भाषा में सह-अस्तित्व, अभय, समृद्धि और समाधान है । यह सर्वमानव की वांछा भी है ।

सर्वेक्षण से पता लगता है यह सर्वमानव का सर्वकालिक वांछा है । इसके आधार पर मानव अपने नियति सहज कार्यक्रमों को पहचान पाता है जब जागृत परंपरा इस धरती पर

सर्वसुलभ हो जाए ।

जागृत मानव ही उभयप्रकार के संतुलन के लिए दायी होता है और सटीकता से निर्वाह भी होता है । ऐसी ऐश्वर्यमयी अभ्युदय रूपी नित्य वर्तमान में से के लिये मानवीय पूर्ण संविधान अध्ययन और आचरण का वस्तु है ।

नित्य शुभ और नित्य शुभ संभावना सर्वमानव में, से, के लिये नित्य समीचीन समान है ।

यह मानवीय आचरण रूपी संविधान जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सम्मत विधि से पाये गये हैं । मानव अस्तित्व में अविभाज्य है । प्रत्येक मनुष्य जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है । तृप्तियाँ जीवन से संबंधित और मानव तृप्ति वर्तमान में विश्वास होने के आधार पर प्रमाणित होता है । यह प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता और अपेक्षा है । ऐसी वर्तमान में विश्वास सम्पन्न होने के लिए सह-अस्तित्व, समृद्धि और समाधान साक्षित होना पाया जाता है । यह धरती स्वस्थ रहने की स्थिति में और मानव परंपरा जागृत रहने की स्थिति में ऐसा सर्वशुभ हर व्यक्ति में, से, के लिये सफल होना सहज है ।

1. सर्वमानव सार्वभौम शुभ को चाहते हैं ।
2. **चाहने-होने के मध्य में मानव मानवीयतापूर्ण विधि से आचरण करना ही एकमात्र विधि है । यही संविधान है ।**

3. अन्य सभी अवस्थाओं में भी उन-उनके आचरणों से ही उन-उन अवस्थाओं की मौलिकता प्रमाणित होती है । इस विधि से भी आचरण ही मौलिकता का प्रमाण है ।

4. सह-अस्तित्व में ही मौलिक आचरण, सह-अस्तित्व में ही मानव में जागृति प्रमाणित होना पाया जाता है ।

5. सह-अस्तित्व में ही मानव स्वयंस्फूर्त विधि से सम्पूर्ण कार्य व्यवहार को विचार सम्मत, सम्पूर्ण विचारों को अनुभव सम्मत और सम्पूर्ण अनुभवों को सह-अस्तित्व सम्मत विधियों से प्रमाणित करना ही मौलिक अधिकारों की प्रतिष्ठा, वर्चस्व, आवश्यकता एवं समाधान है ।

6

मौलिक अधिकार

1.1 मानवीयता सहज जागृति व जागृतिपूर्ण अखण्ड समाज - सार्वभौम व्यवस्थापूर्वक परम्परा के रूप में अर्थात पीढ़ी से पीढ़ी के रूप में निरंतरता को प्रमाणित करता है । यह करना, कराना एवं करने के लिये मत देना मानव में, से, के लिये मौलिक विधान है ।

व्याख्या - यह अभिव्यक्ति, संप्रेषणा प्रकाशन बीज रूप में हर परिवार में प्रमाणित होना स्वाभाविक है । परिवार में हर सदस्य स्वायत्त होना ही उनके वयस्कता का प्रमाण है । ऐसे प्रमाण सम्पन्न परिवार के रूप में स्थिति परस्परता में ही संबंधों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभय तृप्ति जिसका नाम विश्वास है, प्रमाणित होती है एवं निरन्तरता बनी रहती है । और परिवार सहज आवश्यकता के आधार पर अपनाया/स्वीकारा गया उत्पादन कार्य में एक-दूसरे के लिये पूरक होते हैं । यह समृद्धि का स्रोत होना पाया जाता है । यह प्रत्येक परिवार में, से, के लिये संभावी है। समृद्धि का अनुभव

सामान्य आकांक्षा, संबंधी वस्तुओं से होना पाया जाता है। महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुएं समृद्धि के लिये सहायक है।

इस विधि से हर परिवार सहज संबंधों में विश्वास, समाधान और समृद्धि प्रमाणित होना ही 'मानवीयतापूर्ण' परिवार संज्ञा है। यह पीढ़ी से पीढ़ी में स्वीकार पूर्वक प्रवाहित होती है क्योंकि हर मानव संतान न्याय का याचक, सही कार्य व्यवहार करने का इच्छुक और सत्यवक्ता होता है। परिवार में वयस्क सभी सदस्य जीवन विद्या, अस्तित्वदर्शन और मानवीयतापूर्ण आचरण में परिपक्व रहते हैं। इसलिये परंपरा में सत्यबोध होना, सही और न्यायपूर्ण कार्य-व्यवहार प्रमाणित होता है। यही गति का आधार है।

परिवार सभा सभ्यता - सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन विधियों से सम्पन्न अनुभव ही सभ्यता की प्रतिष्ठा है। परिवार ही अपने परिपक्वता विधि से सभा के स्वरूप में प्रमाणित होता है। इस प्रकार सभा ही सभ्यता की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन स्रोत है। सभा स्वरूप क्रम से दस सीढ़ियों में स्पष्ट है। मूलतः परिवार सभा ही अन्य स्तरीय सभाओं की रचना-कार्य और प्रवृत्तियों को प्रवर्तित करता है। परिवार में समाधान, समृद्धि और परस्परता में विश्वास, प्रतिष्ठा के रूप में अनुभव होना ही, उसकी विशालता की आवश्यकता स्फूर्त होती है। इसी क्रम में परिवार के अन्य कार्यसूत्र भी आशय के रूप में सूत्रित रहता ही है। धरती में अकेले व्यक्ति या परिवार नाम की

स्वरूप की व्यवस्था नहीं है। अनेक व्यक्ति, अनेक परिवार के रूप में मानव प्रकाशित है। इसलिये परस्पर परिवार में विश्वास का सूत्र फैलना एक आवश्यकता रहता ही है। इसी क्रम में परिवार समूह, ग्राम मुहल्ला परिवार होना एक साधारण विधि है। इसमें परिवार का आशित विनिमय, न्याय, स्वास्थ्य संयम, शिक्षा-संस्कार अपेक्षा के रूप में ही रहता है। क्योंकि परिवार आवश्यकीय सभी सामान्य आकांक्षा एवं महात्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओं को निर्मित नहीं करता। आवश्यकता से अधिक एक-दो वस्तुओं को अवश्य ही उत्पादित करता हैं एवं विनिमयपूर्वक अन्य वस्तुओं में बदलने की आवश्यकता बनी रहती है। यह एक आवश्यकीय प्रक्रिया है। इसे दूर-दूर तक सूत्रित करना एक आवश्यकता है। मानव जागृतिपूर्वक ही सामाजिक होना पाया जाता है। यह शिक्षा-संस्कारपूर्वक ही होता है। इसका परीक्षण, सर्वमानव के साथ होना सहज है। इस विधि से संबंधों को विशाल और विशालतम रूप देना आवश्यकता है। इसी विधि से ग्राम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक सम्बन्ध रचना मानव का चिर कामना नैसर्गिकता सहज विधि से स्पष्ट हुआ है। इस विधि से धरती के मानव न्याय, जो अखण्ड समाज के अर्थ को ध्वनित करता है, के साथ समाधान जो सार्वभौम व्यवस्था को ध्वनित करता है, के साथ जागृति जो इन दोनों को संतुलित रूप में प्रमाणित है, के साथ निरन्तर जीने की कला को, अनुभव बल को, विचार शैली को सर्वथा परिपूर्णरूप में जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना संभव है

। जागृत परंपरा ही शिक्षा-संस्कार, न्याय सुरक्षा, विनिमय कोष, उत्पादन कार्य और स्वास्थ्य संयम के रूपों में हर सभा के परस्परता में, हर सभा में प्रमाणित होता है और उसका मूल्यांकन होना एवं उसकी तृप्ति सर्वसुलभ होना ही मानवीयतापूर्ण आचार संहिता का परम लक्ष्य है । अस्तु :-

1. मानव का मौलिक आधार, उसके विशालता का स्वरूप, आवश्यकता का उद्गमन, सार्थकता का स्वीकार हर मानव में है ही ।
2. हर मानव प्रमाणित होना ही चाहता है ।
3. सार्थक होने का सहज स्रोत मानवीय शिक्षा-संस्कार ही है । और
4. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में ही सम्पूर्ण प्रमाण प्रमाणित होता है ।

1.2 मानव परिभाषा के रूप में ''मनाकार को सामान्य आकांक्षा व महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं और उपकरणों के रूप में तन, मन सहित श्रम नियोजनपूर्वक साकार करने वाला, मनः स्वस्थता अर्थात सुख, शांति, संतोष, आनन्द सहज अपेक्षा सहित आशावादी है। यह मानव परंपरा में मौलिक विधान है ।''

व्याख्या - समृद्धि सर्वमानव स्वीकृत मानसिकता, विचार, इच्छाएँ है। दूसरे विधि से समृद्धि की आशा, समृद्धि के

विचार एवं समृद्धि की इच्छा हर वयस्क मानव में कार्यरत रहना पाया जाता है ।

आवश्यकता और उसकी तादात, संभावना, उपलब्धि और तृप्ति ही समृद्धि योजना का आधार है । इन पाँचों अवयवों का पूरकता और उसकी निरंतरता ही समृद्धि परंपरा है । परम्परा का मूल रूप 'कम से कम और ज्यादा से ज्यादा' परिवार ही है । परिवार ही मूलतः सभा, समाज और व्यवस्था का स्वरूप है । परिवार में संस्कृति सभ्यता, सभा में विधि व्यवस्था प्रमाणित होना जागृति है ।

परिवार की पहचान, उसकी विशालतमता ही समाज का स्वरूप है। व्यवस्था अपने में न्याय, उत्पादन, विनिमय, स्वास्थ्य संयम और शिक्षा-संस्कार सुलभता ही है और समाज अपने आप में सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति विधि ही जागृति का साक्ष्य है । इसी उभय तृप्ति का नामकरण ही 'न्याय' है । यह सभी परिवार में हो सकता है, आवश्यकता है, यह सर्वविदित है ।

इसका स्रोत निरंतर जागृत परिवार है । दूसरा जागृत परिवार और उसके संतुलन के लिए मानवीय शिक्षा-संस्कार परंपरा ही है ।

मानव जागृत होने के उपरान्त ही जागृतिपूर्णता की ओर दिशा और गति प्रशस्त है । जागृतिपूर्णता के अनन्तर परम्परा में, से, के लिये प्रेरक, प्रमाण के रूप में कारण होता है । यह

सर्वमानव का अभीष्ट है ।

जागृति क्रम से मानव जागृतिपूर्णता सहज प्रमाणों को मानव कुल में प्रमाणित कर देना ही परम्परा है । हर मनुष्य, हर परिवार और सम्पूर्ण परिवार जागृति को वरता है अर्थात जागृति को स्वीकारता है । जागृति का स्वरूप जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह करने के रूप में ही है । इसका धारक वाहक हर मनुष्य है । धारक वाहकता विधि से ही पीढ़ी से पीढ़ी अनुप्राणित होता है । अनुप्राणन का तात्पर्य अनुक्रम से, सीढ़ी दर सीढ़ी अस्तित्व, जीवन जागृति और मानवीयतापूर्ण आचरण को प्रमाणित करना ही है । प्रमाणित होना, करना, कराना, करने के लिये मत देना, यह मानव की विशालता का द्योतक है । मानव सदा-सदा ही विशालता क्रम में ही समाधान और तृप्ति सम्पन्न होता है । यही मनः स्वस्थता का तात्पर्य है ।

सर्वतोमुखी समाधान और तृप्ति सहज निरंतरता सर्वमानव का अभीष्ट है । जागृत मानसिकता का संतुलन और सार्थक स्वरूप यही है । संतुलन ही मानव की स्वभावगति है । ऐसे स्वभावगति का प्रमाण स्वरूप स्वायत्त मानव और परिवार मानव ही है । स्वायत्त मानव, मानवीय शिक्षा-संस्कारपूर्वक सार्थक होता है । मानवीय शिक्षा-संस्कार परंपरा और शिक्षा ग्रहण करने की अपेक्षा हर मनुष्य में निहित है ।

मनः स्वस्थता विधि जागृति और जागृतिपूर्णता का द्योतक है । ऐसी स्वस्थ मानसिकतापूर्वक परिवार मानव प्रतिष्ठा

के रूप में मनाकार का साकार पूर्वक, समृद्धि सम्पन्न होते हैं । जागृत मानसिकता पूर्वक ही परिवारगत उत्पादन कार्य में एक-दूसरे का पूरक होना स्वाभाविक है । जीवन शक्तियाँ अक्षय होने और शरीर की और समाज गति की आवश्यकता अपने में सीमित है । इसी आधार पर हर परिवार अपने में समृद्ध होने की व्यवस्था सहज है । यह सहजता जागृतिपूर्वक हर मनुष्य में समझ रूप में, विचार रूप में, कार्यरूप में और व्यवहार रूप में प्रमाणित होना ही जागृत परम्परा का विशालता और उसका प्रमाण है । प्रमाण स्वयं में प्रभाव क्षेत्र का द्योतक है। इस क्रम में मानव अपने परिभाषा के अनुरूप मौलिक अधिकार सम्पन्न है।

1.3 मानव, अपनी परिभाषा के अनुरूप बौद्धिक समाधान तथा भौतिक समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व में प्रमाण का स्रोत व प्रमाण परंपरा है । यह मौलिक विधान है ।

व्याख्या - अस्तित्व में प्रत्येक 'एक' अपने सम्पूर्णता सहित 'क्रिया और व्याख्या' है । क्योंकि प्रत्येक एक स्थिति गति में होना पाया जाता है । स्थिति में क्रिया एवं गति में व्याख्या । स्थिति-गति सहित ही 'त्व' सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी (पूरकता या पूरक) होना पाया जाता है । प्रत्येक एक अपने स्थिति में क्रिया होना दिखाई पड़ता है । हर क्रिया अपने गति सहित स्थिति एवं स्थिति सहित

गति के रूप में होना पाया जाता है । जैसे-एक जागृत मनुष्य किसी भी स्थिति में कहीं भी हो, स्थिति-गति के संयुक्त रूप में होता है । मनुष्य अपने में आशा, विचार, इच्छा, संकल्प और प्रमाणिकता सहज गति और आस्वादन, तुलन, चिन्तन, बोध एवं अनुभव सहज स्थिति के संयुक्त रूप में रहता ही है । इन्हीं का किसी न किसी स्थिति या गति सहज प्रकाशन शरीर के द्वारा सम्पन्न होता ही रहता है। इसी प्रकार यह धरती अपने स्थिति सहज रूप में अपने धुरी में गतित रहते हुए सूर्य के सभी ओर अपने गतिपथ में आरूढ़ रहता हुआ दिखाई पड़ता है । यह सौर व्यूह अपने में एक व्यवस्था के रूप में दृष्टव्य रहते हुए, अनेक सौर व्यूह के साथ सह-अस्तित्व सहज स्थिति गति को और पूरकता को प्रमाणित करती ही है । इसका प्रमाण यही है एक अनेक पर और अनेक एक पर प्रतिबिम्बित प्रमाणित है ही । साथ ही प्रभाव क्षेत्र और महिमा (कार्य महिमा-गति महिमा) जिसमें से गति महिमा ही प्रभाव और पूरकता के रूप में दिखाई पड़ती है । परस्परता में आदान प्रदान होती ही है। अस्तित्व में स्वभाव गति और उसकी निरंतरता के लिये सम्पूर्ण पूरकता स्पष्ट है । पूरकता विधि से ही मनुष्य भी स्वभाव गति में, धरती भी स्वभाव गति में होना सहज है । जैसा मानव परम्परा हर मनुष्य के पूरक होने के प्रमाण में ही हर मनुष्य जागृत होता है, हो सकता है । इसी प्रकार यह धरती अन्य ग्रह गोलों के पूरकता के प्रमाण स्वरूप विकसित हुआ होना पाया जाता है । धरती के विकास का तात्पर्य यही है अथवा हर धरती के विकास का

तात्पर्य इतना ही है । चारों अवस्था में प्रकृति प्रमाणित है । जैसे-इस धरती पर पदार्थ, प्राण, जीव एवं ज्ञान अवस्थाएँ प्रमाणित है ही । इन चारों अवस्था में पूरकता और उसकी निरन्तरता के लिये मानव में मानवीयतापूर्ण आचरण अनिवार्य स्थिति है । मानव अपने पूरकता को अन्य प्रकृति के साथ और मानव प्रकृति के साथ प्रमाणित करने के क्रम में ही व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित हो पाता है । इसी विधि से मानव से आशित, प्रतीक्षित, अभिप्सीत व्यवस्था परंपरा इस धरती पर स्थापित और फलित होना सहज है ।

'सम्पूर्ण मानव समुच्चय' एक क्रिया है । इसी का नामकरण है 'मानवीयतापूर्ण क्रिया' । मानवीयतापूर्ण क्रिया सहज प्रमाण है । मानव परंपरा सहज चारों आयामों में यथा शिक्षा, संस्कार, संविधान और व्यवस्था में मानवीयता निरंतर रूप में अथवा परंपरा के रूप में प्रमाणित रहना । इस प्रकार मानवीयता उक्त चारों आयामों में क्रियाशील रहना ही परंपरा रूपी गति सार्थक होना पाया जाता है । दूसरे विधि से प्रत्येक जागृत मानव अपने विचार और अनुभव समुच्चय विधि से स्थिति है और व्यवहार तथा प्रयोग विधि से गति है । तीसरा-जागृत जीवन सहज रूप में आस्वादन, तुलन, चिन्तन, बोध, अनुभव स्थिति है और आशा, विचार, इच्छा, संकल्प, प्रमाणिकता के रूप में निरंतर गति है । सम्पूर्ण मानव समाज के रूप में स्थिति है और व्यवस्था के रूप में गति है । चौथे विधि से-सत्ता में संपृक्त रूप में अस्तित्व नित्य स्थिति है और सह-

अस्तित्व नित्य गति है ।

प्रत्येक अणु, प्रत्येक परमाणु के अणु-बंधन सहज स्थिति और भार बन्धन सहज गति है । सम्पूर्ण अणुएँ रचना के रूप में स्थिति और परिणाम परिवर्तन की ओर गति दिखाई पड़ती है । प्रत्येक वनस्पतियाँ अपने रूप और गुण के अनुसार गति एवं स्वभाव - धर्म के अनुसार स्थिति में होना पाया जाता है । सम्पूर्ण जीव भी रूप और गुण के आधार पर गति और स्वभाव एवं धर्म के आधार पर स्थिति में होना पाया जाता है ।

मानव अपने मूल्यों के रूप में स्थिति, सम्बन्ध और व्यवहार के रूप में गति का होना पाया जाता है । समाधान के रूप में स्थिति एवं व्यवस्था के रूप में गति है ।

मूल्यों के धारकता के रूप में स्थिति और वाहकता सहित मूल्यांकन के रूप में गति, जागृत दृष्टि के रूप में स्थिति, दर्शन के रूप में गति जीवन के रूप में स्थिति, प्रमाणिकता के रूप में गति । उद्देश्यों के रूप में स्थिति, कार्य व्यवहारों के रूप में गति, मानव के रूप में स्थिति, प्रयोजनों के रूप में गति । समझदारी (जानना, मानना, पहचानने) के रूप में स्थिति, निर्वाह करने के रूप गति, मानव के रूप में स्थिति, मानव जाति के रूप में गति । पुनः मानव के रूप में स्थिति, मानव धर्म (व्यवस्था) के रूप में गति होना पाया जाता है । इसलिये मानव का मौलिक अधिकार ही है समाधान, समृद्धि, अभय,

सह-अस्तित्वपूर्वक प्रमाणित होना ही मानव परिभाषा का नित्य प्रमाण है ।

1.4 मानव, मानवीयतापूर्ण आचरण जो स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य व्यवहार, संबंधों की पहचान व मूल्यों का निर्वाह; तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग व सुरक्षा के रूप में मानवीयता की व्याख्या है। यह मानव परंपरा में मौलिक विधान है ।

व्याख्या - अस्तित्व में प्रत्येक इकाई अपने आचरण रूपी व्याख्या सहित ही अपने-अपने 'त्व' को प्रमाणित करता हुआ देखने को मिलता है । इसी क्रम में सम्पूर्ण जागृत मानव 'मानवत्व' को अपने आचरणपूर्वक प्रमाणित करना स्वाभाविक है, व्यवहारिक है और अपेक्षित है । मानव प्रकृति ही जीवन जागृति पूर्वक मानवत्व को आचरण में प्रमाणित करना होता है । अन्य प्रकृति यथा पदार्थावस्था में प्रकृति परिणामानुषंगीय विधि से अपने-अपने 'त्व' को आचरणों में प्रमाणित करता हुआ देखने को मिलता है । यथा दो अंश का परमाणु अपने निश्चित विधि से आचरण करता है । इसका तात्पर्य यह हुआ दो अंश वाले जाति के सभी परमाणु एक ही आचरण करते हैं । इसलिये इस प्रजाति के सम्पूर्ण परमाणुओं का आचरण एक ही है। इसी प्रकार 3, 4 या 5 आदि विभिन्न संख्यात्मक परमाणुओं का आचरण, अपने-अपने प्रजातियों में सम्पूर्णता के रूप में एक ही है । इसमें कोई व्यतिरेक होता नहीं है ।

परमाणुओं की अनेक प्रजातियाँ है । इसी क्रम में अणुओं में निश्चित प्रजाति के अणुओं का आचरण और निश्चित रचना का आचरण अक्षुण्ण होना पाया जाता है । जैसे विभिन्न तत्वों के परमाणुओं से रचित अणु, अणु रचित पिण्ड रचनाओं का आचरण सर्वदेश-सर्वकाल में एक ही होता है।

प्राणावस्था में सम्पूर्ण रचनाएँ प्राणकोशाओं से रचित रहना विदित है। ऐसे प्राण कोषाएं मूलतः समान होते हुए रचना में विविधता होना देखा गया । इसका नियंत्रण बीजानुषंगीय विधि से सम्पन्न होता हुआ दिखाई पड़ता है । बीजों के आधार पर वृक्ष, वृक्षों के आधार पर बीज प्रमाणित होना सर्वविदित है । इनके सम्पूर्ण आचरण अपने-अपने प्रजाति के सम्पूर्ण में एक ही होता है । जैसे-बेल, दूब, पीपल, कमल, गुलाब आदि सभी पेड़ -पौधे वृक्ष, पुष्पलता और उन-उनमें विविध प्रजातियाँ बीज, वृक्ष, न्याय क्रम में नियंत्रित है । उन-उन प्रत्येक प्रजातियों के सम्पूर्ण एक-एक अपने आचरण के रूप में एक ही होते हैं ।

जीव संसार अनेक प्रजातियों के रूप में दृष्टव्य है । प्रत्येक प्रजाति सहज जीव कितने भी संख्या में हो उन-उन का आचरण एक ही होना पाया जाता है । जैसे कुत्ता, बिल्ली, गाय, घोड़ा, गधा, हाथी आदि जीव संसार दृष्टव्य है । इन - इनके आचरणों में स्थिरता, संतुलन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ये जीव संसार वंशानुषंगीय विधि से नियंत्रित और संतुलित होना पाया जाता है ।

इन तथ्यों के अवलोकन से यह पता लगता है कि सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति रूपी सह-अस्तित्व ही पूरकता विधि से पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्थायें अपने में व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में होना अस्तित्व सहज वैभव नित्य वर्तमान है । इसी धरती में चारों अवस्थायें वर्तमान में दिखाई पड़ती हैं ।

ज्ञानावस्था में मानव को अपने आपको पहचानने की आवश्यकता है। यह गौरवमय प्रतिष्ठा हर व्यक्ति में, से, के लिये स्पष्टतया समीचीन है । अभी मानव जीवन-ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज विधि से जागृत पद प्रतिष्ठा को पहचानना स्वाभाविक हो गया है । ज्ञानावस्था का तात्पर्य ही है जागृति पूर्वक ही 'त्व' सहित व्यवस्था को प्रमाणित करता है । परम्परा के रूप में करता ही रहेगा । जागृति क्रम से जागृति की स्वीकृति ही संस्कार है । संस्कार की परिभाषा भी यही है पूर्णता के अर्थ में अनुभव बल, विचार, शैली, जीने की कलायें पुनः अनुभव बल के लिये पुष्टिकारी होना ही मानवीयतापूर्ण संस्कार प्रतिष्ठा ऐसा जागृति रूपी संस्कार ही मानव का स्वत्व स्वतंत्रता व अधिकार के रूप में है क्योंकि जीवन में ही जागृति का मूल्यांकन होता है । मानव परंपरा में जागृति प्रमाणित होती है । यही, प्रमाण परम्परा का तात्पर्य है ।

अध्ययन मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार ही मानव को सदा-सदा के लिये जागृति व जागृति परम्परा के लिये समीचीन

स्रोत है । ऐसे शिक्षा-संस्कार को हर मनुष्य के लिये सुलभ होना मानव सहज अथवा मानवीयतापूर्ण मानव के पुरूषार्थ का मूल्यांकन है । इससे पता चलता है कि मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार परम्परा मानव परम्परा का पुरूषार्थ है । पुरूषार्थ का तात्पर्य ही है, अपनी प्रखर प्रज्ञा और उसका निरंतर कार्य है । ऐसा प्रखर प्रज्ञा मानव में ही प्रमाणित होता है । प्रधान रूप में यही मानव सहज मौलिकता प्रखर प्रज्ञा ही जागृति और जागृति पूर्णता का प्रमाण है । इसकी अभिव्यक्ति ही जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन है । ऐसे जागृति रूपी अथवा जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन रूपी जागृति को प्रमाणित करना ही प्रखर प्रज्ञा का प्रमाण है । इस विधि से हर मनुष्य इसे अध्ययन विधि से जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही जागृति और उसकी परम्परा है । निर्वाह करने के क्रम में ही आचरण, व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी प्रमाणित होता है । आचरण में मूल्य, चरित्र, नैतिकता मूल रूप में अविभाज्य रूप में वर्तमान रहता है । परिवार व समाज विधा में चरित्र प्रधान विधि से मूल्य और नैतिकता प्रमाणित होता है । **मूल्य प्रधान विधि से परिवार व्यवस्था और नैतिकता प्रधान विधि से समग्र व्यवस्था प्रमाणित होती है** । जागृत परंपरा में ही स्वत्व स्वतंत्रता अधिकार सहज कार्यक्रम परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में स्पष्ट है ही ।

1. परम जागृति का साक्ष्य मानव पंरपरा में ही होता है ।

2. मानव परंपरा ही संस्कारों का धारक-वाहक है ।
3. मानव परंपरा में, से, के लिये नित्य तृप्ति और उसकी निरंतरता स्वराज्य और स्वतंत्रता विधि है ।
4. स्वतंत्रता का संतुलन स्वराज्य विधि में, स्वराज्य स्वतंत्रता विधि में संतुलित रहता है ।
5. संतुलन ही हर व्यक्ति में दायित्व और कर्तव्य के रूप में नियंत्रित रहना पाया जाता है । यही संपूर्ण कार्यों में नियमित रहना होता है। इस प्रकार मानव अपने परिभाषा के अनुरूप अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान को स्वीकृति के रूप में स्वानुशासन के रूप में स्वतंत्रता को; समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में स्वराज्य व्यवस्था को प्रमाणित करता है । यही मानव सहज परिभाषा का सार्थकता उपकार, तृप्ति और उसकी निरंतरता है । अस्तु मानव अपने परिभाषा सहज सार्थकता को प्रमाणित करना ही मौलिक अधिकार है ।

1.5 मानवीयतापूर्ण आचरण सहजता, मानव में स्वभाव गति है, मानवीयतापूर्ण आचरण, मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य अभिव्यक्ति, संप्रेषणा व प्रकाशन है । यह मौलिक विधान है ।

व्याख्या - मानवीयतापूर्ण आचरण मूल्य, चरित्र, नैतिकता का पूरक विधि सम्पन्न प्रमाण है । सम्पूर्ण प्रमाण वर्तमान सहज वैभव है । मानव परंपरा में मूल्यांकित, प्रमाणित

होने वाले सम्पूर्ण मूल्य 5 वर्गों में और 30 संख्या में देखने को मिलता है । यथा -

जीवन मूल्य चार हैं :- 1. सुख 2. शांति 3. संतोष 4. आनन्द ।

मानव मूल्य 6 हैं :- 1. धीरता 2. वीरता 3. उदारता 4. दया 5. कृपा 6. करूणा ।

स्थापित मूल्य 9 हैं :- 1. कृत्तज्ञता 2. गौरव 3. श्रद्धा 4. प्रेम 5. विश्वास 6. ममता 7. वात्सल्य 8. स्नेह 9. सम्मान ।

शिष्ट मूल्य 9 हैं :- 1. सौम्यता 2. सरलता 3. पूज्यता 4. अनन्यता 5. सौजन्यता 6. पोषण (उदारता) 7. सहजता 8. निष्ठा 9. अरहस्यता/स्पष्टता ।

वस्तु मूल्य 2 हैं :- 1. उपयोगिता मूल्य, 2. कला मूल्य ।

चरित्र के स्वरूप को स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष एवं दयापूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में देखा गया है । यह तीनों स्थितियाँ मानव में ही परिभाषित रहना पाया जाता है । मानव में यह परिभाषित होने के आधार को मानवत्व रूपी मूल्य, चरित्र, नैतिकता का सामरस्यता सूत्र में वर्तमान रहता हुआ देखा गया है, देखा जा सकता है । इसका प्रयोजन सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करना ही होता है । सार्वभौम व्यवस्था

अपने में नैतिकतापूर्ण अखण्ड समाज संतुलन को सूत्रित - व्याख्यायित करता है । यही मानवत्व के संबंध में सम्पूर्ण अध्ययन का स्वरूप होना देखा गया है ।

मूल्य, चरित्र, नैतिकता ही मानव में, से, के लिये न्याय सूत्र का आधार है । मानव में ही यह परस्पर अपेक्षा है, परस्परता में मूल्य, चरित्र, नैतिकता को मूल्याँकित करें । इसी मूल्याँकन विधि में उभयतृप्ति और अखण्ड समाज रचना का सूत्र देखने को मिला है । इस विधि से मूल्य, चरित्र और नैतिकता ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का प्रमाण, सूत्र एवं व्याख्या है ।

मौलिक अधिकार का आधार भी मानवत्व ही है । यही स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार रूपी मूल ऐश्वर्य है अथवा सम्पूर्ण ऐश्वर्य है । इसी ऐश्वर्य को वर्तमान में प्रमाणित करने के क्रम में ही स्वराज्य और स्वतंत्रता को परंपरा के रूप में प्रमाणित कर सकते हैं जिससे ही समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सर्वसुलभ होना नित्य समीचीन है । सर्ववांछा अथवा अपेक्षा अथवा आवश्यकता सर्वमानव में निहित है ।

स्वनारी/स्वपुरूष की परिभाषा - विधिवत विवाहपूर्वक प्राप्त नारी या पुरूष

व्याख्या :- इस मुद्दे पर अनेक समुदाय परम्पराएँ विविध प्रकार से विवाह कार्य को सम्पन्न करते हैं । इसका पार्थिव या दैहिक प्रयोजन शरीर सम्बन्ध ही होना, ऐसे विवाह सम्बन्ध में

जुड़े हुए नर-नारियों में प्राप्त, धन का उपभोग करने में समानाधिकार अथवा न्यूनातिरेक अधिकार के रूप में स्वीकृत रहा है । इससे अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का आधारभूत सूत्र व्याख्या नहीं हो पाया । इसका साक्ष्य अनेक और विविध समुदाय परंपरा ही है ।

विवाह सम्बन्ध मूलत : -

1. परिवार व्यवस्था में जीने और समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने की प्रतिज्ञा है ।

2. विवाह संबंध 'परिवार मानव' रूप में व्यवस्था विधि से जीने की कला को स्वीकारने की प्रतिज्ञा है ।

3. विवाह सम्बन्ध परिवार में, से, के लिये आवश्यकीय वस्तुओं के लिये अपनाया गया उत्पादन कार्य में भागीदारी करने की प्रतिज्ञा है ।

4. परिवार मानवता सम्पन्न व्यक्ति में ही सम्पूर्ण अथवा मानवीयतापूर्ण प्रतिज्ञाएँ निर्वाह होते हैं । इस विधि से विवाह के पहले हर नर-नारी परिवार मानव के रूप में प्रतिज्ञा स्वीकार करने के लिये 'स्वायत्त मानव' के रूप में प्रतिष्ठित रहना, विवाहाधिकार तन, मन, धन का सदुपयोग सुरक्षा करने में प्रतिज्ञा का आधार है ।

5. किसी भी मानव परिवार में, से विवाह सम्बन्ध का योजना मानव कुल के लिये उपयुक्त है । विवाह सम्बन्ध

नस्ल या रंग की सीमाओं से विशालता के लिये सहायक होना देखा गया है । इसीलिये विवाह-बेला में नस्ल रंग से संबंधित विचारों व आग्रहों से मुक्त होने की प्रतिज्ञा है ।

6. न्यायपूर्ण व्यवहार को निर्वाह करने में प्रतिज्ञा है विवाह संबंध ।

7. विवाह सम्बन्ध मानवीयतापूर्ण व्यवहार करने के लिए प्रतिज्ञा है।

8. विवाह सम्बन्ध, सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन एवं उभयतृप्ति के लिये कार्य करने में प्रतिज्ञा है ।

9. प्रत्येक नर-नारी जो विवाहपूर्वक जीने की कला को प्रमाणित करने के लिये उद्देश्य बना लिये हैं । वे दोनों जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सम्पन्न होने में पारंगत होने और मानवीयतापूर्ण आचरण में प्रमाणिक होने का घोषणा करते हुए तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा करने के लिये प्रतिज्ञा करेंगे ।

सम्बन्धों के विशालता विधि को ध्यान में रखते हुए विवाह सम्बन्ध में किसी भी मानवीयतापूर्ण परिवार में पले हुए स्वायत्त मानवाधिकार सम्पन्न नर-नारी का विवाह सम्बन्ध घटित होना मानव कुल सहज नैसर्गिक है । इसकी स्वीकृति हर नर-नारी में अवधारणा के रूप में होना आवश्यक है ।

ऊपर कहे प्रतिज्ञा कार्यों में यह तथ्य उद्घाटित हुआ ही है कि स्वायत्त मानवाधिकारोपरान्त ही विवाह घटना का उपयोगी और सार्थक होना पाया जाता है । स्वायत्त मानव का पहचान स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन सहज प्रमाण के आधार पर सम्पन्न होना व्यवहारिक है । ऐसी अर्हता को शिक्षा-संस्कार परंपरा में प्रावधानित रहना मानव सहज वैभव में से एक प्रधान आयाम है । इस प्रकार चेतना विकास मूल्य शिक्षा सम्पन्न शिक्षित व्यक्ति ही अध्ययनपूर्वक अपने में स्वायत्तता का अनुभव करने और सत्यापित करता है । मानवीयतापूर्ण शिक्षा, मानवीयतापूर्ण ज्ञान, दर्शन और आचरण सम्पूर्ण अध्ययनोपरांत किये जाने वाले हर सत्यापन को वाचिक प्रमाण के रुप में स्वीकारना नैसर्गिक व्यवहारिक आवश्यक मानव परंपरा में से प्रयोजनशील होना देखा गया है क्योंकि परस्पर सम्बोधन सत्यापन के साथ ही सम्बंध, कर्तव्य व दायित्वों की अपेक्षाएँ और प्रवृत्तियाँ परस्परता में अथवा हरेक पक्ष में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है ।

विवाह सम्बन्ध समय में आयु की परिकल्पना का होना पाया जाता है । आयु के साथ स्वास्थ्य, समझदारी, ईमानदारी, कारीगरी की अर्हता जिम्मेदारी, भागीदारी सहित दाम्पत्य सम्बन्ध में प्रवृत्ति यह प्रधान बिन्दुएं हैं । इसका परिशीलन विवाह संबंधके लिये उत्सवित नर-नारियाँ का सत्यापन, अभिभावकों की सम्मति, शिक्षा-संस्कार जिनसे ग्रहण किये और उसे

अध्ययनपूर्वक जिन अभिभावकों और आचार्यों के सम्मुख प्रमाणित किया, उनकी सम्मति यह प्रधान रुप में जाँच पूर्वक एकत्रित कर लेना आवश्यक है । इस संयोजन कार्य को करनेवाला व्यक्ति प्रधानत: विवाह सम्बन्ध में प्रवेश करने वाले हर नर-नारी का पहला अभिभावक होंगे, दूसरा शिक्षक या आचार्य रहेंगे, तीसरे स्थिति में भाई-बहन और मित्र रहेंगे ।

स्वायत्त मानवाधिकार के लिए 18 वर्ष की आयु तक सम्पन्न होने की व्यवस्था है । इसके उपरान्त परिवार मानव के रुप में प्रमाणित होने के लिए चार वर्ष न्यूनतम रुप में होना आवश्यक है । इसमें हर अभिभावक, आचार्य, भाई-बहन, मित्र सबको प्रमाण देखने को मिलेंगे । इस अवधि के उपरान्त प्रधानत: अभिभावक, प्रौढ़, भाई-बहन, मित्रों की सम्मति विवाह में प्रयोजित होने वाले नर-नारी की प्रवृत्तियों का संगीत अथवा एक मानसिकता के आधार पर आचार्यों की सम्मति सहित विवाह संस्कार सम्पन्न होगा । यही मानव परंपरा में मानवीयतापूर्ण पद्धत्ति से मानव संचेतना सहित सम्पन्न होने वाला विवाह संस्कार उत्सव है । इसके लिये आयु विचार स्पष्ट हो गया। बाईस वर्ष के उपरान्त ही विवाह सम्पन्न होना अध्ययन विधि से स्पष्ट हो चुका है । इसी अवधि के साथ दायित्व, कर्त्तव्य और परिवार मानव का सम्पूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता और अवधियाँ स्पष्ट हो चुकी है। दूसरी विधि से स्वास्थ्य संबंध में सोचने पर भी शरीर-अंग-अवयव पुष्टि भी इसी आयु तक सहज ही सम्पन्न होना देखा गया है ।

तीसरी प्रवृत्ति यह भी देखा गया है कि मानव अपने सार्थकता के साथ आवश्यकताओं की व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी सजाने अर्थात अवधारणाओं में सजाने, पारंगत होने, प्रमाणित करने की अनिवार्यता प्रधान विधि से विवाह मानसिकता ऐसे अर्हता के उपरान्त ही उद्‌मित होना स्वाभाविक है । इस क्रम में प्रचार-प्रदर्शन, प्रकाशन कार्य-प्रणालियाँ स्वाभाविक रुप में ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था एवं व्यवस्था में भागीदारी के लिए अनुकूल कार्य प्रणाली, प्रवृत्ति, पद्धति, नीतिपूर्ण रहना होता ही है । अक्षयबल-शक्ति सम्पन्न में समान रहता है । अस्तित्व दर्शन जीवन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण में पारंगत प्रमाणित होने के क्रम में सर्वाधिक व्यक्तियों में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी की प्रवृत्ति, सम्बन्ध-मूल्य-मूल्यांकन-उभय तृप्ति की प्रवृत्ति तन-मन-धन रुपी अर्थ के सदुपयोग-सुरक्षा सहज प्रवृत्ति स्वयं-स्फूर्त होता हुआ देखा गया है । इसी आधार पर मानवीय आचार संहिता रुपी संविधान, सार्वभौम व्यवस्था चरित्र के रुप में पहचानना, प्रमाणित होना संभव हो गया है । मानव परंपरा में मौलिक अधिकार हर नर-नारी में समान होने से मानवीयतापूर्ण प्रवृत्तियाँ देश, आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्षों में समान होने की अपेक्षा नैसर्गिक व्यवहारिक और व्यवस्था सूत्र है ।

मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में विवाह-सम्बंध हर नर-नारी के लिए अप्रत्याशित घटना नहीं है । अपितु प्रत्याशित घटना ही है । इसी के साथ अनिवार्य घटना नहीं है अपितु

स्वयंस्फूर्त सम्मत योजना, सम्मत स्वीकृति और प्रवृत्ति, व्यवस्था प्रधान सार्थकता और उसकी अखण्डता सहज वैभव सुख में निरन्तरता को स्वीकारा हुआ निष्ठान्वित मानसिकता में दाम्पत्य सम्बंध की अनिवार्यता स्वभाविक रुप से गौण होना देखा गया है ।

मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में मानव कुल के रुप में शरीर निर्माण गर्भाशय में होने एवं उसका पोषण-सरंक्षण-संवर्धन एक आवश्यकीय भूमिका है । इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए ही विवाह सम्बन्ध का सर्वोपरि प्रयोजन है । इसी के साथ-साथ यौवन और यौन विचार संयोग की आपूर्ति स्वाभाविक रुप में होना पाया जाता है । इसमें यह भी देखा गया है मानवीयतापूर्ण मानसिकता, विचार, चिन्तन (मानवीयता के प्रति दायित्व-कर्तव्य मानसिकता की सुदृढ़ता) समुन्नत और परिष्कृत होते-होते यौन-यौवन संबंधी आकर्षण अथवा सम्मोहन क्षय होता है । यह भी मानवीयता के प्रति निष्ठान्वित हर नर-नारी में परीक्षण और सत्यापन संगीत का पाया जाना नैसर्गिक है ।

आयु विचार के साथ-साथ विवाहोत्सव के लिए तैयार नर-नारी के आयु समान होना चाहिये, या ज्यादा कम होना चाहिये, किसका ज्यादा और किसका कम होना चाहिए एवं विवाह की अधिकतम आयु सीमा क्या होना चाहिये इन सब पर मानव सहज विचार और प्रवृत्ति प्रयोजन सहित आवश्यकता को पहचानना चाहते हैं । मानवीयतापूर्ण मानव मानस में मानव

सम्बंध समाज, नैसर्गिक सम्बंध मूल्य का निर्वाह मूल्यांकन प्रक्रिया सहित तृप्ति पाने का स्रोत सहित जुड़ा रहना पाया जाता है । इसी क्रम में सभी सम्बन्धों की सार्थकता व्याख्यायित है ।

हर स्वायत्त मानव, परिवार मानव अपने आप में व्यवस्था कार्य विधियों के लिए तत्पर रहना अपेक्षित है ही । इसी आधार पर प्रयोजन का स्वरुप पुनश्च समीचीन सम्बंध-मूल्य-मूल्यांकन और परिवार व्यवस्था ग्राम परिवार व्यवस्था में भागीदारी से विश्व परिवार में भागीदरी है । यही प्रधान रुप में ध्यान में रहने की आवश्यकता है ।

इस क्रम में आयुविचार का पहले मुद्दा समान रहना चाहिये, अधिकतम रहना चाहिए, नर-नारियों में किसको अधिक और किसका कम रहना चाहिये । इस विचार क्रम में सुस्पष्ट है कि नर-नारियों का आयुसीमा ज्यादा से ज्यादा 3 वर्ष तक अधिकतम दूरी हो सकती है । मानवीयतापूर्ण परंपरा में सहज ही इस आयु अर्थात् 3 वर्ष न्युनाधिक सीमा में ही हर नर-नारी को विवाह संबंध का संभावना बना ही रहता है । नर-नारियों में से कोई भी 3 वर्ष ज्यादा-कम हो सकते हैं, समान भी हो सकते है ।

नर-नारी के बीच विवाह संबंध का मूल-मुद्दा मानवत्व से प्रमाणसिद्धि, व्यवस्था एवं व्यवस्था में भागीदारी में दक्षता, जीवन ज्ञान अस्तित्व दर्शन में पारंगत अधिकार यही तीन आधार रहेगा ।

स्वायत्ततापूर्ण परिवार मानव अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र से जीता-जागता हुआ परम्परा में नर-नारी का समानाधिकार, मानवत्व पर समानाधिकार होना स्पष्ट हो चुकी है । ऐसा अधिकार अर्थात मानवीयता रुपी अधिकार, कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दु रुपी परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में और कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु के प्रमाण रुप में प्रामाणिकता पूर्वक स्वानुशासित होना, प्रमाणित करना ही है। इस मूल उद्देश्य को पीढ़ी से पीढ़ी में अर्पित करने के क्रम में सम्बन्ध- मूल्य-मूल्यांकन, उभयतृप्ति, तन-मन-धन रुपी अर्थ का सदुपयोग-सुरक्षा; स्वधन, स्वनारी/ स्वपुरूष दयापूर्ण कार्य करना ही सम्पूर्ण व्यवहार है । जिसके फलस्वरुप समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व हर परिवार में प्रमाणित होना ही मानव परंपरा है । इसी में हर नर-नारी भागीदारी को निर्वाह करना है । समानाधिकार का प्रयोजन यही है । इन प्रयोजनों का परम्परा में स्वाभाविक है हर व्यक्ति स्वायत्त हाने के फलस्वरूप पराधीनता, परतंत्रता दोनों का उन्मूलन हुआ रहता है । इसके विपरीत परिवार मानव और व्यवस्था मानव के रुप में नित्य योजना हर नर-नारी के सम्मुख स्पष्ट रहता है । इसलिये विवाहोत्सव समय में पारितोष रुप में वस्तुओं का आदान-प्रदान स्वयं स्फूर्त विधि से जो कुछ भी मात्रा के रुप में हो पाता है, वही अधिकाधिक होना स्वाभाविक है । इस प्रकार विवाहोत्सव समय में आडम्बर के लिये किये जाने वाले व्यय अपने-आप संयम होता है । सार्थक कार्यो में

सदुपयोगी विधि से प्रयोजित हो पाता है । अतएव मानव परंपरा में विवाहोत्सव समय में लेन-देन की प्रतिज्ञा-प्रतिबद्धता की आवश्यकता नहीं है।

मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा से भी इस बात की कल्पना किया जा सकता है कि स्वास्थ्य इसका एक आयाम होने के कारण, दूसरा हर गति मार्ग यान-वाहनों के प्रति जन जागरण पर्याप्त रहना स्वाभाविक है । इन आधारों पर यही परिणाम अपेक्षित है कि दुर्घटनाएँ न्यनतम होगी । अल्पायु और मध्यायु में शरीर विरचना घटना न्यूनतम होगी । यह अपेक्षित रहते हुए भी कोई ऐसी घटना घटित हो जाए उस समय क्या किया जाय ? इसका सहज उत्तर है जिस आयु-सीमा के पुरुष का वियोग हो गया हो अथवा स्त्री का वियोग हो गया हो ऐसी स्थिति में तीन वर्ष के अन्तराल में आयु वर्ग को पहचानते हुए एक स्त्री को एक पुरुष की आवश्यकता और एक पुरूष को एक स्त्री की आवश्यकता रूपी मानसिकता और प्रवृत्ति को पहचानते हुए उनके अभिभावक, प्रौढ़-आचार्य, मित्र, भाई-बहन, स्थानीय व्यवस्था के कर्णधारों का प्रयास संयोजन विधियों से पुन: विवाह संबंध को स्थापित कर लेना मानव परंपरा के लिए उचित होगा ।

वकतव्य :- मानवीयतापूर्ण अर्थात् मानव चेतना सम्पन्न मानव परंपरा में समानाधिकार सम्पन्न दाम्पत्य संबंध में सम्बंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति और उसकी निरंतरता स्वाभाविक

है । अतएव इसमें मतभेद का आधार ही नहीं रह गया ।

स्वधन :- प्रतिफल, पारितोष और पुरस्कार से प्राप्त धन ।

प्रतिफल रुपी स्वधन श्रम नियोजन और सेवा के प्रतिफल के रूप में देखा गया । श्रम नियोजन की नित्य संभावना और स्वरुप को सामान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा सम्बंधी वस्तुओं को पाने की विधि से किया गया कुशलता, निपुणता, मानसिकता और विचार सहित किया गया हस्तलाघव कार्यकलाप । परस्पर सेवा का तात्पर्य यही है बिगड़े हुए वस्तु, यंत्रो मानव तथा जीव शरीरों को सुधारना । इस विधि से श्रम नियोजन और सेवा दोनो ही स्पष्ट है । इन क्रिया कलाप के प्रतिफल में सामान्य आकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुएं उपलब्ध होना ही सम्पूर्ण प्रतिफल कार्यकलाप है ।

तथ्य :- मानवीयतापूर्ण विधि से अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का होना प्रधान लक्ष्य है । इसी विधि में मौलिक अधिकार और इसी क्रम में मौलिक अधिकार का स्पष्टीकरण एक दूसरे को इंगित होता है, स्वीकृत होता है, जाँचने की विधि स्वयं स्फूर्त होता है । इसी क्रम में स्वायत्त मानव के वैभवों का परीक्षण जैसा- (1) स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने का अधिकार, प्रक्रिया और प्रमाण, (2) प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलनाधिकार प्रक्रिया और प्रमाण और (3) व्यवहार में सामाजिक एवं

व्यवसाय में स्वावलंबनाधिकार, प्रक्रिया और प्रमाण एक दूसरे को समझ में आता है । समझ में आने का तात्पर्य जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह करने से है । ऐसे मनुष्य ही परिवार मानव और व्यवस्था मानव के रुप में प्रमाणित होना सहज है । यही सम्पूर्ण स्वत्व स्वतंत्रता और अधिकारों का वैभव और विस्तार है । इस प्रकार कर्तव्य दायित्व ही समझदारी, ईमानदारी, भागीदारी के रूप में अधिकार है ।

इससे यह स्पष्ट हो गया है कि हर मनुष्य चाहे नर हो चाहे नारी हो, स्वस्थ रहने के मापदण्ड अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व क्रम में स्वायत्त मानव के रुप में स्पष्ट किया जा चुका है । जिनमें ही मानवत्व रुपी स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार को स्वयं स्फूर्त विधि से प्रमाणित होना पाया गया है । ऐसा स्वायत्त मानव स्वस्थ मानव परिवार परंपरा में, व्यवहार परंपरा में, उत्पादन परंपरा में, विनिमय परंपरा में, स्वास्थ्य संयम परंपरा में, मानवीयता पूर्ण शिक्षा-संस्कार परंपरा में और न्याय सुरक्षा परंपरा में भागीदारी को निर्वाह करना ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है । यह समझदार परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विधि से समाज रचना परिवार से ग्राम परिवार, ग्राम परिवार से विश्व परिवार तक और ग्राम स्वराज्य सभा से विश्व परिवार सभा तक इन सभी आयामों में भागीदारी का सूत्र, व्याख्या अग्रिम अध्यायों में स्पष्ट हो जाएगी ।

सेवा :- उत्पादन कार्य में भागीदारी ही श्रम नियोजन

का प्रधान अवसर, संभावना व आवश्यकता है क्योंकि परिवार सहज आवश्यकता, शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति के अर्थ में उत्पादन का प्रयोजन स्पष्ट होता है । इनमें आहार, आवास, अलंकार और दूरदर्शन, दूरश्रवण और दूरगमन संबंधी वस्तु व उपकरण गण्य हैं । आवास, अलंकार और दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन संबंधी उपकरणों के सम्बंध में स्वाभाविक रुप में ही मतभेद विहीन होना पाया जाता है । जहां तक आहार संबंधी बात है शाकाहार मांसाहार भेद से पूर्वावर्ती समय काल युगों से अभ्यस्त होना पाया गया । इस मुद्दे पर यह देखा गया है मानवीयतापूर्ण समझदारी और शिष्ठता के योगफल में जीने की कला प्रादुर्भूत होता ही है । जिसमें से एक आयाम आहार प्रणाली एवं वस्तुओं का चयन है ।

मानव परंपरा में सह-अस्तित्व एक नित्य प्रभावी सूत्र है जिसके आधार पर अभयता (सकारात्मक रुप में वर्तमान में विश्वास) जिसका गवाही परिवार व्यवस्था में जीना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करना है । इस प्रकार जीने की कला और शैली में हिंसा विधि की आवश्यकता सर्वथा शून्य होना पाया जाता है । हिंसा-अहिंसा की निर्धारण रेखा जीवावस्था और प्राणावस्था के बीच में है । प्राणावस्था की रचनाएं रासायनिक-भौतिक स्वरुप में होते हुए उसका उपयोग-सदुपयोग, संतुलन के अर्थ में नैसर्गिक रुप में करता हुआ देखने को मिलता है । ज्ञानावस्था का मानव जीवावस्था से मांस प्राप्त करना कुछ समुदायों में वैध माना है कुछ समुदाय इसे अवैध

मानते रहे हैं । इसका निराकरण मानवीयतापूर्ण मानसिकता से स्वयं स्फूर्त होता है कि :-

(1) जीव एवं मनुष्य शरीर भी रासायनिक-भौतिक द्रव्यों से रचित हुआ है । इनमें निहित द्रव्य प्राणावस्था के रासायनिक भौतिक द्रव्यों के समान ही है । इन्हीं तर्क के साथ मांसाहर की वकालत हुआ है । पूर्ववर्ती आदतें जीवों के जीवनी क्रम विधि में दिखाई पड़ने वाली मांसाहारी और शाकाहारी पशुओं से ग्रहित हुई है । इस प्रकार मानव समुदाय में आदतों के रुप में शुमार है ।

(2) प्रत्येक जीव शरीर, का संचालन एक जीवन ही करता है । जीवन का स्वत्व रुपी शरीर को बल और क्रूरतापूर्वक भक्षण कर लेने के क्रियाकलाप को मांसाहारी प्रणाली के रुप में देखा गया है । जीवन स्वत्व के रुप में मनुष्य का शरीर भी है । सप्त धातुओं से रचित मेधस युक्त शरीर को जीवन संचालित करता ही है इसलिये जीवावस्था और ज्ञानावस्था प्रतिष्ठित है । ज्ञानावस्था के मानव शरीर रचना परंपरा में समृद्धिपूर्ण मेधस रचना प्रमाणित हो चुकी है । इसी कारणवश मनुष्य अपने दृष्टा पद प्रतिष्ठा सहज रुप में ज्ञानावस्था, जीवावस्था, प्राणावस्था और पदार्थावस्था का अध्ययन करता है, किया है, इसी के प्रमाण में हिंसा और अहिंसा के विभाजन रेखा का दृष्टा भी मानव ही है ।

इसका तात्पर्य यही हुआ कि प्राणावस्था के उपरान्त जीवावस्था और स्वेदज संसार सब मांसाहार या मांसाहार के तुल्य में गण्य हो जाता है । यद्यपि स्वदेज संसार की वस्तुयें माँस, वनस्पति नहीं होते हुए भी उसका सह-अस्तित्व संयोजन विधि से सार्थक होना देखा गया है।

मांसाहार विधि से चला हुआ ज्ञानावस्था की इकाई मनुष्य के लिए हिंसक-घातक होना देखा गया है । उसी के साथ यह भी देखा गया कि शाकाहारी भी हिंसक घातक होना देखा गया । इससे बहुत स्पष्ट है केवल आहार विधि ही मानवीयता सहज सम्पूर्णता नहीं है । आहार एक आयाम है । इसके पहले यह भी स्पष्ट हो चुकी है ज्ञानावस्था की इकाई समझने के उपरान्त ही सम्पूर्ण कार्य व्यवहार विन्यास करने योग्य है और बहुआयामी अभिव्यक्ति है । इसलिये यह इस विश्लेषण से स्पष्ट हो चुकी है कि चाहे शाकाहारी हो, चाहे मांसाहारी हो, पशुमानव, राक्षसमानव के अर्हता में दोनों प्रकार की आदतें समान दिखाई पड़ती है वहीं मानवीयतापूर्ण मानव के रुप में जीने की कला के अंगभूत आहार पद्धत्ति चयन करने के क्रम में मनुष्य शरीर रचना शाकाहारी पद्धत्ति के योग्य बनी है, इसके विपरीत कुछ भी सोचना, भ्रमित मानस होना स्पष्ट हो चुकी है।

जितने भी शाकाहारी वस्तुएं है इसमें मनुष्य का श्रम नियोजन अति अनिवार्य रहता ही है । श्रम नियोजन का प्रतिफल होता ही है । शाकाहार संबंधी वस्तुओं को हम उपयोग

करने पर न करने पर दोनों ही स्थितियों में धरती में ही उर्वरक प्रयोजन में प्रयोजित होता है, इसलिये इसमें आवर्तनशीलता व्याख्यायित है । शाकाहारी वस्तुओं के साथ मनुष्य का निपुणता, कुशलता का संयोजन प्रयोजन के रुप में प्रमाणित होती है । शाकाहारी विधि से मानव का शरीर पुष्टि, संतुलन एवं धरती का उर्वरक संतुलन का एक सूत्रता बन पाती है । इसी क्रम में मानव सह-अस्तित्व वैभव प्रतिष्ठा पाने का सूत्र आहार पद्धत्तिपूर्वक भी प्रमाणित होता है ।

मांसाहारी प्रणाली-प्रकिया से इस धरती पर ज्ञानावस्था के मानव परंपरा में जितने भी संतान है और रहेंगे और रहे हैं इनमें से कोई ऐसा इकाई अर्थात एक मनुष्य ऐसा नहीं मिलेगा जो हिंसा - अहिंसा के रेखा का प्रमाण प्रस्तुत किया हो । यह मानव कुल का सौभाग्य है दुसरा भाषा में ज्ञानावस्था का सौभाग्य है कि जीवन ज्ञान से स्वयं ही दृष्टा पद में होने का सत्य स्वीकारता है, अस्तित्व दर्शन से सह-अस्तित्व को पूर्णतया स्वीकारता है । इस विधि से जीवन का भी दृष्टा-ज्ञाता मानव ही है ओर अस्तित्व में दृष्टा ज्ञाता मानव ही है । यह प्रत्येक व्यक्ति में अध्ययनपूर्वक स्वीकृति अवधारणा और अनुभव होने की व्यवस्था है अनुभव मूलक विधि से प्रत्येक व्यक्ति के प्रमाणित होने की व्यवस्था है । यह भी आवर्तनशीलता है । इसी विधि से अनुभव गामी और अनुभव मूलक विधि से प्रत्येक आयाम, कोण दिशा परिप्रेक्ष्य में सर्वकाल एवं सर्वदेश में समाधान समीकृत होता ही रहता है । इसे भले प्रकार से देखा

गयाहै । अतएव मानवीयतापूर्ण मानव, देवमानव व दिव्यमानव ही हिंसा-अहिंसा के विभाजन रेखा का दृष्टा होना स्वाभाविक है । मानवीयतापूर्ण मानव होने के सत्यापन सहित ही समाधान की ओर हर मनुष्य का गति होना स्वाभाविक है । अतएव आहार, प्रणाली, पद्धत्ति को अपनाने का आधार मानवीयतापूर्ण मानव परंपरा में से के लिए पशुमानव, राक्षस मानव का प्रवृत्ति आधार नहीं हो पाती है । केवल मानवीयतापूर्ण मानव ही स्पष्टतया आधार हो पाता है ।

मानवीयतापूर्ण नजरिये से सम्पूर्ण प्रकार के मांसाहार, हिंसा के सूत्र से सूत्रित हो जाता है । फलस्वरुप मानव मानव के साथ भी हिंसा, द्रोह, विद्रोह, शोषण में लिप्त होना विगत के इतिहास के अनुसार देखा गया है । इस 20वीं शताब्दी के दसवें दशक तक भी इसी प्रकार की गवाहियाँ देखा गया । समझदारी पूर्वक पता चलता है कि शाकाहारी पशु ओठ से पानी पीते हैं तथा मांसाहारी पशु जीभ से । इन्हीं के अनुसार दोनों में भिन्न-भिन्न प्रकार के दांत, नाखून बने रहते हैं साथ में यह भी स्पष्ट हो चुका है कि मांसाहारी पशुओं की आँते छोटी और शाकाहारी पशुओं की आँते लम्बी होती है ।

शाकाहार सदा ही आवर्तनशीलता, ऊर्जा संतुलन, उर्वरक कार्यों में गुणवत्ता के आधार पर सूत्रित रहता है । कृषि कार्यों के आधार पर पशुपालन, पशुपालन के आधार पर कृषि कार्य में पूरकता स्वभाविक रुप में देखी गई है । इसी के साथ-साथ मानवकृत वातावरण का संतुलन, नैसर्गिक संतुलन में भागदारी

भी सह-अस्तित्व सहज कार्यकलापों का एक अविभाज्य वैभव रहा है । ये सब पूरक विधि से ही प्रमाणित हो पाता है । हिंसा, शोषण और दोहन विधि से पूरकता, आवर्तनशीलता प्रमाणित नहीं हो पायी है । अतएव मानवीयतापूर्ण परंपरा स्वायत्तता पूरकता व आवर्तनशीलता का संतुलित संगीत विधि से ही समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को प्रमणित करता है । यह सर्वमानव में स्वीकृत है । इस प्रकार हम मानव प्रतिफल के रुप में कृषि, पशुपालन, ग्राम शिल्प, हस्तकला, कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग और लघु-गुरु उद्योग पूर्वक सामान्यकांक्षा एवं महत्वाकांक्षा सम्बंधी वस्तुओं को श्रमनियोजन और सेवापूर्वक प्रतिफल के रुप में पा सकते है ।

स्वधन का दूसरा भाग पारितोषिक - इसकी परिभाषा ही है प्रसन्नतापूर्वक, प्रसन्नताा के लिये प्रदत्त वस्तुएं । ये प्रधानत: उत्सवों के अवसर पर प्रदान किया जाना मानवीयतापूर्ण मानस के लिये एक आवश्यकता है ही । इस प्रकार प्राप्त धन भी स्वधन में गण्य होता है ।

तीसरे प्रकार से स्वधन, पुरस्कार के रुप में प्राप्तधन । मानवीयतापूर्ण परंपरा में श्रेष्ठता का सम्मान होना स्वाभाविक है । श्रेष्ठता का मूल्यांकन मानवीयतापूर्ण परंपरा में व्यवस्था में भागीदारी, स्वायत्त मानव परिवार मानव और समग्र व्यवस्था में भागीदारी उसकी गति और श्रेष्ठता पुरस्कृत होना स्वाभाविक है । इसी के साथ-साथ स्वास्थ्य संयम कार्यों में

श्रेष्ठता, उत्पादन कार्यों में श्रेष्ठता, विनिमय कार्यों में श्रेष्ठता, मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार कार्यों में श्रेष्ठता का मूल्यांकन और पुरस्कार मानव परंपरा में सहज है । इन किसी भी विधाओं का मूल्यांकन और पुरस्कार मानव परंपरा में सहज है । इन किसी भी विधाओं में श्रेष्ठता का सम्मान किसी स्तरीय परिवार सभा में जैसे ग्राम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक किसी स्तरीय परिवार सभा में श्रेष्ठ व्यक्ति का सम्मान किया जाना मानव परंपरा का ही सम्मान है । इस विधि से प्राप्त वस्तु स्वधन में गण्य होता है ।

मानवीयतापूर्ण चरित्र और उसकी गति दयापूर्ण कार्य व्यवहार में होना पाया जाता है । सम्पूर्ण श्रम शक्ति का नियोजन पूरक विधि से अर्थात जिस विधा से मनुष्य का श्रम नियोजन होता है अथवा जिस वस्तु पर मनुष्य का श्रम नियोजन होता है उसका संरक्षण होना दयापूर्ण कार्य का तात्पर्य है । हर उत्पादन में सह-अस्तित्व विधि से वस्तु व द्रव्यों का सुरक्षापूर्वक ही प्रतिफल की प्राप्ति और संतुलन का प्रमाण स्वाभाविक रूप में प्रमाणित होता है । दूसरी विधा में मानव-मानव के साथ व्यवहार करता ही है । व्यवहार क्रम में तन-मन-धन रूपी अर्थ का सदुपयोग करना किसी का पोषण, संरक्षण, समाज गति के रूप में सदुपयोग होना प्रमाणित होता है । इस क्रम में **यही मानव के साथ दयापूर्ण व्यवहार का तात्पर्य है। यही जीने देकर जीने का प्रमाण है ।**

नैतिकता – नैतिकता अपने आप में धर्म और राज्य नैतिकता के रूप में देखा जाता है । धर्म शब्द व्यवस्था का मूलवाची है । व्यवस्था की आवश्यकता, अनिवार्यता मानव में, से, के लिये है । मानव अपने में इकाई है इसलिये अखण्ड समाज के अर्थ में व्यवस्था; सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में अखण्ड समाज, संतुलित होता है । सम्पूर्ण नैतिकता का सहज अभिव्यंजना (अभ्युदय के लिये व्यंजित होना) सर्व स्वीकृति के रूप में होता है । **समाज की परिभाषा पूर्णता के अर्थ में, पूर्णता के लिये, पूर्णता में, पूर्णता से निष्ठा और उसकी निरंतरता से है । राज्य का तात्पर्य वैभव से है।** मानव सहज वैभव समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व ही है । अस्तु धर्म अपने मूल रूप में सर्वतोमुखी समाधान है । राज्य अपने मूल रूप में समाधान सहित समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व और उसकी निरन्तरता है । इस प्रकार राज्य और धर्म का मूलरूप प्रत्येक व्यक्ति को समझ में आता है। इन्हीं के प्रतिपादन में नीति को पहचाना जाता है । धर्म और राज्य का प्रतिपादन मनुष्य ही करता है । ऐसा प्रतिपादन करने का समानाधिकार हर नर-नारी में होना पाया जाता है । इसी क्रम में धर्म और राज्य नीति का स्वरूप स्पष्ट होता है । इन्हीं के साथ नियति क्रम सूत्र भी सूत्रित रहता है । नियति अपने स्वरूप में विकासक्रम, विकास जागृतिक्रम, जागृति के रूप में दृष्टव्य है । अस्तु, राज्यनीति राज्य का गति रूप होना और धर्मनीति धर्म का गति रूप होना स्वाभाविक है । इसलिये प्रत्येक नर-नारी में

अपने ही धारक-वाहकता के रूप में तन, मन (जीवन बल शक्ति) धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा रूपी कार्यकलाप है । इसी क्रम में हर नर-नारी में बल, बुद्धि, रूप, पद, धन धारक-वाहकता के रूप में रहता ही है । यह क्रम से रूप, बल, धन, पद, बुद्धि के रूप में दृष्टव्य है । इसका सदुपयोग - सुरक्षा राज्य और धर्मनीति है । इसका मूल लक्ष्य भी समाधान, समृद्धि, अभय सह-अस्तित्व ही है । इन सार्वभौम अर्थ में सदुपयोग - सुरक्षा के फलस्वरूप सुख, शांति, संतोष, आनन्द सहज अनुभव हर नर-नारी में सहज सुलभ होता है । इतना ही नहीं इसकी समीचीनता नित्य वर्तमान है । नैतिकता भी सुखी होने के लिये प्रयोजित होता है । इनका सदुपयोग सुरक्षा ही प्रयोजनों को प्रमाणित कर देताा है । जैसे रूप के साथ सच्चरित्रता (शरीर का सदुपयोग विधि) । फलस्वरूप अपने में विश्वास और सुख का अनुभव करना पाया जाता है । वर्तमान में विश्वास होना ही स्वयं व्यवस्था में भागीदारी का द्योतक है । दूसरा प्रयोजन रूप के साथ सच्चरित्रता - सुशीलता अपने आप में व्यवस्था तंत्र का आधार भी है, सूत्र भी है । इसलिये रूप के साथ सच्चरित्रतावश सुखी होना बनता है ।

बल के साथ दया – जीने देना और जीना ही दया है । शरीर पुष्टि, सुदृढ़ता, सुगठन के साथ शरीर के द्वारा बल को जीने देने के क्रम में नियोजित करने की स्थिति में रूप के साथ सच्चरित्रता और सुशीलता का भी रक्षा होते हुए सुगम रूप में ही जीने देने के उपरान्त जीने में संगीत अपने आप देखने को

मिलता है । जिससे सुखी होना स्वाभाविक है । प्रत्येक नर-नारी बल के सदुपयोग से सुखी होने की विधि जीने देकर जीने के क्रम में ही देखा गया है ।

धन के साथ उदारता - उदारता का उत्तरोत्तर जागृति की ओर तन, मन, धन रूपी अर्थ को नियोजित करना ही है । हर पीढ़ी, अग्रिम पीढ़ी को अपने से श्रेष्ठ होने का कामना करता ही है । हर स्थिति, हर गति, हर देशकाल में मानव अपने श्रेष्ठता को जागृति क्रम, जागृति, जागृतिपूर्णता और उसकी निरंतरता विधि से ही प्रमाणित कर जाता है । जागृति और जागृतिपूर्णता स्वायत्त मानवीयता सहज पारंगत प्रमाण ही होना पाया जाता है । जागृति क्रम स्वायत्त मानव पद प्रतिष्ठा पर्यन्त निश्चित है । इस क्रम में परंपरा जागृत रहना एक अनिवार्य स्थिति रहती है । तभी मानवीयता पूर्ण परंपरा का सार्थकता प्रमाणित होती है ।

अतएव जीने देकर जीना जागृति के उपरान्त हर व्यक्ति के लिये सहज प्रक्रिया है । तन, मन, धन रूपी अर्थ शरीर पोषण, संरक्षण, समाजगति व्यवस्था सहज स्वीकृति और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने के क्रियाकलापों में अर्थ सम्पूर्णतया सार्थक होना, सदुपयोग होना होता है । इसी क्रियाकलापों में नियोजित अर्थ प्रक्रिया का उदारता नाम है ।

उदारता अपने में जागृति सहजता की ओर इंगित क्रिया में उन्मुख रहता है । उदात्तीकरण स्वाभाविक रूप में जागृति के

जिस बिन्दु में जो रहता है उससे आगे के बिन्दुओं की ओर गतित करना/हो जाना ही उदात्तीकरण का तात्पर्य है । यह पूरकता विधि से ही होना पाया जाता है । मानव सहज सदुपयोग विधि स्वयं में उदारता है । यह सुख का स्रोत है । उदारतापूर्वक मानव सुखी होना देखा गया है ।

पद के साथ न्याय - न्यायापेक्षा सर्वमानव में है ही । न्याय प्रदायी क्षमता सहित धारक-वाहकता ही न्याय प्रदायिता को प्रमाणित करता है । न्याय प्रदायिता मूलतः एक समझदारी का ही स्वरूप है यही जागृति है । ऐसा समझदारी में सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन और उभय तृप्ति का प्रमाण समायी रहती है । ऐसी समझदारी सहज विधि से हर व्यक्ति एक-दूसरे के साथ न्याय प्रदायिता को प्रमाणों के साथ संतुष्टि बिन्दु में पहुँचना सहज हो जाता है । इसीलिये न्याय प्रदायिता का नाम है । ऐसे न्याय प्रदायिता के रोशनी में हर व्यक्ति में प्रमाण रूपी तृप्ति बिन्दु पाने की उत्कंठा रहती है । इसलिये हर व्यक्ति न्याय प्रदायिता के साथ पूरक होना देखा गया। परस्पर पूरकता के साथ उदात्तीकरण समीचीन होना, फलस्वरूप प्रमाणरूपी तृप्ति बिन्दु पर पहुँचना कम से कम इस तृप्ति बिन्दु दो व्यक्ति में तृप्ति सहज साक्ष्य सत्यापित होता है । यही उभयतृप्ति का साक्ष्य है । इस प्रकार सुख और सुख की निरंतरता मानव में, से, के लिये समीचीन है ।

बुद्धि के साथ विवेक - अनुभव बोधपूर्ण स्थिति में ही बुद्धि का सदुपयोग होना पाया जाता है । जीवन का दृष्टा

और अस्तित्व में, से, के लिये दृष्टा जागृतिपूर्ण जीवन ही होना पाया जाता है । जागृति पूर्णता अपने में दूसरे विधि से प्रत्येक मनुष्य में जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान विधि से प्रमाणित, ख्यात और प्रख्यात हो जाता है । ऐसी जागृति सहज विधि से जितने भी जीवन शक्तियों को, बलों को शरीर के द्वारा प्रयोग करते हैं उन सभी विधा और प्रक्रिया से निश्चित प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। मानव परम्परा में अखण्ड समाज - सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होना ही परम प्रयोजन है । इस प्रयोजन और इसकी अक्षुण्णता क्रम में भागीदारी को निर्वाह करना ही विवेकपूर्ण विचार कार्य व्यवहार है । विवेचना कार्य ही विवेक है । न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य ही विवेचना का स्वरूप है ।

मानव पंरपरा सदा-सदा ही सुखापेक्षा में पीढ़ी से पीढ़ी में गुजरता आया है । ऐसी सुख सर्वसुलभ होने का क्रम ही सार्वभौम व्यवस्था, विधि और अखण्ड समाज रचना विधि, इन्हीं दो मुद्दे के आधार पर इसकी अक्षुण्णता को पहचाना गया है । ऐसी अक्षुण्णता क्रम में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर मनुष्य सुखी रहता है । इसी कारणवश बुद्धि से सुखी होने का प्रयास भी और सफलता भी मानव सहज अभीष्ट है । अतएव बुद्धि की अनेक आयामों में नियोजित होना - मानव सहज वैभव है । इस क्रम में सार्वभौम प्रयोजन सिद्ध हो जाना ही सफलता है । अस्तु, बुद्धि को विवेकपूर्वक नियोजित, प्रयोजित करने की विधि से हर व्यक्ति, हर देशकाल में सुखी होना सहज

समीचीन है ।

सम्बन्ध-मूल्य-मूल्यांकन :- सम्बन्ध शब्द का परिभाषा स्वयं पूर्णता के अर्थ में अनुबन्ध है । पूर्णता सदा ही अपने में निरंतरता को ध्वनित करता है । निरंतरता ही दूसरे भाषा में अक्षुण्णता है । सदा-सदा से ही मानव अपने परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहता है ।

जागृत मानव संबंधों में निहित मूल्य निरंतर निर्वाह होना चाहता है। समझदारी पूर्वक मूल्यांकन में उभयतृप्ति सदा-सदा ही रहता है । यह स्वायत्त मानवपूर्वक परिवार मानव सहज विधि से सहज होना पाया जाता है । सदा-सदा के लिये परिवार में सम्बन्ध मूल्य-मूल्यांकन-उभयतृप्ति होती है । परिवार की परिभाषा भी है परस्पर सम्बन्धों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, मूल्यांकन करते हैं और उभयतृप्ति पाते हैं । यही परिवार का आधार बिन्दु है। अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का सूत्रपात ''परिवार मानव'' पद ही है । **परिवार व्यवस्था सार्वभौम व्यवस्था के लिये सूत्र है ।** परिवार रचना स्वयं अखण्ड समाज रचना का सूत्र है । जागृत परिवार मानव परिवार सहज आवश्यकता के लिये समझदारी को अपनाया उत्पादन कार्य के लिये एक-दूसरे के पूरक होना पाया जाता है । इस विधि से ऐसे हर परिवार में समाधान, समृद्धि प्रमाणित होती है, अभय सह-अस्तित्व का सूत्र समायी रहती है । इसे प्रमाणित करने की आवश्यकता क्रम में अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का

ताना-बाना, इसलिये बना है कि समाज ही व्यवस्था और व्यवस्था ही समाज को संतुलित बनाये रखता है। परिवार क्रम विधि से समाज रचना, सभा क्रम में व्यवस्था गति स्पष्ट हो जाती है। जैसे परिवार ही स्वायत्त मानवों का संयुक्त अभिव्यक्ति होना स्पष्ट किया जा चुका है। हर नर-नारी स्वायत्त पद में ही परिवार मानव अर्हता, स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार को प्रणाणित करते हैं।

स्वायत्त मानव पंरपरा में सभा क्रम, परिवार क्रम, 10-10 की संख्या में सहज ही पहचाना जाता है। सर्वमानव हर नर-नारी स्वायत्त मानव रूप में अपने प्रतिष्ठा को जानने-मानने, पहचानने-निर्वाह करने का सौभाग्य मानवीयतापूर्ण शिक्षा परंपरा में, से नित्य गति के रूप में समीचीन रहता है। सह-अस्तित्व विधि से व्यवस्था को, जागृति विधि से परिवार को पहचानना, निर्वाह करना मानव सहज आवश्यकता व वैभव है। अस्तित्व सहज रूप में ही सह-अस्तित्व वर्तमान है। यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था, इसी धरती पर नियति क्रम विधि से प्रमाणित करता है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि जागृति का धारक-वाहकता प्रत्येक मनुष्य का जागृति सहज स्वत्व है; और सह-अस्तित्व सहज वैभव है। इस प्रकार अस्तित्व सहज व्यवस्था को जानना-मानना-पहचानना, निर्वाह करना ज्ञानावस्था सहज जागृति मानव से ही प्रमाणित होती है। जागृति सहज विधि से ही समाज रचना स्वाभाविक होता है अथवा होने वाला स्वरूप है। होना वर्तमान ही है। वर्तमान की

निरंतरता है। इसलिये व्यवस्था एवं समाज की निरंतरता है। सभा क्रम में निर्वाचन विधि से सम्पन्न होता है। परिवार रचना अर्थात अखण्ड समाज रचना विधि सम्बन्धों की पहचान विधि से सम्पन्न हो जाता है। यथा एक परिवार में दस स्वायत्त मानवों के सहभागिता को पहचाना जाता है। जो परस्परता में सम्बन्ध मूल्य-मूल्यांकन उभयतृप्ति करते रहते हैं, परिवारगत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होते हैं यह सर्ववांछित स्वरूप स्वायत्त मानव का जागृत सहज वैभव के रूप में पाया जाता है। सह-अस्तित्व सहज प्रमाण के रूप में एक से अधिक व्यक्तियों का होना भी प्रमाणित होता है। इसीलिये दस व्यक्तियों का होना संख्या के रूप में बतायी जाती है, घटना के रूप में यह संख्या ज्यादा कम हो सकता है। क्योंकि मानव संख्या के अर्थ में सीमित नहीं है किंवा कोई भी वस्तु संख्या के रूप में सीमित नहीं है क्योंकि हरेक - एक रूप, गुण, स्वभाव, धर्म, सहज वैभव है, अविभाज्य है। **गणित केवल रूप सीमावर्ती गणना है। आंशिक रूप में गुण (गति) का भी गणना सम्पन्न होता है। धर्म, स्वभाव और मध्यस्थ गुण (गति) का गणना संभव ही नहीं है**। अतएव गणित विधि के साथ गुण और कारण विधि से मानव अपने भाषा को इनके अविभाज्य विधि से समृद्ध बनाने की आवश्यकता है। इन तीनों विधि से ही हर वस्तु को, उन-उनके सम्पूर्णता को समझना सहज है। हर वस्तु अपने सम्पूर्णता में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म का वैभव है। ऐसे सम्पूर्णता का महिमा ही है प्रत्येक अपने

'त्व' सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है ।

सम्पूर्ण व्यवस्था परस्परता में ही वर्तमान और वैभव है । जैसे पदार्थावस्था अपने में सम्पूर्ण और व्यवस्था है, इनमें अनेक अंतर-प्रजातियाँ भी है । वह भी अपने-अपने स्वरूप में सम्पूर्ण और व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करते हैं । ऐसे भौतिक पदार्थ ही अपने में समृद्ध होने के साक्ष्य में रासायनिक प्रवृत्तियों में दिखाई पड़ते हैं अर्थात रासायनिक द्रव्यों के रूप में उदात्तीकृत होते हैं । फलस्वरूप प्राणावस्था की सम्पूर्ण रचनाएँ बीजानुषंगीय विधि से परंपरा के रूप में स्थापित हो जाते हैं। यह हर व्यक्ति को विदित है । पदार्थावस्था अपने विविधता को परिणाम के आधार पर तात्विक द्रव्यों के रूप में दिखाई पड़ते हैं । तीसरे स्थिति में जीवावस्था का शरीर रचना भी प्राण-कोषाओं में ही रचित-विरचित होते हैं । ऐसे रचनाक्रम वंशानुषंगीय विधि से वैभवित रहना दिखाई पड़ती है । जीवावस्था में समृद्ध मेधस युक्त शरीरों को जीवन संचालित करता है । समृद्ध मेधस पर्यन्त जितने भी रचनाएँ हैं वे सब स्वदेजों में गण्य हो जाते हैं। ये सब विरचित होकर हर सप्राणकोषा, निष्प्राण कोषा में परिवर्तित होकर बीज रूप में स्थित रहते हैं और यही निष्प्राण कोषा बीज; ऋतु-संयोग प्रणाली से सप्राणित हो जाते हैं । इस प्रकार स्वदेज संसार रचनाओं में हर प्राण कोषा ही निष्प्राण कोषा के रूप में बीज रूप में रह जाते हैं । यही रचनाएँ अण्डज में परिवर्तित होकर पिण्डज रचना तक रचना क्रम को विकसित करते हैं । इसी में सम्पूर्ण सप्त धातुओं का

नियोजन संयोजन अनुपाती विधि से समाहित रहना पाया जाता है । सम्पूर्ण रसायन द्रव्य जो सप्त धातुओं के रूप में पहचाना जाता है ये सब मूलतः भौतिक वस्तु और परमाणु ही हैं क्योंकि परमाणु ही मूलतः व्यवस्था का आधार है ।

सप्त धातुओं से रचित रचनाओं में समृद्ध मेधस और समृद्धिपूर्ण मेधस पर्यन्त रचना सम्बन्ध शरीर जो कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय उसके लिए आवश्यकीय अंग अवयव, आशय रसादितंत्र विधि सम्पन्न रचनाएँ गर्भाशय में सम्पन्न होता है । ये सर्वविदित तथ्य है । शुक्र सूत्र पुरूष शरीर में, डिम्बसूत्र स्त्री शरीर में अवतरित होता है अथवा रचित होता है । इन दोनों का मूल तत्व पुष्टि तत्व रचना तत्व है । पुष्टि तत्व मूलतः रासायनिक द्रव्य ही है । इस विधि से मनुष्य शरीर भी रचित होता है ।

जीव शरीरों को जीवन, शरीरों के वंशानुगत विधि स्वीकार सहित संचालित करता है । जीव शरीरों को संचालित करता हुआ जीवन का लक्ष्य इन्द्रिय सन्निकर्ष ही है । जबकि मानव का लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है । यही व्यवस्था सूत्र और समाज सूत्र का उदगमता, धारक, वाहक होने का प्रमाण है । इसकी समीचीनता सर्वमानव के लिये समान रूप में वर्तमान है । इस लक्ष्य की ओर प्रवेश विधि कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता के रूप में प्रत्येक मानव संतान में होना पाया जाता है । इसी मौलिक प्रकाशन के आधार पर मानव चिन्तनपूर्वक (न्याय, समाधान, प्रमाणिकतापूर्वक) प्रमाणित

होने का क्रम है ।

कल्पनाशीलता कर्म स्वतंत्रता का प्रयोग हर मानव संतान जन्म समय से ही करता है । मौलिक अधिकार सम्पन्न जागृत मानव परंपरा में अर्पित होता है । इसका साक्ष्य जन्म से ही हर मानव संतान में न्याय की अपेक्षा, सही कार्य व्यवहार करने की इच्छा और सत्यवक्ता होना । कम से कम तीन वर्ष के शिशुओं के अध्ययन से एवं अधिक से अधिक 5 वर्ष के शिशुओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है । इसे हर मानव निरीक्षण, परीक्षण पूर्वक अध्ययन कर सकता है । यही मुख्य बिन्दु है । इस आशयों को अर्थात शिशुकाल में से मुखरित इन आशयों का आपूर्तिकरण ही जागृत मानव परंपरा का वैभव है ।

जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान केन्द्रित मानवीयतापूर्ण शिक्षा प्रणाली, पद्धति, नीतिपूर्वक किये गये अध्ययन अध्यापन कार्य विधि से शिशुकालीन तीनों अपेक्षाओं का भरपाई होता है । जीवन ज्ञान सम्पन्नता से हर मनुष्य में दृष्टापद प्रतिष्ठा में, से, के लिये वर्तमान में विश्वास होता है । फलतः न्यायप्रदायी क्षमता प्रमाणित हो जाती है । अस्तित्व दर्शन की महिमावश सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व में व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी उसकी आवश्यकता और प्रयोजन बोध होता है जिससे सही कार्य व्यवहार करने का अर्हता स्थापित होता है ।

अस्तित्व ही परमसत्य होने का बोध जीवन सहित

अस्तित्व दर्शन के फलस्वरूप परम सत्य बोध होना स्वाभाविक है । इसलिये सत्य बोध सहित सत्य वक्ता का तृप्ति पाना सहज समीचीन है । यही मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार की सारभूत उपलब्धि, जागृति और समीचीनता सहज है । अतएव मानव परंपरा स्वयं जागृत होने की आवश्यकता अनिवार्यता स्पष्ट है ।

परम्परा जागृति का तात्पर्य शिक्षा-संस्कार पंरपरा का मानवीयकरण फलतः परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सर्वसुलभ होने का कार्यक्रम ही अखण्ड समाज का कार्यक्रम है । यही जागृत पंरपरा का स्वरूप है । यह हर नर-नारियों में जीवन सहज रूप में स्वीकृत है । इसलिये इसका आचरण, समझ और विचार समीचीन है ।

मानव परंपरा में ही हर परिवार मानव अपने संतानों को परमज्ञान, परमदर्शन, परम आचरण सम्पन्न बनाने में स्वाभाविक रूप में सार्थक होगा । क्योंकि जागृत मानव हर आयाम, कोण, दिशा परिप्रेक्षों में जागृति सहज कार्यकलापों, आचरणों, विचारों और प्रमाणों को वहन किया करता है। दूसरे भाषा में अभिव्यक्त संप्रेषित और प्रकाशित करता है । ऐसे मौलिक क्षमता का अर्थात जागृतिपूर्ण क्षमता के लिये हर अभिभावक जिम्मेदार, भागीदार रहना ही पाया जाता है ।

जागृत पंरपरा में हर अभिभावक जागृत मानव पद में प्रमाणित रहने के आधार पर ही अपने संतानों में न्याय प्रदायी क्षमता, समाधानपूर्ण कार्य व्यवहार (सही कार्य व्यवहार) करने

की योग्यता, और सत्यबोध सम्पन्न सत्यवक्ता होने की अर्हता को स्थापित करना सहज है ।

जागृत मानव परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी किताब के बोझ से छुटकारा अथवा कम होने की प्रणाली बनेगी क्योंकि जागृतिपूर्ण परंपरा में समझ के करो विधि पूर्णतया प्रभावशील रहता है । इसी के साथ समझ में ''जीने दो जीयो'' वाला सूत्र भी सहज ही चरितार्थ होता है । समझने का मूल स्रोत, पहला स्रोत जिस परिवार में जो शिशु अर्पित रहता वही परिवार सर्वाधिक जिम्मेदार होता है । इस तथ्य पर हम सुस्पष्ट हो चुके हैं कि हर स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है । यही जागृत मानव प्रतिष्ठा है । यह मौलिक अधिकार में गण्य है । ऐसे जागृत परिवार में अर्पित हर संतान के लिये जागृति सहज शिक्षा-संस्कार के लिये हर अभिभावक पर्याप्त होना पाया जाता है । शिशुकाल में आज्ञापालन अनुसरण विधि हर शिशुओं में प्रभावशील रहता है । यही अपने को अर्पित करने का साक्ष्य है । अर्पित स्थिति में हर सम्बोधन, हर प्रदर्शन, हर प्रकाशन अनुकरण योग्य रहता ही है। इसी अवस्था में जागृति क्रम में संयोजित करना ही संस्कार-शिक्षा का तात्पर्य है ।

हर परिवार मानव में जागृति का प्रभाव, जागृति का वैभव मुखरित रहता ही है । इसी आधार पर हर अभिभावक शिशुकाल से ही जागृतिकारी संस्कारों को स्थापित करने में सफल होते ही हैं । यह हर जागृत नर-नारी का कर्तव्य भी है,

दायित्व भी है । इससे यह स्पष्ट है हर मनुष्य अभिभावक पद को पाने से पहले एक अनिवार्यता है, स्वायत्तपूर्ण रहना एक आवश्यकता है और परिवार मानव के रूप में प्रमाणित रहना सर्वोपरि अनिवार्य है ही ।

मौलिक अधिकार का प्रयोग जागृत और जागृतिपूर्ण मानव ही सम्पन्न करता है । इससे यह स्पष्ट हो गई कि मानव संतान जागृति क्रम में होना और हर अभिभावक जागृत परंपरा में भागीदारी का निर्वाह करना एक नैसर्गिक उत्सव है । इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो गया अस्तित्व में मानव ही जागृति और जागृतिपूर्ण परंपरा पूर्वक ही मौलिक अधिकार सम्पन्न वैभव को प्रमाणित करता है । ऐसा जागृत अभिभावक ही अपने संतानों को मानवीयतापूर्ण संस्कार का प्रेरक, दिशादर्शक, सर्वतोमुखी समाधान प्रदायक हो पाते हैं । ऐसे अभिभावक पद और संतान पद उत्सव सहज होना पाया जाता है ।

जागृत परंपरा में ही जनसंख्या नियंत्रण स्वाभाविक रूप में होता है अर्थात जागृत मानव के स्वयं स्फुर्त विधि से नियंत्रित होता है । समाधान समृद्धि, अभय सह-अस्तित्व सहज प्रमाण, परंपरा रूपी मानवीयतापूर्ण परिवार प्रयोजन और आवश्यकता का संतुलन बनाए रखने में सक्षम होता है । जनसंख्या, उसके लिये मानसिकता, आवश्यकता और प्रयोजन के साथ ही संतुलित होना संभव है । जागृति का यही देन है । **सम्पूर्ण आवश्यकताएँ प्रयोजनों की कसौटी में परीक्षित**

प्रमाणित होना ही जागृति का साक्ष्य है। जीवन सहज रूप में जागृति नित्य वर है । वर का तात्पर्य जिसके, बिना सुखी होने का कोई और विकल्प ही नहीं है । इसी क्रम में जीवन जागृतिपूर्ण विधि से ही सुख और उसका निरंतरता उत्सव से उत्सवित रहता है । इसके साक्ष्य में यह भी प्रतिपादित हो चुकी है कि समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व हर परिवार मानव में प्रमाणित रहता ही है । क्योंकि हर परिवार मानव स्वायत्त और जागृत रहना, जागृति परंपरा सहज वैभव और उपलब्धि है । यही नित्य उत्सव का भी आधार है ।

सभी प्रकारों के उत्सवों में मानव का प्रयोजन और उसकी सर्वसुलभता, उसकी विधि प्रक्रिया उसमें प्रमाणिक होने का प्रमाण और उसमें ओतप्रोत परिस्थिति का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन, संवाद, प्रतिपादन, व्याख्या, सूत्र, ऐसे सम्पदा का स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकारों का सत्यापन; यही मुख्यतः उत्सव का अंग अवयव है । यही मानव परंपरा में पावन मानसिक प्रवृत्तियों का भी साक्ष्य है । ह्रास-उल्लास घटनाओं में भी जागृति सहज, उत्कर्ष सहज उत्सव के रूप में देखने को मिलता है ।

स्वास्थ्य संयम विधा में हर स्तरीय परिवार स्वायत्त रहना स्वाभाविक है । जागृत मानव परंपरा में समाधान सूत्र ही प्रधान सूत्र है । दुसरे प्रकार से सर्वतोमुखी समाधान ही स्वायत्तता का सूत्र है । इसी के व्याख्या में समृद्धि और वर्तमान में विश्वास

प्रमाणित होता है । पुनः अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व सूत्र से सूत्रित हो जाता है । इस प्रकार जीवन सहज उत्सव, जीवन सहज वैभव वर्तमान में वैभवित रहता है । जिसकी अक्षुण्णता बना ही रहता है । अक्षुण्णता का तात्पर्य मानव परंपरा में अर्थात पीढ़ी से पीढ़ी में जागृति और उसकी निरंतरता प्रमाणित रहने से होगा ।

सम्बन्धों के साथ ही शिष्टता विधि स्वाभाविक है । सम्बन्धों का सम्बोधन मानव संबंधों के आधार पर ही निश्चित मूल्य और शिष्टता का द्योतक होता है । यह परिवार (अखण्ड समाज) क्रम में और सभा-विधि में जैसे परिवार सभा और विश्व परिवार सभी में भी परस्पर सम्बोधन मानव संबंधों का सम्बोधन विधि से ही शिष्टता का निश्चयन है ।

परिवार विधि में हर सम्बोधन प्रयोजन से लक्षित होना पाया जाता है । जैसा -

और हर प्रयोजन हर व्यक्ति के अपेक्षा सहित सम्बोधन का वस्तु है।

परिवार क्रम में

सम्बोधन	**प्रयोजन**
1. पिता	- संरक्षण
2. माता	- पोषण
3. पति-पत्नी	- यतित्व-सतीत्व

4. पुत्र-पुत्री	- अनुराग
5. स्वामी (साथी)	- दायित्व
6. सेवक (सहयोगी)	- कर्तव्य
7. गुरू	- प्रामाणिक
8. शिष्य	- जिज्ञासु
9. भाई-बहन-मित्र	- जागृति (समाधान-समृद्धि)

सभा क्रम में

सम्बोधन	**प्रयोजन**
सभा में	- जागृति में
भाई-मित्र-बन्धु-बहन	- समानता के अर्थ में

समितियों में सम्बोधन

गुरू-शिष्य	- शिक्षा-संस्कार विधा में
आचार्य-आवेदक	- न्याय-सुरक्षा विधा में
पितामह, पिता-माता, पुत्र-पुत्री	- उत्पादन-कार्य सम्बन्ध
आयु के अनुसार	- विनिमय-कोष सम्बन्ध
सहयोगी - साथी	- स्वास्थ्य-संयम विधा में ।

परिवार विधि विहित सम्बोधन, परिवार विधि का तात्पर्य परिवार सम्बन्ध से है । जैसे एक ही व्यक्ति किसी का माता,

किसी का पुत्र, किसी का बहिन, किसी का पत्नी, किसी का गुरू, किसी का शिष्य, किसी का मित्र, किसी का बंधु सम्बन्धों में पाया जाता है । संबंध की परिभाषा ही पूर्णता के अर्थ में अनुबंध है । अनुबंध का तात्पर्य बोध सहित निष्ठा सहज किसी के प्रति प्रयोजन कार्य और निष्ठा सहित स्वीकृति का सत्यापन ही प्रतिज्ञा होता है । सत्यापन का तात्पर्य सम्बन्ध मूल्य-मूल्यांकन, चरित्र और नैतिकता सहित जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज सह-अस्तित्व को प्रमाणों में अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति का स्वरूप अभ्युदय के अर्थ में होना स्पष्ट है । अभ्युदय स्वयं में सर्वतोमुखी समाधन है जिसका कार्य-व्यवहार रूप अखण्ड समाज-सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी है ।

अखण्ड समाज का अर्थ-जागृत मानव परंपरा में वैर-विहीन परिवार ही है । दूसरी भाषा में समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व पूर्ण परिवार। अभयता अपने मे वर्तमान में, विश्वास ही है । वर्तमान में विश्वास स्वायत्त मानव का स्वत्व, स्वतंत्रता अधिकार में होना पाया गया है । यह स्पष्ट हो चुकी है कि स्वायत्त मानव ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को भले प्रकार से निभाता है ।

परिवार में ही सम्बन्ध और प्रयोजन का अपेक्षा-आशय एवं विश्वास के आधार पर सम्बोधन सम्पन्न होता है । हर प्रयोजन मूल्य, चरित्र, नैतिकता, समाधान, समृद्धि, अभय सह-अस्तित्व सूत्र से सूत्रित रहता ही है। इन्हीं अपेक्षाओं का केन्द्र

प्रयोजनों का स्वरूप आवश्यकताओं का कारण है। इनमें सफल हो जाना ही जागृति का प्रमाण है ।

व्यवस्था सम्बन्ध मूलतः सर्वतोमुखी समाधान मूलक होना पाया जाता है । समाधान का तात्पर्य पूर्णता और उसकी निरंतरता के अर्थ में सम्पूर्ण बोध सहित कार्यप्रणाली में प्रमाणित करने का सामर्थ्य है । यही संप्रेषणा विधि में क्यों, कैसे व कितना रूपी प्रश्नों का उत्तर के रूप में प्रस्तुत होता है । इसी के साथ कहाँ, कब, कैसा यह भी एक प्रश्न वाचिकता क्रम मानव परंपरा में होना देखा जाता है । इसका उत्तर समाधान मूलक विधि से प्रसवित होना, दूसरे भाषा में हर समाधानपूर्ण मानव से इन सभी का उत्तर प्रसवित-प्रवाहित होता है । यही दो प्रकार के प्रश्नोत्तर प्रणाली मानव सहज सम्भाषण का स्रोत है । यह जीवन जागृतिपूर्वक समाधानित होता है । भ्रम पर्यन्त अथवा बंधन पर्यन्त प्रश्न विधि में अथवा उसी क्रम में ज्यादा से ज्यादा वाङ्मय कार्य सम्पन्न करता है । भ्रम विधि में वाङ्मय सदा-सदा ही विपुल होता जाता है क्योंकि प्रश्न का पुर्नप्रश्न ही, प्रतिप्रश्न ही वाङ्मय का आधार बनता है । भ्रम-विधि से प्रत्येक तर्क प्रश्न में ही अन्त होती है इसलिये इसमें कोई निर्देश संदेश स्पष्ट नहीं हो पाती है। जबकि हर संदेश ज्ञान क्रिया, दर्शन क्रिया विधि से समाधान के रूप में प्रमाणित होती है । यही देश, क्रिया और काल विधि से हर निर्देश समाधानित होता है । देश, काल, क्रियाएँ एक दूसरे से गुँथे हुए, सधे हुए विधि से प्रवाहित रहना पाया जाता है । सम्पूर्ण देश काल

क्रियाएं सह-अस्तित्व सहज विन्यास है । देश का तात्पर्य, यह धरती अपने में एक देश है । इस धरती में अनेक देशों को विभिन्न आकार प्रकार से पहचाना गया है । ऐसे विभिन्न देशों में विभिन्न वस्तुएं न्यूनाधिक होना पाया जाता है । जैसे किसी देश में लोहा (अयस्क) अधिक होता है, किसी देश में न्यूनतम होता है । इसी प्रकार सभी प्रकार के धातुओं को देश काल विधि से पहचाना जाता है। इसी क्रम में वन, वनस्पति, अन्न वस्तुओं का उपज किसी देश में कुछ-कुछ अधिक होता है और कुछ देश में कम होता है, कम से कम भी होता है । जैसे नीम का पेड़ किसी देश में अधिक होता है किसी देश में कम होता है या नहीं होता है । जीव-जानवरों की परंपरा भी किसी देश में कुछ प्रजाति के अधिक एवं कुछ प्रजाति की कम होती है । मानव जनसंख्या किसी देश में अधिक है, किसी देश में कम है । ये सब गणना कार्य के लिये आधार रूप में देखा जाता है । सम्पूर्ण गणनाएँ सह-अस्तित्व सहज पदों अवस्था और उसके अन्तर अवस्थाओं के साथ ही सम्पन्न होता है । और गणनाएँ, यह धरती जैसा अनंत धरती, अनंत सौर व्यूह के रूप में मानव मानस में स्वीकृत हो पाते हैं । इसी के साथ, लंबा, चौड़ा, उँचा भी गणना का एक आधार है । ये सभी गणनाएँ मूलतः निर्देश और संदेश कार्य को सम्पन्न करता है । इन्हीं दो प्रणाली में जानना-मानना-पहचानना निर्वाह करने में सम्पूर्ण समझदारी, निष्ठा सहित कार्य व्यवहार निर्देशित संदेशित हो जाती है ।

मानव अपने परंपरागत विधि से संदेश और निर्देशपूर्वक ही प्रमाणित होने की विधि स्पष्ट हो जाती है । संदेश प्रणाली में अस्तित्व सहज कार्य और मानव सहज कार्य का संदेश समायी रहती है । यही शिक्षा तंत्र के लिये संपूर्ण वस्तु है । ऐसी संदेश के क्रम में काल, देश निर्देशन अवश्यंभावी है । इसी से पहचानने, निर्वाह करने का प्रमाण परंपरा में स्थापित होता है । मानव सहज कार्यकलापों को कायिक, वाचिक, मानसिक रूप में या प्रत्येक कृतकारित, अनुमोदित रूप में हर मनुष्य को कार्यरत रहता हुआ पाया जाता है । जागृत मनुष्य में ही हर कार्य चिन्हित प्रणाली, निश्चित प्रयोजन विधि से सम्पन्न होना देखा गया है । यह भी देखा गया हर निश्चित लक्ष्य चिन्हित प्रणाली से ही सम्पन्न होता है या सार्थक होता है या सफल होता है । यह हर गंतव्य, हर प्राप्ति सहज प्रयोजनों को पाने के क्रम में देखने को मिलता है; जैसा किसी स्थली, नगरी, गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिये एक व्यक्ति तत्पर होता है । उस स्थिति में वह जहाँ रहता है वह स्थली निश्चित रहता है, जहाँ पहुंचना है वह भी निश्चित रहती है । इस बीच में चिन्हित मार्ग रहता है अथवा दिशा निर्धारण विधि से चिन्ह बन जाता है । कोई व्यक्ति परिवार, घर बनाने के लिये सोचता है । यह आवश्यकता पर आधारित रहता है । आवश्यकता जब गुरूतर हो जाती है आदमी घर बनाता ही है । घर बनाना लक्ष्य बन जाता है । उसका आकार-प्रकार मानव में विचार और चित्रण में आता है । ऐसे चित्रण को धरती पर चिन्हित किया जाता है

। इसी धरती पर घर बनाने का कार्य सम्पन्न होता है। इसमें भी चिन्हित मार्ग, गम्यस्थली और आवश्यकता का संयोजन बना ही रहता है । इसी प्रकार से सम्पूर्ण प्रौद्योगिकी, कृषि, पशुपालन, ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योग, हस्तकला, लघु-गुरू उद्योग, समान्याकांक्षा, महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं को पाना प्रयोजन हो जाता है । इसके लिये चिन्हित विधि को अपनाना होता है । इसके मूल में आवश्यकताएँ मानव में प्रसवित रहती ही हैं ।

सह-अस्तित्व सहज ज्ञान, दर्शन, विवेक-विज्ञान सहज तकनीकी सम्पन्न बौद्धिकता सहित मानव, मानव को पहचानने की विधि, परमाणु में विकास, विकास क्रम में गठनपूर्णता, जीवन पद, जीवन सहज जागृति की आवश्यकता उसका निश्चित प्रयोजन, उसे प्रमाणित करने के लिये चिन्हित प्रणाली का होना नियति सहज कार्यक्रम है । नियति सहज का तात्पर्य विकास और जागृति से है । जागृति का प्रमाण या जागृति का धारक, वाहक इस धरती में केवल मानव ही है । जागृति सदा ही सर्वतोमुखी होना पाया जाता है । जागृति, सर्वतोमुखी समाधान के रूप में प्रयोजित हो जाता है ।

जीवन अपने स्वरूप में प्रत्येक मनुष्य में समान रूप में कार्यरत है और होने की संभावना से परिपूर्ण है । इसे इस प्रकार देखा गया है कि जीवन रचना सम्पूर्ण जीवन में समान है । जीवन शक्तियाँ अक्षय रूप में हर जीवन में समान है । जीवन लक्ष्य प्रत्येक जीवन का समान है । जीवन सहज कार्यकलाप

प्रत्येक जीवन में समान है । इन सभी वैभवों का प्रमाण मनुष्य ही है । जागृत मानव में जीवन सहज लक्ष्य सार्थक होने के लिये चिन्हित, मार्ग स्पष्ट रहना, यही चिन्हित मार्ग को अर्थात जीवन जागृति को परंपरा के रूप में अर्थात धारक-वाहकता पूर्वक पीढ़ी से पीढ़ी को सहज सुलभ करना-कराना और करने के लिये मत देना मानव सहज पुरूषार्थ परमार्थ का तात्पर्य है । जिसका साक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है । जिसका व्यवहार रूप अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी है ।

मानव परंपरा में जीवन जागृति का प्रमाण व्यवहार में ही सुलभ होना पाया गया है । फलस्वरूप परंपरा में जागृति का प्रभाव वैभवित रहना सहज है । यह सर्वमानव की अपेक्षा, आवश्यकता है । यह भी विदित हुआ है कि जागृत मानव ही जागृति परम्परा को अनुप्राणित करने में समर्थ और सार्थक हो पाता है और जागृत मानव परम्परा में मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार सम्पन्न हर व्यक्ति स्वायत्त होना और ऐसे स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना स्पष्ट हो चुका है । परिवार मानव अपने में समाधान समृद्धि सम्पन्न होना भी स्पष्ट हुआ है । इस आशय की स्वीकृति सर्वमानव में होना पाया जाता है । ऐसा परिवार अर्थात मानवीयतापूर्ण परिवार में हर स्वायत्त मानव सम्बन्धों को पहचानते हैं, मूल्यों का निर्वाह करते हैं, उभय तृप्ति पाते हैं । सम्बन्धों को सामान्य रूप में सम्बोधन सहज परंपरा, प्रत्येक भाषा में प्रकारान्तर से स्पष्ट हुई है । पहले

से यह बात भी स्पष्ट हुई है कि प्रत्येक सम्बन्ध का आशय फलस्वरूप में उसका वैभव भी अभिहित हुआ है।

सम्बन्ध की परिभाषा अपने स्वरूप में पूर्णता के अर्थ में अनुबंध है। पूर्णता का अर्थ क्रियापूर्णता एवं आचरणपूर्णता ही है । क्योंकि अस्तित्व में तीन चरणों में पूर्णता और उसकी निरंतरता का होना देखा गया है । यह गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता और उसकी निरंतरता है । **गठनपूर्णता के अनन्तर जीवन और उसकी निरंतरता, क्रियापूर्णता के अनन्तर समाज और उसकी निरन्तरता और आचरण पूर्णता के अनन्तर प्रमाणिकता और उसकी निरंतरता होती है ।** इसे भली प्रकार से अस्तित्व में समझा गया है । इन्हीं मूल ध्रुवों के आधार पर ''व्यवहारवादी समाज शास्त्र'' प्रस्तुत हुआ है । अनुबंध का तात्पर्य अनुक्रम से प्रतिबद्धित स्थिरता निश्चयता रहने से है । प्रतिबद्धता का तात्पर्य निष्ठा केन्द्र । निष्ठा का तात्पर्य हर विधाओं में न्यायपूर्ण व्यवहार, नियमपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करने से है ।

मानव सहज सभी सम्बन्ध पूर्णता को प्रतिपादित करने के लिये अनुबंधित रहने के कारण ही है । हर सम्बन्धों का पहचान के साथ ही मूल्यों का उद्‌गमन जीवन सहज रूप में व्यक्त होता है । इसका मूल स्रोत जीवन अक्षय शक्ति, अक्षय बल सम्पन्न रहना ही है । यह भी हम समझ चुके हैं कि जीवन ही शरीर को जीवन्त बनाए रखता है और जीवन अपने आशयों

को शरीर के द्वारा मानव परम्परा में, से, के लिये अर्पित करता है। पहला - समझदारी को प्रमाणों के रूप में अर्पित करता है और प्रबोधनों के रूप में अर्पित करता है । प्रबोधन किसी को बोध के लिए अर्पित होता है और प्रमाण स्वतृप्ति और तृप्तिपूर्ण परम्परा के आशय में घटित होती है । यह जीवन जागृति की स्वाभाविक क्रिया है । जागृत व्यक्ति ही व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण होना पाया जाता है । व्यवस्था स्वयं में न्याय, उत्पादन और विनिमय सुलभता ही है । इन्हीं की निरन्तरता के लिये स्वास्थ्य संयम और मानवीय शिक्षा-संस्कार एक अनिवार्य स्थिति है । इस प्रकार व्यवस्था का 5 आयाम होता है । इन्हीं आयामों में भागीदारी, व्यवस्था में भागीदारी का तात्पर्य है । इस प्रकार हर जागृत मनुष्य (परिवार मानव) सहज रूप में व्यवस्था को प्रमाणित करता है । यही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का आधार और अभिव्यक्ति है ।

सम्बन्धों को मनुष्य के सम्पूर्ण कार्य व्यवहार के आधार पर सम्बोधन रूप में पहचाना जाता है । जिसकी सूची पहले प्रस्तुत किया गया है । हर सम्बन्धों का प्रयोजन भी उसी के साथ स्पष्ट है ।

मानव सम्बन्धों का प्रकार

1. माता - पुत्र - पुत्री
2. पिता - पुत्र - पुत्री
3. भाई - बहिन

4. मित्र - मित्र
5. गुरू - शिष्य
6. पति - पत्नी
7. स्वामी (साथी) - सेवक (सहयोगी)
8. व्यवस्था संबंध (व्यवस्था - कार्यप्रणाली) ।

हर सम्बन्धों में पूरकता प्रधान ज्ञान प्रणाली व्ययवस्था के रूप में कार्यप्रणाली गति के रूप में सह-अस्तित्व सहज रूप में ही स्पष्ट होती है । हर संबंध एक-दूसरे के पूरक होने के अर्थ में नित्य प्रतिपादन है । अस्तित्व सहज व्यवस्था क्रम में पूरकता विधि प्रभावशील है । इसके मूल में अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व ही है ।

हर सम्बोधन में अपेक्षाएँ समाहित रहना पाया जाता है । हर सम्बन्धों के सम्बोधन प्रक्रिया में जागृति की अपेक्षा रहता ही है । उसके साथ तीन सम्बन्ध ही देखने को मिला । ये तीन सम्बन्ध मानव सम्बन्ध, नैसर्गिक सम्बन्ध, और व्यवस्था सम्बन्ध हैं। मानव सम्बन्ध में अपेक्षाएं शरीर पोषण - संरक्षण, समाजगति की अपेक्षाएँ प्रकारान्तर से समायी रहती है। पोषणापेक्षा - पोषण प्रवृत्तियाँ तन, मन (जीवन) और धन, के सम्बन्धों में अथवा तन, मन (जीवन) धन रूपी तथ्यों का पोषण, संरक्षण अपेक्षा और प्रवृत्ति मानव सहज गति होना पाया जाता है । यथा -

1. जागृत मानव अन्य की जागृति के लिये प्रवृत्त रहता है ।

2. स्वस्थ मानव अन्य के स्वस्थता के लिए प्रयत्नशील रहता है ।

3. समृद्धिशील मानव अन्य के समृद्धि सम्पन्नता में सहायक होने के लिये प्रवृत्तशील रहता है ।

4. न्याय प्रदायी क्षमता सम्पन्न मानव, अन्य को न्याय सुलभ होने के लिये प्रवृत्तिशील रहता है ।

5. किसी उत्पादन कार्य में पारंगत मानव अन्य को पारंगत बनाने के लिये प्रवृत्तिशील रहता है ।

6. मनुष्य व्यवस्था में जीता हुआ समग्र व्यवस्था में भागीदारी करते हुए अन्य को व्यवस्था में भागीदारी के लिये प्रेरित करने में प्रवृत्तिशील रहता है ।

इस विधि से हर प्रौढ़ - पारंगत, स्वायत्त मानव अपने अर्हता के प्राप्तियों को स्थापित करने में प्रवृत्तिशील रहता है । मानव अपने परम्परा बनाने में प्रवृत्तिशील है चाहे यह अमानवीयता के सीमा या मानवीयता - अतिमानवीयता के रूप में क्यों न हो ?

मानवीयता और अति-मानवीयतापूर्ण ज्ञान, विवेक, दर्शन, विज्ञान पूर्वक हर व्यक्ति अपने को अभिव्यक्त, संप्रेषित और प्रकाशित करते हुए देखने को मिलता है । इसी आधार पर अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का उदय होता है । यह

व्यवहारवादी समाजशास्त्र अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था को प्रतिपादित करता है और संतुष्ट है ।

अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में, से, के लिये जागृति ही प्रधान आधार है । जागृति केवल मानव में ही होना पाया जाता है । इसलिये मानव में ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की संभावना बनी हुई है । दूसरे विधि से हर-मानव स्व जागृति को वरता ही है । अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की अपेक्षा करता ही है । यही ज्ञानावस्था का मौलिक अपेक्षा है । जागृति जीवन सहज अधिकार है । यही जीवन क्षमता के रूप में विद्यमान रहता है । यही योग्यता पात्रता के रूप में अभिव्यक्त, संप्रेषित और प्रकाशित होते हैं । इसी विधि से कायिक-वाचिक, मानसिक, कृत-कारित, अनुमोदित भेदों से सम्पूर्ण मानव सम्बन्ध बनाम समाज सम्बन्ध दूसरा व्यवस्था सम्बन्ध, तीसरा नैसर्गिक सम्बन्धों को जानते, मानते, पहचानते और निर्वाह करते हैं ।

परिवार सम्बन्ध, मानव सम्बन्ध, समाज सम्बन्ध ये सब आवश्यकतानुसार उपयोग करने का नाम है । ये सबका निर्देशित अर्थ, चिन्हित अर्थ अखण्ड समाज ही है । अखण्ड समाज का पहचान, लक्ष्य, प्रयोजन और प्रणाली, पद्धति, नीतियों के समानता से है । मानव लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व होना ही है । प्रयोजन व्यवस्था और व्यवस्था में भीगीदारी है । मानवीयतापूर्ण पद्धति न्याय, उत्पादन, विनिमय,

स्वास्थ्य-संयम और शिक्षा-संस्कार में पूरकता प्रणाली परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था प्रणाली और नीति तन, मन, धन रूपी अर्थ के सुरक्षा हैं, यही मानव का मौलिक अभिव्यक्ति संप्रेषणा, प्रकाशन है। अस्तित्व नित्य प्रकाशमान होने के कारण अस्तित्व में हर वस्तु का प्रकाशित रहना स्वाभाविक है। सम्पूर्ण अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन अस्तित्व सहज ही है। अस्तित्व स्वयं ही नित्य अभिव्यक्ति व संप्रेषणा है। मानव अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान व अभिव्यक्ति है। सभी अभिव्यक्तियाँ सभी अवस्थाओं में अभ्युदय के अर्थ में ही व्यक्त हैं। इस प्रकार अस्तित्व स्वयं में ही प्रकाशित अभिव्यक्त व सम्प्रेषित है। इस क्रम में यह समझ में आता है कि अस्तित्व निरंतर स्पष्ट व प्रकाशवान है। अस्तित्व ही नित्य संप्रेषणा है जो नित्य समाधान नित्य व्यवस्था है। अस्तित्व ही नित्य व्यक्त अभिव्यक्त हैं क्योंकि अस्तित्व सदा-सदा स्थिर, शाश्वत है, नित्य वैभव है। इन्हीं तथ्यों से यह भी ज्ञात होता है कि **अस्तित्व में, से, के लिये कोई रहस्य व कोई अवरोध एवं संघर्ष नहीं है। विरोध नहीं है, विद्रोह नहीं है, विपन्नता नहीं है। बड़े-छोटे के रूप में कुंठा निराशा नहीं है। युद्ध व शोषण नहीं है। ये सभी नकारात्मक पक्ष मानव के द्वारा अपनाया हुआ भ्रमित परम्परा का देन है।**

जागृत परम्परा में मानव ही सम्पूर्ण आयाम, कोण, दिशा व परिप्रेक्ष्य सर्व देशकाल में जागृत शिक्षा यथा अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन रूपी जीवन ज्ञान सहज परम ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज सह-अस्तित्व रूपी परम दर्शन,

मानवीयतापूर्ण आचण रूपी परम आचरण, ज्ञान-विज्ञान विवेक सम्मत समाधानपूर्ण शिक्षा-संस्कार सुलभ होता है। जागृति सहज मानवीयतापूर्ण आचरण और मानव सहज परिभाषा के अनुरूप शास्त्रों का प्रणयन स्वाभाविक रूप में ही है। आवर्तनशील अर्थशास्त्र अपने सह-अस्तित्व सहज सूत्रों के प्रतिपादन सहित व्याख्यायित हुआ है। यह परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन के लिये अपनाया हुआ उत्पादन कार्य में नियोजित श्रम, उत्पादन सहज उपयोगिता के आधार पर उसका मूल्यांकन फलस्वरूप श्रम विनिमय प्रणाली स्थापित होती है। यह समझ के करो विधि से सर्वसुलभ हो जाता है। इसी क्रम में यह व्यवहारवादी समाजशास्त्र भोगोन्मादी समाज शास्त्र के स्थान पर प्रस्तावित किया है। भोगोन्मादी समाज शास्त्र को हर जागृत व्यक्ति भ्रमित विकल्प के रूप में शास्त्र होने के रूप में मूल्यांकित कर सकता है।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गई कि जीवन जागृतिपूर्वक ही हर मनुष्य स्वायत्ततापूर्वक परिवार मानव होने का प्रमाण सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का निर्वाह करता है। जीने की कला दूसरे विधि से मानवीयतापूर्ण आचरण विधि मानव सहज परिभाषा क्रम से ही मानवीयता का व्याख्या सहज ही सार्थक हो जाता है। सार्थक होने का तात्पर्य अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था क्रम में भागीदारी है। अखण्ड समाज सूत्र परिवार विधि से सार्थक होना पाया जाता है। परिवारों का स्वरूप और विशालता को दस सोपानों में स्पष्ट किया गया है।

इसी के साथ-साथ दस ही सोपानों में सभा-स्वरूप व्यवस्था कार्य, कर्तव्य, दायित्व को स्पष्ट किया है । परिवार क्रम में मूल्य, चरित्र, नैतिकता अविभाज्यता को सहज ही स्पष्ट किया जा चुका है । दस सोपानीय समाज रचना और व्यवस्था गति अपने आप में एक दूसरे को संतुलित करने के अर्थ से हम अभिहित होते हैं । जैसा :- परिवार - जिसका सूत्र सम्बन्ध मूल्य, मूल्यांकन, उभय-तृप्ति और परिवारगत उत्पादन कार्य में पूरकता फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन है। परस्पर परिवार व्यवस्था में विनिमय एक अनिवार्य कार्य है । इसी के साथ सीखा हुआ को सिखाने, किया हुआ को कराने, समझा हुआ को समझाने का कार्य प्रणाली, सदा-सदा जागृत मानव पंरपरा में वर्तमान रहता ही है । इसी क्रम में सर्वमानव सुख, सर्वमानव शुभ और सर्वमानव समाधान सर्वसुलभ होता ही रहता है । इस स्थिति को पाना सर्वमानव का अभीप्सा है। अतएव सुलभ होने का मार्ग सुस्पष्ट है ।

जागृतिपूर्वक ही सम्बन्ध स्वीकृति अवधारणा में हो पाता है यही एक संस्कार है । ऐसी अवधारणा ही सम्बन्धों का प्रयोजन सहज सत्य के रूप में स्वीकृत होना देखा गया । यह क्रिया जागृत जीवन शक्तियों का दर्शन क्रियाकलाप के फलस्वरूप घटित होना देखा गया है । जागृत जीवन बल ही मूल्य और मूल्यांकन में प्रस्तुत होता है । फलस्वरूप समाधान समीकृत (फलित) होता है । यही मानव धर्म सहज सुख का स्रोत है । यह स्रोत प्रत्येक मानव में जागृत जीवन के रूप में

वैभवित होना पाया जाता है । जीवन जागृत होने में कोई भी, कितना भी भ्रमित परिकल्पनाएं बाधा का कारण नहीं हो पाता है, जैसे-विविध रंग, जाति, वर्ग, देश, भाषा, लिंग, नस्ल । यह सभी मिलकर अथवा किसी एक जो मानव में विविधता का कल्पना समा लिया वह सब जागृति के सम्मुख होने के स्थिति में अपने आप विलय हो जाता है । एक सूत्र में सभी व्यर्थ-अनर्थ, पाश्वीय-राक्षसी कल्पनायें मानवीयता सहज जागृति के प्रभाव के साथ साथ ही सभी भ्रम, निर्भ्रम (जागृति) में विलय हो जाते हैं । जैसे एक गणित का प्रश्न का, सही उत्तर पाने के लिये प्रक्रिया-प्रयास तब तक किया जाता है जब तक सही उत्तर पाया नहीं गया । जब सही उत्तर समझ में आ जाती है उसी के साथ-साथ गलती करने वाला विविध भ्रम अपने-आप उत्तर ज्ञान में विलय हो जाता है। विलय होने का तात्पर्य इतना ही है जिसका प्रभाव शेष नहीं निशेष हो जाता है ।

सम्बन्ध का स्वीकृति अथवा अवधारणा अपने स्वरूप में समाधान और उसकी निरंतरता ही है । यह विज्ञान और विवेक सम्मत तर्क विधि से बोध होता है । ऐसा बोध सम्पन्न होने का अधिकार, प्रत्येक जीवन में समाहित रहता ही है । यहाँ यह भी स्मरण में रहना आवश्यक है कि जीवन ही दृष्टा कर्ता और भोक्ता होता है । यह जागृतिपूर्वक ही अनुभव गम्य होता है क्योंकि बोध के अनन्तर अनुभव ही एकमात्र जागृति के लिये सोपान है । अध्ययनपूर्वक अस्तित्व, जीवन बोध और संबंध बोध होना देखा गया है । इन्हीं सम्बन्ध बोध में प्रयोजन रूपी

समाधान को व्यक्त करना ही अथवा प्रमाणित करना ही मूल्यों का निर्वाह है । समाधान अपने स्वरूप में सुख ही है । यही समाधान सम्पूर्ण आयाम, कोण, परिप्रेक्ष्य, देश, कालों में प्रमाणित होने के क्रम में ही सर्वतोमुखी समाधान कहलाता है । हर विधाओं में प्रमाण सहज अभिव्यक्ति अनुभवमूलक विधि से ही सम्पन्न होना पाया जाता है । इसलिये सम्बन्ध अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व में अनुभव होना स्वाभाविक है और जागृति का साक्ष्य है ।

3. अभ्यास विधि से जानना-मानना-पहचानना-निर्वाह करना ही सम्पूर्णता है । दूसरे भाषा में अनुभव और अभिव्यक्ति ही सम्पूर्णता है । स्वीकारा गया सम्पूर्ण अवधारणाएँ प्रमाणित होने के लिये उत्सवित रहता ही है । **ऐसी बोध सहज उत्सव क्रियाकलाप को प्रखर प्रज्ञा के नाम से इंगित कराया गया । सम्पूर्ण अभ्यास का, दूसरे भाषा में सम्पूर्ण प्रकार के अभ्यास का प्रयोजन प्रज्ञा प्रखर होना ही है ।** जागृति क्रम में जानना, मानना, पहचानना अध्ययन विधि से अध्ययनपूर्वक निर्देशन सहित बोध होना पाया जाता है । इसी क्रम में जागृत परंपरा प्रदत्त विधि से सम्बन्धों का पहचान, प्रयोजनों का बोध स्वाभाविक रूप में होना पाया जाता है । यह हर मानव संबंध, नैसर्गिक सम्बन्धों में निहित मूल्यों, मूल्यांकन, प्रयोजन के रूप में समझ में आता है । यही सम्बन्ध और मूल्य बोध होने की विधि है ।

सम्बन्ध और मूल्य अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व में ही होना स्पष्ट हो चुकी है । शरीर और जीवन का संयोग भी सह-अस्तित्व सहज सूत्र से ही सूत्रित है । सर्वमानव भी सह-अस्तित्व में ही जीवन जागृति को प्रमाणित करने का कार्य करता है, या करना चाहता है या करने के लिये बाध्य है । सह-अस्तित्व स्वयं मानव में होने वाले अनुभव सहज स्वीकृति है । इन स्वीकृति के साथ ही प्रमाणित होने के क्रम में सम्बन्ध मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति प्रमाणित होना पाया जाता है । यही चरित्र का चरमोत्कर्ष प्रयोजन है । ऐसे चरित्र के आधार पर ही नैतिकता स्वाभाविक रूप में सार्थक होता है । इसे भली प्रकार से परखा गया है, जीकर देखा गया है ।

माता पिता :- सम्बन्धों का क्रम पहले सूची में प्रस्तुत किया जा चुका है । उसमें से पहला सम्बन्ध माता-पिता और पुत्र-पुत्री संबंध है । हर शिशु, हर वृद्ध जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में ही होना देखा गया है । शरीर विधा से मानव परंपरा की निरंतरता के लिये एक शरीर रचना वह भी वंशानुगत विधि से सम्पन्न होना पाया जाता है । हर संतान के लिए माता-पिता का सम्बन्ध इसी आधार पर होना पाया जाता है । इसके अनंतर शरीर संरक्षण, पोषण के आधार पर माता-पिता के सम्बन्धों को पहचाना गया है । यह पोषण और संरक्षण रूपी अपेक्षा शिशुकालीन संबोधन में ही निहित रहना पाया जाता है । जैसे ही शिशुकाल से कौमार्य अवस्था शरीर के आयु के अनुसार गणना हो पाता है ऐसी स्थिति में पुत्र-पुत्री के सम्बोधन

में भी अपेक्षाएँ आरंभ होते हैं । ये अपेक्षाएं मानवीयतापूर्ण सभ्यता, संस्कृति, भाषा के आधार पर होना पाया जाता है । माता पिता शिशुकाल में शिशु से कोई अपेक्षा नहीं करते । यह सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है । जैसे ही शिशु काल से यौवन काल आता है, (शरीर के आधार पर ही इस समय को पहचाना जाता है), तब तक माता-पिता की अपेक्षाएँ और बढ़ जाती हैं विशेषकर जीवन जागृति सहज संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के अनुरूप देखना चाहते है। यह घटित होना सफलता का द्योतक है । इसी के साथ मानवीय शिक्षा-संस्कार जुड़ा ही रहता है । फलस्वरूप हर अभिभावकों से अपेक्षित अपेक्षाएँ सभी संतानों में सफल होने की स्थिति निर्मित हो जाती है । इसका कार्यसूत्र मानवीय शिक्षा-संस्कार सुलभ होना और उसका मूल्यांकन, परामर्श, प्रोत्साहन परिवार में हो पाना, मानवीयतापूर्ण परंपरा में सहज हो जाता है । इसका स्वरूप अर्थात हर विद्यार्थी का स्वरूप शिक्षा-संस्कार काल में ही स्वायत्त मानव के रूप में परिणित और परिवार में प्रमाणित हो जाता है । इसलिये परिवार में स्वायत्तता का अनुभव सहज हो जाता है ।

जागृत मानव परंपरा में हर अभिभावक स्वायत्त रहता ही है । ऐसा जागृत अभिभावक अपने संतान में जागृति को अथवा जागृति सहज कार्य व्यवहार को प्रमाणित करता हुआ देखना चाहते हैं । यह स्वाभाविक है । यही परम संगीतमय कार्यक्रम का आधार होता है और सर्वशुभ कार्यों में भागीदारी निर्वाह करने में सहज होता है । इसी क्रम में शरीर पोषण संरक्षण का

फलन समाजगति रूप में अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने में सहज होता है ।

शिक्षा ही संस्कार रूप में जब प्रतिष्ठित होता है उसी मुहूर्त से जीवन जागृत होना स्वाभाविक होता है । जागृतिपूर्ण मानव परिवार का वातावरण पाकर प्रमाणित होने की आवश्यकता - संभावना बलवती होती है। यही समाज गति का मूलसूत्र है ।

सम्बन्धों का पहचान सदा-सदा ही अनुभव महिमा और गरिमा होना पाया जाता है । महिमा का तात्पर्य स्वीकृत और अपेक्षित लक्ष्य की ओर गति और लक्ष्य प्राप्ति के रूप में होना देखा गया है । सर्वशुभ ही मानव परंपरा में, से, के लिये समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व ही है । यही जीवन जागृति है । जीवन में, से, के लिये सुख-शांति, संतोष आनन्द है । सुख, शान्ति, संतोष, आनन्द यह जीवन सहज शक्तियों और बलों में पूरकता का ही फलन है । सर्वशुभ का प्रमाण जागृत जीवन शक्ति और बलों की सम्मिलित अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन है । इस विधि से हर परिवार मानव अपने सफलता और समग्र मानव के सफलता को मूल्यांकित कर पाता है । यही गरिमा का तात्पर्य है ।

हर जागृत, स्वायत्त परिवार मानव ही अभिभावक के रूप में घटित होना स्वाभाविक है अथवा माता-पिता के रूप में घटित होना स्वाभाविक है। ऐसे अभिभावकों में उदारता और

दयापूर्ण कार्य व्यवहार स्वाभाविक रूप में बना रहता है । मानव अपने स्वायत्तता के साथ ही ऐसी अर्हता से सम्पन्न हुआ रहता है । परिवार में समाधान और समृद्धि वैभव के रूप में रहता ही है । ऐसा वैभव हर परिवार में मानवीयतापूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति से सर्वसुलभ हो जाता है । इस क्रम और विधि से मानव परम्परा में कोई विपन्नता का कारण शेष नहीं रह जाता । परिवार मानव के स्वरूप में यह वैभव सदा-सदा प्रमाणित रहता ही है । न्याय सुलभता, उत्पादन सुलभता हर परिवार मानव का प्रमाण अथवा अभिव्यक्ति है । समृद्धि, समाधान के योगफल में ही मानव परंपरा का वैभव प्रमाणित होती है । इससे कम में सम्भावना ही नहीं, इससे अधिक की आवश्यकता ही नहीं । समाधान, समृद्धि सहज हर अनुभव, के अनुरूप हर अभिभावक अपने संतानों में संस्कार डालने में समर्थ होते ही हैं । क्योंकि समाधान समृद्धि, दिशा और प्रक्रिया से हर अभिभावक गुजरे रहते हैं फलस्वरूप उसी दिशा में संस्कार आरोपण सम्बोधन नाम से चलकर अवधारणा पर्यन्त सूत्रित होना, रहना, करना जागृति सहज गति है । यही प्रमुख स्रोत है जो पीढ़ी से पीढ़ी तृप्त होने का संधान है । संधान का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में अवधारणाओं को स्थापित करने और होने से है । यही पीढ़ी से पीढ़ी के मध्य तृप्ति स्रोत है । इसी स्रोत का धारक वाहक हर अभिभावक होना जागृत परंपरा का वैभव है।

जागृत परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी संगीतमयता का प्रवाह होना समीचीन रहता ही है । ऐसी जागृति परंपरा में ही अभय

और सह-अस्तित्व का प्रमाण, ग्राम परिवार और विश्व परिवार रूपी अखण्ड समाज में, ग्राम सभा परिवार और विश्व परिवार सभा रूपी व्यवस्था और व्यवस्था क्रम में सदा-सदा के लिये वर्तमान में विश्वास और सह-अस्तित्व प्रमाणित होना समीचीन रहता ही है । इस प्रकार परंपरा के निरंतरता की संभावना स्पष्ट है।

व्यवस्था सहज विधि से नियमपूर्ण कार्य और समाज विधि से न्यायपूर्ण व्यवहार प्रमाणित होता है । यह परस्पर पूरक होने के आधार पर समाधान सहज ही वर्तमान वैभव सम्पन्न होता है । इसी क्रम में मानव सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न होने, करने-कराने योग्य होता है । नियमपूर्ण कार्यकलाप नैसर्गिकता के साथ संयोजित रहना देखा गया है और न्यायपूर्ण व्यवहार परस्पर मानव में सार्थक होना देखा गया है । नियम का संतुलन न्याय से, न्याय का संतुलन नियम से वैभवित होना ही समाधान और उसकी निरंतरता है । समाधान मानव सहज अनुभव है । नियम और न्याय भी अनुभव गम्य तथ्य है । इस प्रकार अनुभव मूलक विधि से ही मानव परंपरा समाधान समृद्धि अभय सह-अस्तित्व रूपी वैभव से वैभवित रहना सहज है । यही जागृत मानव परंपरा का सम्पूर्णता है । इस क्रम में प्रमुख मुद्दा और प्रमाण परिवार में समाधान, समृद्धि समस्त परिवार के परस्परता में अभय, सह-अस्तित्व सार्थक होने का, वर्तमान में चरितार्थ होने की स्थिति और गति ही जागृत मानव परंपरा है । इस प्रकार सम्मिलित रूप में सम्पूर्ण मानव में सर्वशुभ उक्त चारों

वैभव जागृति के साथ सूत्रित रहता है । अतएव उदारता और दयापूर्ण कार्य व्यवहार हर मनुष्य में, हर सम्बन्धों में और हर पदों में व्यवहृत होना स्वाभाविक है । इसलिये हर संतान के साथ उदारता और दयापूर्ण कार्य सम्पन्न होना स्वयं स्फूर्त होता ही है । यही माता पिता के साथ प्रौढ़ संतान का कार्य-व्यवहार कृतज्ञता पूर्वक, उदारता सहित सम्पन्न होना स्वाभाविक है । इस प्रकार जागृत परंपरा सहज संगीत और स्वर समाधान, समृद्धि, अभय सह-अस्तित्व के रूप में वैभवित होना पाया जाता है।

2. भाई-बहन - भाई-भाई, भाई-बहन, बहन-बहनों के बीच उनके सम्बन्ध और परस्पर परीक्षण कार्यकलाप जागृतिगामी दिशा, व्यवहार और कार्यप्रणाली के साथ गतिशील होता है । यही परस्पर पूरकता विधि को प्रमाणित करता है । इसका स्रोत मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार परंपरा ही है । बाल्यावस्था से ही घर परिवार, शिक्षण संस्थाओं में मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार सुलभ होना सहज रहता ही है इसके फलस्वरूप प्राप्त शिक्षा-संस्कार और कल्पनाशीलता कर्म स्वतंत्रता के योगफल में मुखरण होना स्वाभाविक क्रिया है । मुखरण होने का तात्पर्य हर विद्यार्थी अपने-अपने ढंग से प्रकाशित-संप्रेषित होना ही है ।

प्रत्येक जीवन, मानव परंपरा में जागृति और जागृतिपूर्ण होने और प्रमाणित होने के उद्देश्य से ही इस शरीर को जीवन्त बनाए रखने, शरीर संवेदना का दृष्टा होने के अर्हता सहित शरीर

यात्रा को आरंभ करता है । परंपरा जागृत रहने के आधार पर ही जीवन जागृति पंरपरा बनना सहज संभव है । जागृत परंपरा का स्वरूप पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। पुनश्च यहाँ स्मरण के लिये अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन फलतः अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व में अनुभव सम्पन्नता के प्रमाणिकता सहित जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में, से, के लिये प्रयोजन और प्रक्रिया विधि से बोधगम्य कराने वाली अध्ययन, अध्यापन, शिक्षण, प्रशिक्षण (में पारंगत हुआ को सिखाना, किया हुआ को कराना) विधि से अस्तित्व सहज व्यवस्था रूपी वैभव की अवधारणाओं को स्थापित करना ही शिक्षा-संस्कार का प्रधान प्रभाव और परंपरा है । यही सर्वप्रथम मानवकृत वातावरण का महिमा है । यह जागृति का द्योतक है । इस क्रम में हर व्यक्ति सह-अस्तित्व में, से, के लिये आश्वस्त, विश्वस्त होना एक आवश्यकता रहता ही है । इसके आधार पर समग्र अस्तित्व का अवधारणा हर मानव जीवन में स्थापित होता है । प्रत्येक मनुष्य स्वयं को समझने के क्रम में मैं अपने में क्या हूँ ? कैसा हूँ ? क्या चाहता हूँ ? इस प्रकार के प्रश्न चिन्ह विद्यार्थियों में लुप्त-सुप्त-प्रकट कार्य होना पाया जाता है । इसका उत्तर स्वयं में सह-अस्तित्व सहज अवधारणा के रूप में स्थापित होना पाया जाता है जैसा -

1. मैं मनुष्य हूँ - मैं मनाकार को साकार करने वाला व मनः स्वस्थता का आशावादी व प्रमाणित करने वाला हूँ।

2. मैं ज्ञानावस्था की इकाई हूँ ।
3. मैं शरीर व जीवन का संयुक्त साकार रूप हूँ - मानव परंपरा प्रदत्त मेरा शरीर तथा सह-अस्तित्व में परमाणु में विकास फलतः जीवन सहज स्वरूप हूँ ।
4. मैं जीवन सहज रूप में जानने-मानने-पहचानने-निर्वाह करने का क्रिया कलाप हूँ । शरीर रूप में 5 ज्ञानेन्द्रियों, 5 कर्मेन्द्रियों व उसके क्रियाकलाप का दृष्टा हूँ ।
5. मैं मानवत्व सहित व्यवस्था हूँ ।
6. मैं बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि हूँ अथवा सम्पन्न होना चाहता हूँ ।
7. मैं जीवन जागृतिपूर्णता और उसकी निरंतरता चाहता हूँ, साथ ही भ्रम, भय व समस्याओं से मुक्त होना चाहता हूँ ।
8. मैं सार्वभौम व्यवस्था व अखण्ड समाज में भागीदार होने का अधिकारी होना चाहता हूँ, स्वानुशासित होना चाहता हूँ एवं प्रत्येक मनुष्य को ऐसा होता हुआ देखना चाहता हूँ ।

उक्त सभी आशय प्रत्येक भाई-बहनों में गतिशीलता सहज विधि से विशेषकर विचार शैली और वाङ्मय गति के लिये प्रधान बिन्दु है । इन बिन्दुओं के आधार पर एक-दूसरे के साथ वार्तालाप, विश्लेषण पूर्वक सम्पन्न होना एक आवश्यकता

है । इसका उत्तर पाना भी परमावश्यक है । इसी के साथ-साथ विश्लेषणों को प्रयोजन सम्बद्ध होना महत्वपूर्ण बिन्दु है । ऊपर कहे आठ बिन्दुओं में से प्रयोजन भी इंगित होती है । प्रयोजनों को जानना, मानना ही विवेचना का तात्पर्य है । विश्लेषण से संगतीकरण प्रयोजन, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारीपूर्वक समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना है । इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि हर विश्लेषण-सूत्र, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी सहज क्रियाकलापों को वर्णित, व्याख्यायित करना ही प्रयोजन है । ऐसे प्रयोजनों के साथ ही सम्पूर्ण विज्ञान सहज अध्ययन सार्थक होना पाया जाता है । जीवन सहज विधि से मानव विवेक और विज्ञान सम्मत प्रणाली, पद्धति, नीति सम्पन्न होना पाया जाता है । सह-अस्तित्व विधि से ही सम्पूर्ण प्रयोजन पूरकता, विकास, संक्रमण, जीवन, जीवनीक्रम, जीवन का कार्यक्रम, जागृति और जागृति का निरंतरता स्वाभाविक रूप में प्रयोजनों के अर्थ में ही स्पष्ट हो जाती है । जैसे - एक परमाणु में एक से अधिक अंश निश्चित दूरी में रहकर कार्य करता हुआ देखने को मिलता है । फलस्वरूप वह एक व्यवस्था के स्वरूप में मौलिक प्रस्तुति है । इसी प्रकार विभिन्न संख्यात्मक अंशों से गठित परमाणुओं का; रचना कार्य के योगफल में व्यवस्था के रूप में वर्तमान रहना स्पष्ट हुआ है ।

अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व में अथ से इति तक, सह-अस्तित्व ही सम्बन्धों का मूल सूत्र है । परमाणु अंशों का संबंध

और उसका निर्वाह के समानता में परमाणु व्यवस्था, परमाणुओं के परस्पर संबंध और उसका निर्वाह बराबर अणु व्यवस्था; अणु-अणु के साथ परस्पर सम्बन्ध और उसका निर्वाह बराबर रचना व्यवस्था । हर रचनाएँ विरचित होते हुए पुनःरचना के लिये पूरक होना पाया जाता है ।

जीवन और शरीर सम्बन्ध उसका निर्वाह वंशानुषंगीयता और व्यवस्था; जीवन और शरीर का परस्पर संबंध + जीवन जागृति सहज निर्वाह = संस्कारनुषंगीय अभिव्यक्ति एवं मानवीय व्यवस्था है ।

मानवीयता सहज सभी सम्बन्धों का प्रधान प्रमाण व्यवस्था के रूप में, जीना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना ही है । इस परम लक्ष्य को सदा-सदा परंपरा निर्वाह करने के क्रम में ही सभी प्रकार के सम्बन्धों को पहचानना मानव में, से, के लिये अनिवार्य है । इससे स्पष्ट हुआ है कि अस्तित्व ही सह-अस्तित्व के रूप में व्यवस्था में भागीदारी को प्रकाशित करता है। अस्तित्व में मानव अविभाज्य होने के कारण मानव अपने मानवत्व सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करना ही जागृति, समाधान, सर्वतोमुखी समाधान, व्यवस्था उसकी निरंतरता ही मानव परंपरा में परम प्रयोजन है । यही महिमा सर्वमानव शुभ के रूप में प्रमाणित हो जाती है । यही सह-अस्तित्व पूर्ण परिवार, समाज पुनः अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था स्वरूप में स्पष्ट होना पाया जाता है । इन्हीं उद्देश्यों

विधियों में जागृत होना ही शिक्षा-संस्कार, सम्बन्ध, सम्बन्धों में परस्पर अभिव्यक्ति, संप्रेषणा कार्य, व्यवहारों का प्रकाशन ही प्रधान रूप में मित्र, भाई-बहिन सम्बन्धों में आचरण, परीक्षण, मूल्यांकन के लिये तथ्य है ।

उक्त तथ्यों का हृदयंगम और पारंगत विधियों से परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना स्वाभाविक है । यही मानव परंपरा का अनिवार्य आवश्यकता, सार्थकता है । इस प्रकार हर मित्र, हर भाई, हर बहिन समृद्धिपूर्वक व्यवस्था में जीना ही उद्देश्य है । इस विधि से भाई-बहन सम्बन्धों में शिशु कौमार्य अवस्था से ही पूरकता को पहचानने का क्रम बना हुआ है । अन्य सम्बन्धों में कुछ आयु के बाद ही पूरकता संबंध बन पाता है । यथा गुरू-शिष्य सम्बन्ध कुछ आयु के बाद आरंभ होता है । पति-पत्नी संबंध कुछ आयु के बाद आरंभ होता है ।

भाई बहन संबध शिशुकाल से ही इंगित-निर्देशित हुआ रहता है । इनमें संस्कारों का समावेश रहना सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज सहज मानसिकता के लिए अर्पित होता ही रहता है । जैसा - हर लड़कियों को बहन के रूप में सम्बोधन करने का क्रम चाहे अपने परिवार की हो चाहे अड़ोस-पड़ोस, गाँव की क्यों न हो और भाई का सम्बोधन से सम्बन्धों का प्राथमिक अथवा आरंभिक परिचय इंगित होना पाया जाता है फलस्वरूप क्रम से विचार, इच्छा, चिन्तन, बोध और अनुभव में प्रमाणित होना पाया जाता है । सम्बोधन आरंभिक संस्कार है,

इसका प्रधान क्रिया उच्चारण है । उच्चारण के अनन्तर रूप, कार्य, व्यवहार, आचरणों के आधार पर गुण स्वभावों को पहचानना संभव हो जाता है । यह हर शिशु में कार्यरत जीवन की ही महिमा है । धर्म बोध अध्ययन विधि से सम्पन्न हुआ रहता ही है । गुण, स्वभाव, कार्य-व्यवहार में निहित रहता है । उसके प्रमाणों, साक्ष्यों के आधार पर व्यवस्था अथवा समाधान कारक होना मूल्यांकित होता है । यही मूल्य और मूल्यांकन का महिमा है । उभय तृप्ति पाने का विधि भी यही है। अतएव शिशु, बाल्य, किशोर अवस्थाओं से ही भाई बहनों और मित्रों का नैसर्गिकता और उसकी निरंतरता होने के आधार पर परस्पर मूल्यांकन अति सहज है । मूल्यांकन वास्तविक और सहायतापूर्ण होना स्वाभाविक है । यही पूरकता का परम उद्देश्य भी है । इस विधि से सुस्पष्ट है मित्र एवं भाई-बहन का सम्बन्ध सदा-सदा ही मूल्यांकन प्रणाली में गतित होना पाया जाता है । उभय जागृति के लिये यही सर्वोत्तम प्रणाली है । स्वभाविक रूप में मानव परंपरा में एक भाई को एक बहन, एक मित्र को एक मित्र समीचीन रहता ही है ।

3. मित्र सम्बन्ध - जीवन ज्ञान सम्पन्नता के अनन्तर सुस्पष्ट हो जाता है कि सभी सम्बन्ध जीवन जागृति और उसका प्रमाणीकरण प्रणाली का ही पहचान है । जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सम्पन्न होने के उपरान्त सम्पूर्ण प्रकार के सम्बन्धों, मूल्यों, मूल्यांकनों और उभयतृप्ति का पहचान, स्वीकृति मानसिकता, गति, प्रयोजन पुनः पहचान, मूल्यांकन क्रम आवर्तित रहता ही है

। यह अनुस्युत प्रक्रिया है । जीवन ही दृष्टा-कर्ता-भोक्ता होने का तथ्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन में पारंगत होने के फलन में अस्तित्व में वर्तमानित रहता है । इसी आधार पर मित्र सम्बन्ध परस्पर अभ्युदय के लिये कामना, कार्य, मूल्यांकन करने में समर्थ रहता ही है । मित्र सम्बन्ध में भाई-भाई, बहन-बहन सम्बन्ध के सदृश जाँच, पड़ताल, विश्लेषण, निष्कर्ष, मूल्यांकन सहायक होना पाया जाता है । दूसरे भाषा में सहायक होना ही सार्थकता है। हर सम्बन्ध कम से कम दो व्यक्तियों के बीच होना पाया जाता है । भाई और मित्र सम्बन्ध में समानता है । इसको आमूलतः विश्लेषण करने पर लड़कों के साथ लड़कों की मित्रता, लड़कियों की मित्रता लड़कियों से हो पाता है । क्योंकि आशय बहिन-बहिन और भाई-भाई का ही सम्बन्ध है । इस सम्बन्ध का पावन रूप उभय जागृति, कर्तव्य, दायित्व उसकी गति प्रयोजन और उसका मूल्यांकन विधि से ही मित्रता और भाई-बहन सम्बन्ध सदा-सदा ही मानव परंपरा में पावन रूप में उपकार विधि और उसका शोध, निष्कर्ष को प्रस्तुत करते ही रहेंगे । पावन का तात्पर्य व्यवस्था के अर्थ में है । यही उपकार का स्वरूप है । यद्यपि सभी सम्बन्धों में आशित, इच्छित, लक्षित और वांछित तथ्य समाधान, समृद्धि अभय, सह-अस्तित्व ही है । इस आशय अथवा आवश्यकता की आपूर्ति और इसके सर्वसुलभ होने के लिये समझना-समझाना, करना, कराना, सीखना, सीखाना, ये स्वाभाविक प्रक्रिया है । इसी क्रम में समाज गति, व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी,

स्वाभाविक रूप में मूल्यांकित होती है । ऐसी मूल्यांकन प्रणाली से ही मानव परंपरा में मानवीयतापूर्ण प्रणाली, पद्धति, नीति का दृढ़ता सुख, सुन्दर, समाधान, समृद्धिपूर्वक प्रमाणित होना नित्य समीचीन रहता है । ऐसी सर्ववांछित उपलब्धि के लिये मित्र संबंध अतिवांछनीय होना पाया जाता है ।

4. गुरू-शिष्य सम्बन्ध - इस सम्बन्ध में सम्बोधन का आशय सुस्पष्ट है । एक समझा हुआ, सीखा हुआ, जीया हुआ का पद है दूसरा समझने, सीखने, करके जीने का इच्छा, प्रवृत्ति जिज्ञासा का प्रस्तुति, ऐसे जिज्ञासु को शिष्य अथवा विद्यार्थी कहा जाता है, नाम रखा जाता है, सम्बोधन भी किया जाता है । दूसरे को गुरू आचार्य नाम से सम्बोधित किया जाता है । इस प्रकार गुरू का तात्पर्य प्रमाणिकतापूर्ण व्यक्ति का सम्बोधन । प्रमाणिकता का स्वरूप, समझदारी को समझाने व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में जीते हुए रहते हैं, दिखते हैं । फलस्वरूप मानवीयतापूर्ण आचरण, मानव का परिभाषा हर करनी में, कथनी में व्याख्यायित रहता है । यही गुरू के स्वरूप को पहचानने की विधि है । समझदारी का तात्पर्य सुस्पष्ट हो चुका है जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण में पारंगत रहना । उसका प्रमाण अध्ययन प्रणाली से बोधगम्य करा देना ही समझाने का तात्पर्य है । मानव सहज जागृति परंपरा में स्वाभाविक ही हर अभिभावक जागृत रहना पाया जाता है । घर, परिवार, बंधु-बान्धवों से भी सम्बोधन पहचान सहित कितने भी भाषा बोलने के लिए सीखाए रहते हैं उन सबमें

मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार सूत्रों से अनुप्राणित सार्थक विधि रहेगा ही । जब विद्यार्थी विद्यालय में पहुँचने के पहले से ही मानवीयतापूर्ण संस्कारों का बीजारोपण होना स्वाभाविक है । यही जागृत परंपरा का मूल प्रमाण है ।

शिक्षा-संस्कार में अथ से इति तक मानव का अध्ययन प्रधान विधि से अध्यापन कार्य सम्पन्न होना सहज है । अध्ययन मनुष्य का, मानव में, से, के लिये ही होना दृढ़ता से स्वीकार रहेगा । प्रत्येक मनुष्य के अध्ययन में शरीर और जीवन का सुस्पष्ट बोध सुलभ होना पाया गया है । जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन निबद्ध विधि से अध्ययन सुलभ होने के कारण अस्तित्व मूलक मानव का पहचान, मानवीयतापूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति समेत पारंगत होने की विधि रहेगी । इसी विधि से हर आचार्य विद्यार्थियों को शिक्षण-शिक्षा पूर्वक अध्ययन कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ रहते हैं । जिसमें उनका कर्तव्य और दायित्व प्रभावशील रहना स्वाभाविक है । क्योंकि हर आचार्य शिक्षा, शिक्षण, अध्ययन का प्रमाण स्वरूप में स्वयं प्रस्तुत रहते हैं इसलिये यह सार्थक होने की संभावना अथवा निश्चित संभावना समीचीन रहता है ।

हर आचार्य स्वायत्तता विधि से परिवार में प्रमाणित रहते ही हैं । यही सर्वमानव का वांछित, आवश्यक और नित्यगतिरूप जो अपने आप में सुख-सुन्दर-समाधान है जिसका फलन समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है। जिन प्रमाणों के

आधार पर जीवन तृप्ति ही सुख, शांति, संतोष, आनन्द के नाम से ख्यात है । यही भ्रम-मुक्ति गतिविधि प्रमाण के रूप में हर विद्यार्थी के रूप में समीचीन रहता है । इस प्रकार भ्रम-मुक्त परंपरा का स्वरूप, कार्य, महिमा, प्रयोजन प्रमाण के रूप में रहना ही शिक्षा-संस्कार परंपरा का वैभव अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में गतिशील रहता है ।

प्रत्येक स्वायत्त आचार्य व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी और व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण होना देखा जाता है । फलस्वरूप हर विद्यार्थी ऐसे सुखद, स्वरूप में जीने के लिये प्रवृत्त होना स्वाभाविक है । आदर्श मानव सार्वभौमिकता के अर्थ में स्वायत्त मानव के रूप में ही होना देखा गया । स्वायत्त मानव का शिक्षा-संस्कार विधि से प्रमाणित होना और स्वायत्त मानव का प्रमाण परिवार में होना, परिवार मानव का प्रमाण व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में स्पष्ट किया जा चुका है । इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो चुका है कि सार्वभौम व्यवस्था का संतुलन अखण्ड समाज रचना से और अखण्ड समाज का संतुलन सार्वभौम व्यवस्था से है । इस विधि से शिक्षण संस्था (अध्ययन केन्द्रों) का स्वरूप अभिभावकों से नियंत्रित रहना और अध्ययन केन्द्र (शिक्षण संस्थाओं) का प्रयोजन कार्यकलाप जागृतिपूर्ण आचार्यों से नियंत्रित रहना देखा गया है । इसका तात्पर्य यही है हर अध्ययन केन्द्र में आचार्यों को व्यवसाय में स्वावलंबी रहने के लिये मानवीय आवश्यकता संबंधी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिये योग्य व्यवस्था बनी

रहेगी । उसे सदा-सदा बनाये रखना ही अभिभावकों से नियंत्रित अध्ययन केन्द्रों का स्वरूप है । अध्ययन केन्द्र में स्वाभाविक ही आवश्यकतानुसार भवन, अध्ययन और अध्यापन के लिये आवश्यकीय साधन और आचार्यों को व्यवसाय में स्वालंबन को प्रमाणित करने योग्य कृषि संबंधी, अलंकार संबंधी, गृह निर्माण संबंधी, पशुपालन संबंधी, ईंधन नियंत्रण संबंधी, ईंधन सम्पादन संबंधी, ईंधन नियोजन संबंधी, दूरश्रवण संबंधी, दूरगमन संबंधी और दूरदर्शन संबंधी यंत्र-उपकरणों को निर्मित करने योग्य साधनों को बनाये रखना ही व्यवसाय में स्वालंबन का प्रमाणस्थली के रूप में उपयोगी रहेगा ।

अध्यापन कार्य के लिये धन-वस्तु को विद्यार्थियों को शिक्षित, प्रशिक्षित, अध्ययनपूर्ण कराने के लिए एकत्रित की जाती है । वह अभिभावक समुदाय तय करेंगे, एकत्रित करेंगे । भवन, प्रयोग सामग्री, साधनों को संजोए रखेंगे । इसका नियंत्रण, परिवर्धन, परिवर्तन, नवीनीकरण आदि कार्यों में स्वतंत्र रहेंगे । आचार्य कुल विद्यार्थियों को परिवार-मानव और व्यवस्था-मानव में प्रमाणित होने योग्य स्वायत्त मानव का स्वरूप प्रदान करेंगे जो स्वयं अपने मौलिक अधिकारों का प्रयोग करने में समर्थ हो जायेगा एवं दूसरों को कराएगा, करने के लिये सम्मति देगा ।

अध्ययन संस्थाओं की अभीप्सा, स्वरूप, लक्ष्य, सामान्य क्रिया प्रणाली स्पष्ट हो चुकी है । मानव कुल में समर्पित संतानों

को शिक्षा-संस्कार की अनिवार्यता होना पहले से स्पष्ट है । इसे सार्थक और सुलभ बनाने के क्रम में परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को दस सोपानों में स्पष्ट किया जा चुका है । व्यवस्था की निरंतरता में प्रधान आयाम मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार, पद्धति, प्रणाली, नीति ही है । शिक्षित हर व्यक्ति स्वायत्त होना सहज है । स्वायत्तता ही शिक्षित और संस्कारित व्यक्ति का प्रमाण है । ऐसी स्वायत्तता सर्वमानव स्वीकृत तथ्य है । इसलिये सार्वभौम नाम प्रदान किये हैं। सार्वभौम का तात्पर्य सर्वमानव स्वीकृत है, स्वीकृति योग्य है । मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार पूर्वक स्वायत्त मानव का स्वीकृति परिवार और व्यवस्था में भागीदारी करने के लक्ष्य से स्वीकृत होता ही है । ऐसे सार्वभौम रूप में स्वीकृत मनुष्य ही मौलिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपने को समाधानित और वातावरण को समाधानित करने में निष्ठान्वित रहना स्वाभाविक है । उसके लिये दायित्व और कर्तव्यशील रहना स्वाभाविक है । इन्हीं तथ्यों के आधार पर हर परिवार में समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व वर्तमान में प्रमाणित होता है । व्यवस्था, परिवार और समाज सदा ही वर्तमान में, से, के लिये अपने त्व सहित वैभवित होना है ।

मानवत्व सहित, मानवत्व के लक्ष्य में, स्वायत्त मानव शिक्षापूर्वक स्वरूपित होता है । जिसका प्रमाण परिवार, ग्राम परिवार, विश्व परिवार में भागीदारी के रूप में और परिवार सभा, ग्राम परिवार सभा और विश्व परिवार सभा में भागीदारी को निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है । यही परिवार

मूलक स्वराज्य गति का स्वरूप है ।

जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण सहज अध्ययन, न्याय, धर्म, सत्य प्रमाणित करने योग्य क्षमता, पात्रता को स्थापित करता है। अस्तित्व दर्शन स्वयं विज्ञान का सम्पूर्ण आधार है । अस्तित्व में ही समग्र व्यवस्था सूत्र और कार्य देखने को मिलता है । यही अस्तित्व दर्शन का जीवन जागृति क्रम में होने वाला उपकार है । विज्ञान का काल, क्रिया, निर्णयों की अविभाज्यता और सार्थकता की दिशावाही होना पाया जाता है । घटनाओं के अवधि के साथ काल को एक इकाई के रूप में स्वीकारने की बात मानव की एक आवश्यकता है । जैसे सूर्योदय से पुर्नसूर्योदय तक एक घटना है । यह घटना निरंतर है । निरंतर घटित होने वाला घटना नाम देने के फलस्वरूप उस घटना से घटना तक निश्चित दूरी धरती तय किया रहता है । इसे हम मानव ने एक दिन नाम दिया । अब इस एक दिन को भाग-विभाग विधि से 60 घड़ी, 24 घंटा आदि नाम से विखंडन किया । मूलतः एक दिन को धरती की गति से पहचानी गई थी, खंड-विखंडन विधि से छोटे-से-छोटे खंड में हम पहुँच जाते हैं और पहुँच गये हैं । फलस्वरूप वर्तमान की अवधि शुन्य सी होती गई । धरती की क्रिया यथावत अनुस्यूत विधि से आवर्तित हो ही रही है । इससे पता लगता है मनुष्य के कल्पनाशीलता क्रम से किया गया विखंडन यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता से भिन्न स्थिति में अथवा भिन्न स्थिति को स्वीकारने के लिये बाध्य करता गया।

यह भ्रम, भ्रमित आदमी को और भ्रमित होने के लिये सहायक हो गया । इसका सार तथ्य विखण्डन विधि से किसी तथ्य को पहचानना संभव नहीं है । अथक कल्पनाशीलता मनुष्य के पास, दूसरे नाम से विज्ञानियों के पास हैं ही, और कल्पनाशीलता वश ही विखण्डन प्रवृत्ति के रूप में सत्य का खोज के लिए, जो कुछ भी यांत्रिक, सांकरिक विधि (संकर विधि) प्रयोग किया गया । उन प्रयोगों को काल्पनिक मंजिल मान ली गई । उस मंजिल को अंतिम सत्य न मानने का प्रतिज्ञा भी करते आया । इन दोनों उपलब्धियों को विखण्डन विधि से पा गये ऐसा विज्ञान का सोचना है । गणित का मूल गति तत्व मनुष्य का कल्पना है । प्रयोजन यंत्र प्रमाण है और उसके लिये विघटन आवश्यक है । यही मान्यताएँ है । देखने को यह मिलता है कि किसी यंत्र का संरचना अथवा संकरित पौधा, संकरित जीव-जानवर का शरीर संकरित बीज इन क्रियाकलापों को करते हुए विधिवत संयोजन होना पाया जाता है अथवा किया जाना पाया जाता है ।

अध्ययन क्रम में विश्लेषण एक आवश्यकीय भाग है । हर विश्लेषण प्रयोजनों का मंजिल बन जाना ही विश्लेषण का सार्थकता है । सार्थकताओं का प्रमाण स्वयं मनुष्य होने की आवश्यकता सदा-सदा ही बनी रहती है । इसका स्रोत अस्तित्व में ही है । मानव का प्रयोजन स्रोत भी सह-अस्तित्व ही है । **अस्तित्व में प्रयोजन का स्वरूप व्यवस्था के रूप में वर्तमान है।** और विश्लेषण का स्वरूप सह-अस्तित्व के रूप

में वर्तमान है । **सह-अस्तित्व व्यवस्था के लिये सूत्र है** व्यवस्था वर्तमान सहज सूत्र है । वर्तमान में ही मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को व्यवस्था के फलस्वरूप पाता है । मानव इस शुभ प्रयोजन के लिये अपेक्षित, प्रतीक्षित सा रहता ही है । मानव कुल में सर्वमानव का दृष्ट प्रयोजन यही है । यह सह-अस्तित्व विधि से सार्थक होता है । अस्तु विश्लेषण का आधार और सूत्र सह-अस्तित्व विधि ही है । जैसे सह-अस्तित्व विधि से एक परमाणु एक से अधिक परमाणु अंशों से गति और निश्चित चरित्र सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करता है । यह सह-अस्तित्व प्रवृत्ति परमाणु अंशों में ही होना प्रमाणित होता है । क्योंकि परमाणु अंशों की प्रवृत्ति परमाणु गठन का एकमात्र सूत्र होना पाया जाता है । इस प्रकार हर परमाणु अंश व्यवस्था में वर्तमानित रहना उसमें व्यवस्था स्वीकृत होने का द्योतक है । मूलतः सूक्ष्मतम इकाई का स्वरूप परमाणु अंशों के रूप में होना पाया गया । परमाणु अंश स्वयं स्फूर्त विधि से ही परमाणु के रूप में गठित रहना होना अस्तित्व में स्पष्ट है । अतएव व्यवस्था का मूल सूत्र मनुष्य के कल्पना प्रयास के पहले से ही विद्यमान है क्योंकि ऐसी अनंतानंत परमाणुओं के गठन में मनुष्य का कोई योगदान नहीं है । यहाँ इसे उल्लेख करने का तात्पर्य इतना ही है कि जागृत मानव परंपरा में मानव सही करने, कराने एवं करने के लिये सम्मति देने योग्य होता है । जागृति का प्रमाण गुरू होना पाया जाता है । जागृत होने की जिज्ञासा शिष्य में होना

पाया जाता है । इसके लिये सार्थक विधि, विज्ञान एवं विवेक सम्मत प्रणाली होना है । भाषा के रूप में विज्ञान और विवेक का प्रचलन है ही । किन्तु विज्ञान विधि से चिन्हित सोपान प्रयोजन के लिये स्पष्ट नहीं हुआ । और विवेक विधि से चिन्हित, रहस्य मुक्त प्रयोजन पूर्वावर्ती दोनों विचारधारा से स्पष्ट नहीं हुई । सर्वसंकटकारी घटना का निराकरण हेतु सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व, व्यवस्था रूपी प्रयोजन चिन्हित रूप में सुलभ होता है । यही शिक्षा-संस्कार का सारभूत अवधारणा और बोध है ।

हर अध्यापन कार्य सम्पन्न करने वाला गुरू अपने में पूर्णतया जागृत रहना, जागृत रहने के प्रमाणों को निरंतर व्यक्त करने योग्य रहना आवश्यक है । यही अध्यापन कार्य सम्पन्न करने योग्य व्यक्ति को पहचानने-मूल्यांकन करने का आधार है । अस्तित्व अपने में चारों अवस्थाओं में वैभवित रहना इसी पृथ्वी पर दृष्टव्य है । यह चारों अवस्था परस्परता में सह-अस्तित्व सूत्र में, से, के लिये सूत्रित है । इसी सूत्र सहज महिमा को परमाणु गठन से रासायनिक भौतिक रचना और विरचनाओं को विश्लेषण करना ही काल-क्रिया-निर्णय और उसके प्रयोजनों का स्रोत है । यह काल-क्रिया-निर्णय सहित प्रयोजन संबद्ध होने की आवश्यकता ज्ञानावस्था कि इकाई रूपी मानव का ही प्यास है । यही जिज्ञासा का स्वरूप है । इसी विश्लेषण अवधि में या क्रम में परमाणु में विकास, जीवन, जीवनी क्रम जीवावस्था में, मानव परंपरा में जीवन जागृति क्रम, जागृति, जागृति पूर्णता

उसकी निरंतरता की भी पूरकता एवं संक्रमण विधियों का विश्लेषण स्पष्ट हो जाता है । ऐसा जागृत जीवन ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में कर्ता-भोक्ता होना प्रमाणित हो जाता है । फलस्वरूप मानव में व्यवस्था सहज रूप में जीने, समग्र व्यवस्था में भागीदारी की आवश्यकता अर्हता का संयोगपूर्वक उत्साहित होने का, प्रवृत्त होने का, प्रमाणित होने का कार्य सम्पादित होता है । यही जागृति घटना और उसकी निरंतरता ही विवेक और विज्ञान सम्मत प्रणाली पद्धति नीति का वैभव है । इसकी आवश्यकता सर्वमानव में है । इसकी आपूर्ति मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार विधि से ही सम्पन्न होता है ।

जागृतिपूर्णता उसकी निरंतरता ही गुरूता का तात्पर्य है । यह जागृतिपूर्णता का धारक वाहकता और उसकी महिमा है । इसी के साथ हर मानव में जीवन सहज रूप में जागृति स्वीकृत रहता ही है । जागृति सहज ही अभिव्यक्ति क्रम में आरूढ़ रहता है । आरूढ़ता का तात्पर्य स्वजागृति के प्रति निष्ठान्वित रहने से है । और स्व-जागृति के प्रति निष्ठा स्वयं के प्रति विश्वास का द्योतक है । स्वयं के प्रति विश्वास मूलतः स्वायत्त मानव में प्रमाणित रहता ही है । स्वायत्त मानव का स्वरूप और मूल्यांकन मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार का द्योतक होना पाया जाता है । दूसरे भाषा में प्रमाण होना पाया जाता है । यही सफल, सार्थक, वांछित और अभ्युदयशील शिक्षा है । शिक्षा का परिभाषा भी इसी के समर्थन में ध्वनित होता है । शिक्षा का परिभाषा अपने में शिष्टतापूर्ण दृष्टि का संकेत करता है ।

शिष्टता और सुशीलता ये अपेक्षाएँ सर्वमानव में विद्यमान है । शिष्टता का परिभाषा मानव अपने मानवत्व सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में विश्वास और उसकी अभिव्यक्ति है । सुशीलता का तात्पर्य मूल्य, चरित्र, नैतिकता का अविभाज्य रूप में सभी स्थिति - गतियों में व्यक्त होना ही है । ऐसी शिष्टता हर मनुष्य में, हर मनुष्य से, हर मनुष्य के लिये अपेक्षित रहना पाया जाता है । ऐसी शिष्टता ही सभ्यता का सूत्र है। और संस्कृति सहज गति है । इस प्रकार सभ्यता हर स्थितियों में मूल्यांकित होता है और संस्कृति हर गतियों में चिन्हित और मूल्यांकित होता है । इसी महिमावश अथवा फलवश हर मानव, मानव का परिभाषा सहज विधि से सोचने, सोचवाने, बोलने, बोलवाने और करने-कराने योग्य स्वरूप में प्रमाणित हो जाता है । यह शिष्टता, सुशीलता और परिभाषा एक दूसरे के पूरक होना पाया जाता है । यही समाज गति है । समाज गति का ही दूसरा नाम सार्वभौम व्यवस्था है । इस प्रकार परिवार क्रम में शिष्टता, सुशीलता और परिवार व्यवस्था क्रम में मानव का परिभाषा प्रमाणित होता ही रहता है। इससे यह पूर्णतया स्पष्ट होती है । व्यवस्था क्रम और परिवार क्रम यह अविभाज्य वर्तमान है ।

शिक्षा-संस्कार का परस्पर पूरकता प्रबोधन पूर्वक शिष्टता, सुशीलता और मानवीय परिभाषा सहज मुखरण विधि को बोधगम्य करा देना शिक्षा और उसकी विधि की प्रमाणिकता है । जिसका फलन अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था और उसकी

निरंतरगति है । यही सर्वमानव सर्वशुभ सहज विधि से जीने देने का और जीने का सहज गति है । समाधान और सुख के रूप में पहचानना बनता है ।

सुख ही मानव धर्म होना पाया जाता है और ख्यात भी है । ख्यात का तात्पर्य सर्वस्वीकृत है । यह समाधानपूर्वक ही सर्वसुलभ होना होता है । समाधान सहज नित्यगति सर्वदेशकाल में सम्पूर्ण दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्यों में और आयामों में जागृति सहज मानव में, मानव से, मानव के लिये दृष्टव्य है। अर्थात हर जागृत मनुष्य समाधान को देखने योग्य होता ही है । देखने का तात्पर्य समझने से ही है । समाधान का गतिरूप सदा-सदा मानव परंपरा में ही नियम और न्याय सहज तृप्ति बिन्दु के रूप में पहचाना जाता है । नियम अथवा सम्पूर्ण नियम नैसर्गिकता और वातावरण के साथ प्रभावशील रहना पाया जाता है । न्याय मानव सहज संबंध/मूल्यों के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है । सम्पूर्ण मूल्यों का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन जीवन जागृति का ही महिमा है । दूसरे भाषा से जीवन तृप्ति का ही महिमा है । जीवन तृप्ति; जागृतिपूर्णता और उसकी निरंतरता में ही देखने को मिलती है । यह सर्वमानव का अपेक्षा है । हर परिवार में जागृत अभिभावक जागृतिपूर्ण शिक्षा संपन्न युवा पीढ़ी में सामरस्यता अपने आप परिवार मानव सहज विधि से प्रमाणित होता है । ऐसे सफल परिवार का पहचान, मूल्यांकन सहित गतित रहना ही मानव परंपरा की आवश्यकता, गरिमा, महिमा सहित प्रतिष्ठा है । जागृतिपूर्ण मानव ही गुरूपद में वैभवित होना

स्वाभाविक है । जागृति पूर्णता ही परंपरा में अर्पित हर मनुष्य संतान को जागृत पद प्रतिष्ठा को स्थापित करना सहज है । इस विधि से जागृति परंपरा के अर्थ में शिक्षा-संस्कार सार्थक होना पाया जाता है जिसकी अपेक्षा भी सर्वमानव में होना भी सहज है । शिक्षा-संस्कार, उसकी सफलता का मूल्यांकन स्वायत्त मानव, परिवार मानव के रूप में शिक्षा अवधि में ही मूल्यांकित हो जाता है। मूल्यांकन का आधार भी यही दो मापदण्ड है ।

5. पति-पत्नि संबंध - (विवाह संबंध)- मानव परंपरा में विवाह संबंध अधिकांश लोगों में वांछित है । यह संबंध अपने आप में परस्पर सर्वतोमुखी समाधान सहित विश्वास वहन करने की प्रतिज्ञा पूर्वक आरंभ होने वाला संबंध है। हर संबंधों में विश्वास वहन होना एक अनिवार्य और सामान्य स्थिति है। विवाह सम्बन्ध में भी विश्वास निर्वाह की आवश्यकता है ही । विवाह संबंध में होने वाली शरीर संबंध और उसकी अपेक्षा परस्परता में आयु के अनुसार विदित रहता है । इतना ही नहीं सर्वविदित रहता है । सभी संबंधों में जीवन की भागीदारी समान रूप में विद्यमान रहती है । विश्वास सभी संबंधों में जीवन की ही अपेक्षा है । क्रम से व्यवहार संबंध, व्यवस्था संबंध और शरीर संबंधों को विश्वासपूर्वक ही नियंत्रित किया रहना देखने को मिलता है ।

शरीर संबंध माता-पिता के सम्बन्ध में गर्भाशय और उसमें निर्मित होने वाले शरीर के रूप में गण्य होता है । भाई-बहन के साथ एकोदर अर्थात एक गर्भाशय में निर्मित शरीरों के

रूप में संबंध होना दिखता है । इसी क्रम में प्रत्येक मानव संतान की शरीर रचना में, उसके वैभव में स्वीकृतियाँ बना ही रहता है । हर मित्र संबंध, हर भाई-बहन के सम्बन्ध में शरीर संबंध का स्वरूप कहे गये स्वरूप में ही स्वीकृत रहता है । पति-पत्नी संबंध प्रधानतः गर्भाशय में शरीर रचना कार्य प्रवृत्ति ही होना पाया जाता है । इसी के साथ यौवन सम्पन्नता सहित यौन विचार से होने वाली आवेश मुक्ति के क्रियाकलाप को भी शरीर सम्बन्ध में पहचाना गया है । इस प्रकार शरीर सम्बन्ध का अर्थ विवाह सम्बन्ध से इंगित होने वाली बात स्पष्ट है । यह सामान्य रूप में मनुष्येत्तर प्रकृति और मानव से निर्मित वातावरणों का निरीक्षण विधि से भी शरीर सम्बन्ध विवाह विधि से होने वाला तथ्य इंगित रहता ही है । इसीलिये इसके लिये अलग से कोई शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

विवाह सम्बन्ध में प्रधान मुद्दा अन्य सम्बन्धों के सदृश्य ही विश्वास निर्वाह करना ही है । विश्वास वर्तमान में ही निर्वाह होता है । व्यवस्थापूर्वक ही परस्पर विश्वास होना स्वाभाविक है । व्यक्तित्व और सामाजिकता सूत्र अपने आप में, वर्तमान में, व्यवस्था के रूप में जीने के लिये पर्याप्त स्रोत है। व्यक्तित्व, कायिक-वाचिक, मानसिक, कृत-कारित, अनुमोदित विधियों से वर्तमान में संतुष्ट रहने, पाने का विधि है । हर मनुष्य कायिक-वाचिक, मानसिक रूप में ही सम्पूर्ण कार्य व्यवहारों को सम्पन्न करता है । कायिक, वाचिक, सम्पूर्ण क्रियाकलाप से मानसिक तृप्ति की आवश्यकता हर मनुष्य में, से, के लिये

अपेक्षित रहती है । तृप्त मानसिकता सहित हर मानव कायिक-वाचिक-मानसिक क्रियाकलाप सम्पन्न होता हुआ देखा जाता है । कायिक-वाचिक-मानसिक क्रियाकलाप के मूल में विचार, इच्छा जिसके मूल में सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन के रूप में अनुभवों का वैभव प्रभावित रहना हर मनुष्य में अध्ययनगम्य है ।

शिक्षा-संस्कार सम्पन्न होने के उपरान्त हर व्यक्ति को स्वायत्त और परिवार मानव के रूप में पहचानना स्वाभाविक होता है । परिवार मानव के रूप में ही हर सम्बन्धों का निर्वाह होना, प्रमाणित होना और प्रयोजित होना मूल्यांकित होता है । इसी आधार पर मौलिक अधिकारों को कार्य, व्यवहार, आचरण रूप में प्रमाणित करना ही परिवार मानव की सार्थकता है । परिवार मानव संबंधों में, से एक विवाह सम्बन्ध एक पत्नी, एक पति संबंध है । परिवार मानव का कार्य रूप अपने आप में व्यवस्था में जीना ही है । दूसरी भाषा में मानवीयतापूर्ण परिवार में ही व्यवस्था का प्रमाण सदा-सदा के लिये वर्तमानित रहता है । यही जागृत मानव परंपरा का भी साक्ष्य है । परम्परा में प्रधान आयाम परिवार और व्यवस्था का नित्य प्रेरणा स्रोत शिक्षा-संस्कार ही होना पाया जाता है । अतएव स्रोत और प्रमाण के संयुक्त रूप में ही अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र प्रतिपादित होता है । निष्कर्ष यही है परिवार में ही समाज सूत्र और व्यवस्था सूत्र कार्य, व्यवहार, आचरण रूप में प्रमाणित होना ही मानव परंपरा का वैभव है । यही

मानवीयतापूर्ण परिवार का तात्पर्य है । इसी में समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व का प्रमाण प्रसवित होता है । इस क्रम में हर परिवार में समाधान और समृद्धि का दायित्व, कर्तव्य, आवश्यकता और प्रयोजन परिवार के सभी सदस्यों में स्वीकृत होना और प्रभावशील रहना ही अथवा प्रमाणित रहना ही परिवार की महिमा और गरिमा है । मानवीयता पूर्ण परिवार का अपने परिभाषा में भी यही तथ्य इंगित होता है जैसा परिवार में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर सदस्य एक दूसरे के संबंधों को पहचानते हैं; मूल्यों का निर्वाह करते हैं और मूल्यांकन करते हैं । फलस्वरूप उभयतृप्ति एक दूसरे के साथ विश्वास के रूप में जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह के रूप में प्रमाणित होती है । यही परिवार सहज गतिविधि का प्रधान आयाम है । इसी के साथ दूसरा आयाम परिवार में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर सदस्य परिवारगत उत्पादन कार्य में भागीदारी का निर्वाह करते हैं । फलस्वरूप परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना पाया जाता है । जिससे समृद्धि का स्वरूप सदा-सदा परिवार में बना ही रहता है । इसीलिये परिवार और ग्राम परिवार, परिवार समूह और परिवार के रूप में जीने की कला अपने आप में प्रसवित होती है। समृद्धि के साथ समाधान, सम्बन्धों, मूल्य, मूल्यांकन के आधार पर बनी ही रहती है । समाधान और समृद्धि सूत्र परिवार में विश्वास के रूप में प्रमाणित होता ही है । इसी आधार पर विशालता की ओर विश्वास के फैलाव की आवश्यकता निर्मित होती है । यही

सह-अस्तित्व के लिये सूत्र है। इस प्रकार से परिवार और व्यवस्था का दूसरे भाषा में परिवार मूलक विधि से व्यवस्था का संप्रेषणा प्रकाशन सर्वसुलभ हो जाता है । ऐसी सर्वसुलभता मानवीय शिक्षा-संस्कार स्वरूप ही हो पाता है । यही शुभ, सुंदर, समाधानपूर्ण परिवार विधि है।

विवाह संबंध को स्वीकारा गया और प्रतिबद्धता पूर्वक अर्थात संकल्प पूर्वक निर्वाह करने के लिये मानसिक तैयारी सहित घोषणा और सत्यापन कार्यक्रम विवाहोत्सव का स्वरूप है । इसी आशय को गाकर व्यक्त किया जाता है । सम्भाषण, संबोधन और सम्मति व्यक्त करने के रूप में उत्सव सम्पन्न होता है । इसी के साथ-साथ दांपत्य संबंध के साथ-साथ एक परिवार मानव सहज दायित्वों, कर्तव्यों सहित मानव सहज उद्देश्य, जीवन सहज उद्देश्य के लिये अर्हिनिशी समझने, सोचने, करने, कराने के लिये, मत देने के लिये संकल्प किया जाता है । विवाहोत्सव में भागीदारी निर्वाह करता हुआ हर व्यक्ति दांपत्य जीवन सफल होने की कामना सहित सम्मतियों को व्यक्त करने के रूप में प्रस्तुत होना सहज होता है । दाम्पत्य संबंध में सत्यापित व्यक्ति से कम अवस्था वाले जो भागीदारी निर्वाह किये रहते हैं वे सब नव दंपतियों के जीने की कला, विचार शैली और अनुभवों से सदा-सदा प्रेरणा पाने के लिये कामना व्यक्त करने के रूप में उत्सव में भागीदारी को निर्वाह करना सहज है । इस प्रकार उत्सव में सम्मिलित सभी आयु वर्ग के व्यक्तियों की भागीदारी अपने आप स्पष्ट होती है । यही

विवाहोत्सव का तात्पर्य है ।

मानव सहज जागृति प्रभाव विशालता की ओर गतिशील होना स्वाभाविक है । जैसा मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार एक परिवार में परिवार का विरासत न होकर सम्पूर्ण विश्व मानव का स्वत्व होना पाया जाता है । इसीलिये मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार सार्वभौम होना सहज है । इसी प्रकार न्याय-सुरक्षा, उत्पादन-कार्य, विनिमय-कोष, स्वास्थ्य-संयम क्रियाकलाप भी सार्वभौम होता ही है । इन पांचों आयाम का सार्वभौम रूप में वर्तमान होना ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का द्योतक है । दाम्पत्य संबंध ऐसी व्यवस्था में भागीदारी का संकल्पोत्सव होना पाया जाता है, ऐसे संकल्प का प्रमाण समाधान और समृद्धि का स्वरूप ही है । यही परिवार मानव का लक्ष्य और आवश्यकता है ।

सतर्कता सहज विधि से शिष्टतापूर्ण भाषा शैली, कार्यों को करने में दक्षता की घोषणा और स्वीकृतियां विवाहोत्सव में व्यक्त करने का, सत्यापित करने का कार्यक्रम है । विवाहोत्सव की अभिव्यक्ति में एक आयाम संबंधों को पहचानने, मूल्यों को निर्वाह करने (परिवार सहज सभी संबंध) मूल्यांकन करने (उभय तृप्ति के लिये) में अपने पूर्णता और निष्ठा को सत्यापित करना है । तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा करने में अपने परिपूर्णता की घोषणा और सुरक्षा करने में निष्ठा को सत्यापित करना विवाहोत्सव में एक आवश्यकता है । परिवार सहज संपूर्ण मर्यादा यथा सर्वतोमुखी समाधान और समृद्धि को

बनाये रखने में अपने निष्ठा को सत्यापित करना विवाहोत्सव में एक आवश्यकीय आयाम है । मानवीयतापूर्ण चरित्र में स्वयं को पारंगत होने उसमें निष्ठा को सत्यापित करना विवाहोत्सव का एक आयाम है।

विवाह संबंध स्वाभाविक रूप में विभिन्न परिवारों में से अर्पित मानव संतान के साथ घटित होना स्वाभाविक है । यह भी मानव परंपरा में एकता का एक आयाम है । मानव परंपरा में एकता का चार आधार देखने को मिलता है । राज्य, धर्म, रोटी, बेटी, बेटा का संबंध में स्वीकृति ही मानव में एकता का संपूर्ण स्वरूप है ।

राज्य और धर्म अविभाज्य रूप में वर्तमान होना देखा गया है । **स्वराज्य को मानव सहज मानवत्व केन्द्रित व्यवस्था के रूप में पहचाना गया।** मानवत्व अपने आप में मानव का परिभाषा, आचरणों में जीवन जागृतिपूर्वक प्रमाणित होना देखा गया है । इसके मूल में अर्थात जागृति के मूल में जीवन ही दृष्टा, कर्ता, भोक्ता रूप में होना पूर्णतया देखा गया, इसी कारणवश मानव अपने परिभाषा के रूप में, आचरण के रूप में होने के फलस्वरूप व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी का कार्यकलाप परंपरा के रूप में सदा-सदा के लिये होना समीचीन है । मानव जागृति भी समीचीन तथ्यों में, से, के लिये होना स्पष्ट है । इसी विधि से व्यवस्था धर्म और राज्य का संयुक्त स्वरूप होना स्पष्ट है; क्योंकि व्यवस्था में भागीदारी क्रम

में परिवार और व्यवस्था समाहित रहता ही है । परिवार विधि से विश्व परिवार तक समाज रचना स्वरूप परिवार सभा व्यवस्था से विश्व परिवार सभा तक ये सभा रचना का होना सहज है । सभा और परिवार रचना का सार्थकता आवश्यकता और प्रमाण केवल व्यवस्था ही है । इसको ऐसा भी कहा जा सकता है परिवार सहज रूप में भी व्यवस्था है । सभा सहज रूप में भी व्यवस्था प्रमाणित होता है । तीसरी विधि से हर परिवार व्यवस्था अपेक्षा और आवश्यकता से संपृक्त रहता है । हर सभा व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाणों को प्रस्तुत करना चाहता है । इस प्रकार सभा, परिवार-सभा व्यवस्था केन्द्रित होना अथवा व्यवस्था लक्षित होना पाया जाता है । इस प्रकार सभा ही परिवार, परिवार ही सभा के रूप में होना पाया जाता है । इन्हीं में भागीदारी क्रम में संपूर्ण संबंधों का विषद व्याख्या पहले हो चुका है । परिवार संबंधों में, से एक संबंध के रूप में विवाह संबंध भी सफल होना अति आवश्यक है । यह हर परिवार मानव निर्वाह करता है और परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होने के लिए स्वायत्त मानव के रूप में मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार विधि से संपन्न होना देखा गया है । अतएव विवाह संबंध परिवार के रूप में प्रमाणित होना मौलिक आधार व अधिकार का एक आयाम है । जैसा अन्य संबंधों का निर्वाह भी मौलिक अधिकार के रूप में व्याख्यायित होता है । इस प्रकार हर विवाह संबंध मानवीयतापूर्ण परिवार के साथ आयोजित होना एक स्वाभाविक क्रिया है । यह क्रिया विधि भी मानव में

एकता का सूत्र को विशालता की ओर गतित होता है ।

विवाह संबंध के साथ-साथ स्वाभाविक रूप में रोटी की एकता अपने आप स्पष्ट होती है । इसकी परम आवश्यकता है । हर मानवीयतापूर्ण परिवार में हर जागृत मानव परिवार सहज भोज में भागीदार होना अतिथि के रूप में स्वीकार्य जागृत मानव परंपरा में कोई व्यक्ति बिना आमंत्रित अथवा बिना प्रयोजन के किसी के परिवार में जाने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है । हर मानव परिवार विधि से आमंत्रित अथवा संयोजित रहना बन पाता है और सभा विधि से संयोजित और प्रयोजित कायार्थ ही एक दूसरे के अतिथि होना पाया जाता है । अतिथि का तात्पर्य ही आमंत्रणपूर्वक सहभोज करना । इस प्रकार से रोटी और बेटी का संबंध विशालता क्रम में सार्थक होना दिखाई पड़ती है । यह सार्थकता परिवार मानव विधि से और व्यवस्था मानव विधि से सम्पन्न होना जागृत परंपरा सहज मानव में, से, के लिये एक शिष्टता पूर्णगति है । इस प्रकार धर्म राज्य व्यवस्था सभा और परिवार विधि से व्यवस्था के रूप में संबंधित होने जिसके व्यवहारान्यवन क्रम में रोटी और बेटी का एकरूपता अथवा, विशालता, अपने आप स्पट हो चुकी है । अतएव जागृत मानव परंपरा में उक्त चारों विधाओं में अर्थात रोटी, बेटी में एकता और राज्य और धर्म में एकता का अनुभव होना हर व्यक्ति के लिये आवश्यक है । इसका अभिव्यक्ति हर मानव का, मानव परिवार का मौलिक अधिकार है । इन्हीं मौलिक अधिकारों को प्रमाणित करने के क्रम में ही सभी

मनुष्य अपने आपको इन चारों विधाओं में स्वयं स्फूर्त विधि से अर्थात जागृतिपूर्वक गतिशील होने मानव सहज प्रवृत्ति है।

6. व्यवस्था संबंध - व्यवस्था में जीने का प्रमाण परिवार में होता है । समग्र व्यवस्था में भागीदारी का क्रम में व्यवस्था संबंध को पहचानने की आवश्यकता उत्पन्न होती है । जैसा परिवार में न्याय, सुरक्षा का प्रमाण संबंध, मूल्य, मूल्यांकन तन, मन, धन का सदुपयोग सुरक्षा विधि से प्रमाणित हो जाता है । यही परिवार मानव का मानवीयतापूर्ण परिवार का परिभाषा है । इसीलिये परिवार में परस्पर संबोधन पहले कही हुई पिता-पुत्र, भाई-बहन, मित्र, गुरू, शिष्य, पति-पत्नि, माता-पिता इन संबंधों में संबोधन सहज संबध चिन्हित होती है और उत्पादन कार्य में भागीदारी प्रमाणित रहता ही है। हर परिवार में वस्तुओं का उपयोग, सदुपयोग भी साक्षित रहती है । विनिमय कार्य के लिये और विशाल संबंध की आवश्यकता बनी रहती है । एक परिवार की आवश्यकता जितने प्रकार की वस्तुओं की बनी रहती है उनमें से कुछ वस्तुओं को किसी भी परिवार में उत्पादित होना स्वाभाविक है विनिमयपूर्वक एक परिवार में उत्पन्न वस्तु को दूसरे परिवार प्राप्त कर लेना ही वस्तुओं का आदान प्रदान का तात्पर्य है । इस विधि से विनिमय एक आवश्यकीय क्रियाकलाप है; यह स्पष्ट हो जाता है । व्यवस्था के आयामों में विनिमय एक आयाम है । व्यवस्था रूप में ही संपूर्ण आयाम सहित परंपरा स्पष्ट होती है यथा मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार परंपरा अन्य सभी चार आयामों के लिये श्रोत

और संतुलन सूत्र होना पाया जाता है । हर आयाम मानव अपने संतुलन पूर्वक कार्य व्यवहार करने के क्रम में हर सूत्र व्याख्यायित हो जाता है। यथा मानवीय शिक्षा-संस्कार में ये देखने को मिलता है कि यर्थाथता, वास्तविकता, सत्यता रूप में समझा हुआ को संस्कारों के रूप में; किया हुआ को प्रमाणों के रूप में दूसरी भाषा में जिया हुआ को अथवा जीने की विधि को प्रमाण के रूप में देखा जाता है । समझने का जो कार्यक्रम है जिसमें समझाने वाली क्रिया समाहित रहती हैं यही संस्कार का कारण है यह अध्ययनपूर्वक सम्पन्न होना पाया जाता है ।

शिक्षा-संस्कार ही परस्परता में संतुलन विधि से प्रमाणों का सूत्र और जीने की विधि में उसका व्याख्या स्वाभाविक रूप में संपन्न होती है । यही शिक्षा शिक्षण और संस्कार में संतुलन का तात्पर्य है अर्थात् हर व्यक्ति में समझा हुआ सभी समझदारी जीने की कला में प्रमाणित होना है । समझदारी का संपूर्ण स्वरूप जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का होना पाया जाता है । व्यवस्था क्रम में ही न्याय सुरक्षा अपने में संतुलन को प्रमाणित होना एक अनिवार्यता है । न्याय का स्वरूप संबंध मूल्य मूल्याँकन उभय तृप्ति के रूप में देखने को मिलता है । सुरक्षा का स्वरूप जिसके साथ वस्तुओं का सदुपयोग हुआ रहता है वह उसका सुरक्षा को प्रमाणित किया रहता है । इस क्रिया का मूल श्रोत संबंधों में विश्वास ही है । यह अस्तित्व

सहज सह-अस्तित्व का वैभव है । इससे स्पष्ट है कि जागृत मानव तन, मन, धन सहित ही संपूर्ण संबंधों के साथ प्रमाणित होना पाया जाता है । जागृत मानसिकता का तात्पर्य अनुभव मूलक विधि से कार्य करने, अनुभवगामी विधि से फलित होने का क्रियाकलाप; क्योंकि संपूर्ण अनुभव मूलक क्रियाकलाप स्वाभाविक रूप में अनुभवगामी विधि से आर्वतित होना देखा गया है । अनुभव जीवन सहज परम जागृति का नाम है । इसका संपूर्ण स्वरूप जीवन ज्ञान में परिपूर्णता, अस्तित्व दर्शन में पूर्णता और मानवीयतापूर्ण आचरण में परिपूर्णता के स्वरूप में देखने को मिलती है; और भले प्रकार से देखा गया है । अस्तु मानव परंपरा में अनुभवमूलक प्रणाली से अनुभवगामी प्रणाली सहज आर्वतनशीलता वश ही न्याय सुलभता व तन, मन, धन का सुरक्षा अपने आप में सदुपयोग सहित प्रमाणित हो जाता है । तन, मन, धन का सदुपयोग का तात्पर्य ही है सम्बन्धों का निर्वाह ।

तन, मन, धन हर मनुष्य में प्रमाणित वैभव सहज तथ्य है । हर जागृत मानव, जागृत परिवार मानव सहज रूप में अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा करने में समर्थ रहता ही है यह समर्थता ही मौलिक अधिकार के रूप में ज्ञात होता है । संपूर्ण मौलिक अधिकार जागृति के सहित प्रमाण के रूप में देखने को मिलता है । ऐसी जागृति शिक्षा-संस्कार विधि से ही सम्पन्न होना स्पष्ट है । संपूर्ण प्रकार के अभ्यास भी प्रकारान्तर से समझने का अथवा समझदारी में परिपूर्णता संपन्न होने का

क्रियाकलाप है । परिपूर्णता का परीक्षण मनुष्य के हर कार्य व्यवहार, विचारों में स्पष्टतया मूल्यांकित होता है। इसे प्रत्येक मनुष्य अपने ही क्रियाकलापों विचारों के निरीक्षण, विधि से स्पष्ट करता है । यथा किया गया परिणाम, सोचा गया की दिशा स्वयं में ही स्पष्ट होना देखा गया है । यही विश्लेषण का तात्पर्य है । यह वैभव अथवा महिमा हर मनुष्य में प्रचलित रूप में संपन्न होता हुआ प्रमाणित होता है । इसका मूल कारण जीवन ही दृष्टापद प्रतिष्ठा संपन्न रहना है । प्रत्येक मानव जीवन सहित ही मनुष्य संज्ञा में अथवा मानव संज्ञा से संबोधित है ।

दृष्टा पद का प्रमाण ही है जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना; यह हर मानव में स्वीकृत है, अपेक्षित है । यह जागृति पूर्वक सफल होता है । अतएव मनुष्य दृष्टा पद जागृति प्रतिष्ठावश ही निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण कार्य संपन्न करता है । फलस्वरूप मानवत्व सहित जीने का प्रमाण वर्तमानित होता है । इसी क्रम में तन, मन, धन का सदुपयोग, सुरक्षा, स्वाभाविक कार्य होने के कारण सदुपयोग विधि से सुरक्षा प्रमाणित होती है; और सुरक्षा-विधि से सदुपयोग प्रमाणित होता है । यही न्याय-सुरक्षा का, संतुलन का तात्पर्य है । सदुपयोग और सुरक्षा करने की संपूर्ण संभावना, मानव परंपरा में प्राकृतिक ऐश्वर्य के रूप में देखने को मिलता है । प्राकृतिक ऐश्वर्य नैसर्गिकता के रूप में समीचीन है । मानव परंपरा संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था के रूप में समीचीन है । संस्कृति क्रम में शिक्षा-संस्कार ही प्रधान मुद्दा है और सभ्यता में इसी शिक्षा-संस्कार

का प्रमाणपूर्वक पोषण विधि प्रमाणित होती है; यह एक आचरण का ही स्वरूप है । इसी के साथ नैसर्गिकता समीचीनता अपने आप में ऋतु-संतुलन के रूप में वर्तमानित रहना ही उसकी सार्थकता है और मानव के लिये अपरिहार्यता है । इसे सुरक्षित रखना मानव का मौलिक अधिकार है । इस प्रकार मानवीयतापूर्ण पद्धति, सभ्यता रूपी मानवीय आचरण ही मौलिक अधिकारों के रूप में विभिन्न आयामों में विभिन्न सार्थक अर्थों में प्रायोजित होना पाया जाता है । इस प्रकार अर्थ का सदुपयोग ही सुरक्षा को प्रमाणित करता है । यही संतुलन का तात्पर्य है । ऐसी न्याय-सुरक्षा क्रम में उत्पादन-कार्य एक आयाम है ।

उत्पादन-कार्य प्रणाली, पद्धति, नीति सहज विधि से व्यवस्था का अंगभूत होना पाया जाता है । उत्पादन-कार्य के मूल में पायी जाने वाली समझदारी, उसमें नियोजित होने वाली संपूर्ण प्रकार की तकनीकी, विधि, कार्य अर्थात् क्रियान्वयन के फलन में हर प्रकार के उत्पादनों को सफल बनाना मानव सहज कार्यों में से एक कार्य है । उत्पादन-कार्य विधि से ही सामान्यकांक्षा और महत्वाकांक्षा संबंधी संपूर्ण वस्तु या उपकरणों को मानव अपने स्वयं प्रेरित विधि से पा लेना ही उत्पादन कार्य का लक्ष्य है । यही समृद्धि का आधार होना पाया जाता है और स्रोत होना भी पाया जाता है । इसमें कार्य और मानसिकता का संतुलन ही सफलता का स्रोत है । हर विधा में संतुलन अपने आप में समाधान रूप में गण्य होता है । व्यवस्था का

तात्पर्य ही बहुआयामी समाधान, लोकव्यापीकरण, उसकी निरंतरता है । क्योंकि जागृति परंपरा पीढ़ी से पीढ़ी के लिये ही स्थापित और कार्यरत होना स्वाभाविक है। और पीढ़ी के बाद पीढ़ी में भागीदारी के लिये अर्पित हर मानव संतान जागृति सहज अपेक्षा संपन्न रहता है अर्थात जीवन जागृति के लिये ही मानव संतान मानव परंपरा में अर्पित होता है । इसे सफल बनाना ही मानव परंपरा का परम उद्देश्य है । फलतः संपूर्ण आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य और देश-कालों में मौलिक अधिकार संपन्न होना सहज हो जाता है। फलस्वरूप मौलिक अधिकार का प्रयोग व्यवस्था के रूप में प्रमाणित हो जाता है अथवा व्यवस्था के अंगभूत रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है । अस्तित्व में ही शरीर रचना-विरचना क्रम और परमाणु में विकासपूर्वक जीवन प्रतिष्ठा, जागृति क्रम और जागृति विधिवत होना देखने को मिलता है । फलस्वरूप, जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का वर्तमान पहचानने को मिलती है । मानव परंपरा में जागृति प्रमाणित होना मौलिक अधिकार का मूलसूत्र है । जागृति का प्रमाण हर आयामों में मानव स्वयं स्फूर्त विधि से व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होना ही है । यही अस्तित्व सहज विधि मानव सहज अपेक्षा का संतुलन है । हर संतुलन आवर्तनशीलता के स्वरूप में प्रमाणित होना पाया जाता है । अतएव उत्पादन के लिए मानसिकता और कार्य का संतुलन आवश्यक है । इसकी आवर्तनशीलता में ही उत्पादन कार्य में सफलता गुणवत्ता और

शीघ्रता का संयोग होना पाया जाता है; यही सफलता के अनन्तर पुनः सफलता की ओर गति है ।

हर परिवार में संपादित किया गया उत्पादित वस्तुओं को विनिमय-कोष विधि से गतित होना एक अनिवार्य स्थिति है । संपादन का तात्पर्य पूर्णता और उसकी निरंतरता के अर्थ में अर्पण, समर्पण सहज उपयोगी वस्तुओं से है । विनिमय का कार्यरूप और गतिरूप किसी एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु को प्राप्त कर लेने का क्रियाकलाप है । ऐसे क्रियाकलाप के लिए भंडारण एक आवश्यकीय प्रक्रिया है । हर ग्राम में उसकी आवश्यकता के अनुरूप भंडारण विधि को, प्रक्रिया को और तादाद को पहचानते हुए विनिमय कार्य को गति प्रदान करना भी व्यवस्था और व्यवस्था गति का एक आयाम होना पाया जाता है । ऐसे विनिमय कार्य में स्वाभाविक रूप में आधार सूत्र श्रम नियोजन के आधार पर वस्तु मूल्य को पहचानने की विधि से श्रम मूल्य का ही विनिमय करना मनुष्य सहज होना देखा गया है । इसी क्रम में संपूर्ण मानव परिवार विनिमय कार्य को निर्वाह करने का अवसर, आवश्यकता और उसका प्रयोजन सार्थक होता है । **विनिमय कार्य सार्थक होने का तात्पर्य लाभ हानि मुक्त विधि से प्रत्येक वस्तु श्रम मूल्य सहज विधि से मूल्यांकन सहित आदान प्रदान होने से है ।** प्रत्येक मानव अपना शोषण नहीं चाहता है, इस प्रकार सर्वमानव शोषण नहीं चाहता है । जागृति पूर्वक लाभ-हानि मुक्त विनिमय व्यवस्था सार्थक होता है । यह मानव परंपरा में

मौलिक अधिकार है । हर परिवार अपने आवश्यकता से अधिक उत्पादन, श्रम-मूल्य, मूल्यांकन और उभय तृप्ति विधि से विनिमय कार्य को संपन्न करना अर्थात वस्तु का आदान प्रदान करना मौलिक अधिकार पाया जता है । विनिमय कार्य में प्रधानसूत्र श्रममूल्य का मूल्यांकन करना ही है । विनिमय सुलभता का अर्थ में सभी प्रकार के सार्थक आवश्यकीय वस्तुएं कोष के रूप में सतत्-सतत् बनाए रखना कोष कार्य का गति है । कोष विनिमय को संतुलित बनाये रखता है । फलस्वरूप श्रम मूल्य का मूल्यांकन कलामूल्य और उपयोगिता मूल्य के आधार पर संपन्न होना पाया जाता है जिसके आधार पर हर परिवार अपने समृद्धि को व्यक्त करने में समर्थ हो पाता है ।

परिवार में स्वायत्त मानव का ही भागीदारी होना जागृत परम्परा सहज गतिविधि है । इसका संपूर्ण गति व्यवस्था सहज पांचों आयामों में होना पाया जाता है । परिवार मानव ही व्यवस्था और समाज का बीज रूप होना देखा गया । स्वायत्त मानव जागृतिपूर्ण परंपरा सहज शिक्षा-संस्कार का फलन के रूप में होता देखा गया । स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाण है । परिवार मानव ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का बीजरूप है यही मुख्य बिन्दु है । इसी आधार पर मौलिक अधिकारों का प्रयोग सर्व सहज अभिव्यक्ति संप्रेषणा, प्रकाशन, अनुभव, बोध, व्यवहार और व्यवस्था के रूप में स्पष्ट हो जाती है । इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राज्य और धर्म एक दूसरे के पूरक होते हैं; समाज ही धर्म का स्वरूप है;

व्यवस्था ही राज्य है; धर्म का संतुलन राज्य से, राज्य का संतुलन धर्म से होना स्पष्ट किया जा चुका है । धर्म का स्वरूप ही अखण्ड समाज है । अखण्ड समाज सूत्र से सूत्रित परिवार है । इस विधि से जागृत परिवार सूत्र से सूत्रित अखण्ड समाज है । इसी प्रकार परिवार अपने में एक व्यवस्था, प्रसन्नता और उत्साह का मुखरण है । ऐसी मुखरण समाधान समृद्धि का फलन होना देखा गया है। निरंतर उत्साह समाधान और उसकी निरंतरता के आधार पर बहती रहती है । इसीलिये जागृत मानव इसे व्यक्त करने योग्य होता है । यह मौलिक अधिकार का ही मूल रूप है।

1. श्रममूल्य के आधार पर विनिमय-कोष कार्यक्रम परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का अंगभूत होना; जीवन जागृतिपूर्ण विधि का ही अभिव्यक्ति है ।

2. जीवन जागृति पूर्वक ही श्रम मूल्य का मूल्यांकन हर उत्पादित वस्तुओं का उपयोगिता, कला मूल्य के आधार पर निर्धारित होता है ।

3. श्रम नियोजन श्रम विनिमय प्रणाली में प्रतीक वस्तुओं या मूल्यों का दखलांदाजी बनाम हस्तक्षेप नहीं होती । दूसरे विधि से इसकी आवश्यकता ही शून्य हो जाती है।

4. प्रतीक मुद्रा में भ्रमित मानव का कल्पना भ्रमपूर्वक किया गया सभी निर्णय स्थिर नहीं हो पाते इसीलिये

प्रतीक मुद्रा और वस्तु का मूल्य ही अस्थिर हो जाता है।

5. प्रतीक मुद्रा के साथ ही अमानवीयता वश द्रोह-विद्रोह, शोषण, तस्करी की घटनाएं हो पाती हैं । प्रतीक वस्तु कोई धातु होना देखा गया प्रतीक मुद्रा, धातु मुद्रा और पत्र मुद्रा के रूप में देखा गया । यह दोनों प्रकार की मुद्रा प्रणाली में स्थिरता निश्चयता सिद्ध नहीं हो पाती इन सब कारणों से मानव कल्पित होना स्पष्ट हो जाता है ।

जागृति पूर्वक ही मानव अस्तित्व सहज सह-अस्तित्वपूर्ण पद्धति, प्रणाली नीतिपूर्वक नियति सहज प्रमाण होना देखा जाता है । हर मनुष्य में श्रम शक्तियां जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में नियोजित होना देखा जाता है । संपूर्ण उत्पादन का उद्देश्य महत्वाकांक्षा सामान्य आकांक्षा की वस्तुओं के स्वरूप में देखा जाता है । उत्पादित हर वस्तु आदिकाल से अभी तक समान रूप में उपयोगी होना पाया जाता है । जैसा आहार वस्तुएं आदिकाल से अभी तक क्षुधानिवृत्ति के उपयोग में प्रयोजित होना प्रमाणित है । आवासीय वस्तुएं आदिकाल से शरीर संरक्षण के अर्थ में उपयोगी रहा है । अभी भी उतना वैसा ही उपयोगी होना देखने को मिलता है । अलंकार वस्तुएं आदिकाल से जैसा शरीर संरक्षण और प्रसाधनों के प्रयोजन में प्रयोजित होता रहा है वैसे आज भी उपयोगी होना देखा जाता

है । और आगे जबसे दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन संबंधी वस्तुएं और उपकरणों को उत्पादन कर पाया है इसका उपयोग कान, आँख पैर के गतियों को सर्वाधिक बढ़ाया हुआ दिखाई पड़ती है । दूरगमन के लिये सर्वप्रथम पैर को उपयोग किया दो पैर वाला आदमी जितना जल्दी चल सकता है जितना धीरे चलता है आंकलन किया । इसी प्रकार कान से दूर-दूर तक सुनने और देखने की इच्छा रहा । इन्हीं कारणों से मानव का सतत प्रयास सह-अस्तित्व सहज संयोजन कुशलता निपुणतावश इन तीनों विधा में गति आवश्यकीय गति अथवा सर्वाधिक गति संपन्न यंत्र प्रणालियों को मानव ने प्राप्त कर लिया है ।

इस प्रकार महत्वाकांक्षा संबंधी वस्तुओं का उपयोग स्पष्ट हुआ । जिस प्रणाली से जिसका जितना गति होना है वह निश्चित रहता ही है । इसी निश्चयतावश मानव उपयोग करने में उत्सुक है । सामान्याकांक्षा सहज वस्तुओं में पहले से ही निश्चयी रहा है । इस प्रकार उत्पादित वस्तुओं में उपयोगिता मूल्य सर्वथा निश्चित रहने के कारण इसकी ध्रुवतावश मूल्यांकन में निश्चयता स्वाभाविक रूप में संपन्न होना पाया जाता है ।

उक्त विश्लेषण में श्रम नियोजन पूर्वक स्थापित उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य को पहचानना और मूल्यांकित करना जागृत मानव में, से, के लिये आवश्यकता, अपेक्षा और उपलब्धि है :-

1. यह सर्वमानव अपेक्षा होने के तथ्य को इस प्रकार

सर्वेक्षण कर सकते हैं कि किसी भी वस्तु को उसके उपयोगिता के आधार पर श्रम मूल्य का मूल्यांकन करना चाहिए या पत्र मुद्रा के आधार पर करना चाहिए ?

2. उपयोगिता को अर्थात् सामान्यकांक्षा, महत्वाकांक्षा संबंधी उपयोगिता को वस्तुओं में पहचाना जा सकता है । कागज को छापकर ढेर करने से क्या पहचाना जा सकता है ?

3. संपूर्ण आवश्यकताएँ वस्तु व उसकी उपयोगिता के आधार पर उपयोगी होता है या ढेर सारे प्रतीक मुद्रा, पत्र मुद्रा से ? इसका उत्तर क्या होगा अपने में, से हर व्यक्ति उत्तर देकर देखे वही सबका उत्तर है । इसीलिये मानव उपयोगिता और सुन्दरता को स्थापित करने में, से, के लिये हर व्यक्ति स्वतंत्र होना मौलिक अधिकार है। इसी आधार पर हर परिवार में समृद्धि की संभावना समीचीन रहता ही है ।

हर स्वायत्त मानव व्यवसाय में स्वावलंबी, व्यवहार में सामाजिक होने में पारंगत, कुशल और निपुण रहना पाया जाता है । पारंगत का तात्पर्य परस्पर मनुष्य प्रकृति में जागृत सहज स्वभावों, गुणों, कार्यगति और व्यवहारगति और उसके परिणामों का आंकलन करने और उसका मूल्यांकन करने के अधिकार से इसके प्रयोग विधि से स्वयं प्रतिष्ठित होना पाया जाता है ।

ऐसी प्रतिष्ठा सर्वमानव की अपेक्षा है इसका भी सर्वेक्षण

होना सहज है । **निपुणता का तात्पर्य** प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपयोगिता मूल्य और कलामूल्य को स्थापित करने का सामर्थ्य और उसका क्रियान्वयन और मूल्यांकन से है । **कुशलता** का तात्पर्य प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपयोगिता मूल्य को स्थापित करने और उसका मूल्यांकन करने के प्रमाणों से है । इस विधि से सर्वाधिक सामान्यकांक्षा संबंधी विशेषकर संपूर्ण उत्पादन का कार्य स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । मूल्यांकन कार्य में ये देखा गया है कि -

1. स्वायत्त मानव बनाम निपुणता, कुशलता, पांडित्य संपन्न मानव + प्राकृतिक ऐश्वर्य बनाम नैसर्गिकता + हस्तलाघव + मानसिकता का संयुक्त रूप में संपूर्ण उत्पादन मानव में, से, के लिये होना देखा गया है । हस्त लाघव का तात्पर्य सभी (पांचो) ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय से निपुणता, कुशलता, पांडित्य रूपी कार्य करने से है । ज्ञानेन्द्रिय का तात्पर्य शब्दों को सार्थक निरर्थक रूप में विभाजित करने की क्रिया, सुनने; स्पर्श से कठोरता और मृदुलता को स्वीकारने की क्रिया, घ्राणेन्द्रियां सुगन्ध और दुर्गन्ध को विभाजित करने की क्रिया, रुपेन्द्रियों से सुरूप, कुरूप की विभाजन क्रिया; रसनेन्द्रियों से खट्टा-मीठा, चरचरा, खारा, कसैला और तीखा इन रूचियों को विभाजित करने की क्रिया। कर्मेन्द्रियों का तात्पर्य हाथ, पैर, मल-मूत्र द्वार और मुंह ये सब कर्मेन्द्रियों में गण्य होना पाया जाता है । हस्तलाघव क्रिया में निपुणता, कुशलतापूर्ण पांडित्य से संचालित पूरे शरीर के संपूर्ण अंग अवयव सहित हाथ पैर सटीक काम

करने से बाकी सभी ज्ञानेन्द्रियों का संयोग कर्मेन्द्रियों के साथ संयोजित रहता ही है । इस विधि से हर व्यक्ति से श्रम प्राकृतिक ऐश्वर्य पर स्थापित होना देखा जाता है । इसमें यह भी देखा गया है - उत्पादन में भागीदारी, व्यवहार में मूल्यों का निर्वाह पूर्वक सामाजिक होने के लिए उपयोगिता पूरकता प्रमाण है । दूसरी भाषा में; उत्पादन में भागीदारी, व्यवहार में सामाजिक होने का संतुलन तत्व और व्यवहार में सामाजिकता, व्यवसाय में स्वावलंबी होने का संतुलन तत्व इस प्रकार समाजिकता-स्वावलंबन पूरक होने का स्वरूप प्रमाणित होता है । ऐसे संतुलन कार्य में प्रवृत, रत, निष्ठान्वित रहना ही कायिक वाचिक, मानसिक, कृत-कारित अनुमोदित, जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति में क्रियारत रहने का सार्थकता है । यही अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था का आधारसूत्र और बीज रूप है । व्यवहार क्रम में उत्पादन का सार्थकता अर्थात प्रयोजन प्रमाणित होती है । इस विधि से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबन और इनमें परस्पर पूरकता अग्रिम उन्नति और विकास के लिये सीढ़ी दर सीढ़ी प्रमाणित होना मानव के लिए एक आवश्यकता, समीचीनता और सहजता है । सूत्र का तात्पर्य जागृति सहज नियम-नियंत्रण विधि से अधिकारिक रूप में दिखने वाली न्याय और नियम का संयोजन और उसकी निरंतरता से है । बीज रूप का तात्पर्य समाधानकारी सूत्र सम्मत कार्य प्रणाली और व्यवहार प्रणाली से है । यही सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज को गति प्रदायी तत्व होना देखा गया है । इस प्रकार अखण्ड

समाज और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी हर मानव का मौलिक अधिकार होना पाया जाता है । मौलिक अधिकार का तात्पर्य जागृत मनुष्य स्वयं स्फूर्त विधि से अपने कार्य व्यवहार प्रणालियों को व्यवस्था सम्मत समाधान सम्मत और प्रमाणिकतापूर्ण पद्धति से प्रस्तुत होने से है ।

व्यवस्था संबंध और संबोधन परस्पर अपेक्षा कार्य और मूल्यांकन के क्रम में सभा में निर्वाचित सदस्यों के परस्परता में भाई-बहन या मित्र संबोधन को अपनाना स्वाभाविक है । हर सभा भाई-बहन या मित्र परिवार के रूप में ही प्रतिष्ठित रहना भी एक आवश्यकता है । इसका मूल कारण भाई-बहन व मित्र संबंध में ही संपूर्ण सार्वभौमता सहज परस्परता में प्रमाणित होते हैं । इसीलिये सभा में निर्वाचित सदस्यों को संबोधन के रूप में भाई-बहन या मित्र संबोधन करना आवश्यक है । सभा का परिपूर्ण रूप अर्थात् व्यवस्था का परिपूर्ण रूप कम से कम सौ से डेढ़ सौ परिवार के बीच साकार होना समीचीन है, निर्वाचन क्रियाकलाप हर दस व्यक्ति के बीच में होना सहज है। एक परिवार (छोटे से छोटा) दस व्यक्ति का होना भी आवश्यक है, संभव है और उचित है । ऐसे दस व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को सभा प्रधान के रूप में स्वीकारा जाता है, पहचाना जाता है, यही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का तात्पर्य है । पुनश्च दस परिवार में से निर्वाचित एक-एक व्यक्ति दस व्यक्ति के रूप में होते हैं ये एक परिवार समूह सभा को गठित करते हैं । ऐसे दस परिवार समूह सभा एक व्यक्ति को सभा प्रधान के रूप में

निर्वाचित कर ग्राम अथवा मोहल्ला परिवार सभा के लिये निर्वाचित किया जाता है । इस क्रम में निर्वाचित दस सदस्य एक ग्राम सभा अथवा मोहल्ला सभा के रूप में कार्य करना सहज है । ऐसे निर्वाचन पूर्वक से प्राप्त दस सदस्यीय सभा में से एक व्यक्ति को प्रधान के रूप में पहचाना जाता है और संबोधन के लिये परस्परता में सभी मित्र अथवा भाई-बहन संबोधन से आप्लावित रहने का कार्यक्रम बनाया जाता है । यही ग्राम स्वायत्त अथवा मोहल्ला सभा का तात्पर्य है । ये पाँचों आयामों के प्रति जागृत रहते हैं । सभी आयामों में अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में सूत्रित रहते हैं । इसमें हर परिवार मानव भागीदारी निर्वाह करने के लिये स्वतंत्र है । यही कर्म स्वतंत्रता का तत्व बिन्दु भी है । कर्म स्वतंत्रता का परिभाषा भी इसी अर्थ को प्रतिपादित करता है । स्वयं स्फूर्त विधि से सूत्रित होकर संपूर्ण आयाम, कोणों में प्रमाणों को दिशा परिप्रेक्ष्यों में हर देशकाल में प्रमाणित होना, करना, कराना, करने के लिये सहमति देना स्वतंत्रता की संपूर्णता है यही जागृतिपूर्णता भी है ।

संपूर्ण बंधन भ्रमवश आशा, विचार, इच्छा के रूप में गण्य होते हैं । ये आशा, विचार रूपी बंधन मुक्ति क्रियापूर्णता स्थिति में होती है । जागृति ही इसका सूत्र है । नियम और न्याय समाधान सत्य में जागृत होना ही व्यवस्था में जीने का सूत्र है । बंधन मुक्ति व्यवस्था में जीना ही है । व्यवस्था स्वयं समाधान और उसकी निरंतरता है, यही मानव धर्म है । मानव

धर्म ही मानव का त्व सहित व्यवस्था अथवा मानवत्व सहित व्यवस्था होना देखा गया है । **जीवन सहज रूप में सर्वमानव में सहजरूप में इसकी अपेक्षा बनी हुई है ।**

1-6 - ''जागृति मानव का वर है ।'' मानव सहज कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु स्वानुशासन है । यह परम जागृति के रूप में प्रमाणित होता है । यह मानव परंपरा में मौलिक विधान है ।

1-7 - ''सार्वभौम व्यवस्था व अखण्ड समाज, मानव सहज वैभव है ।'' मानव सहज कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दु, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होता है । यह मौलिक विधान है।

1-8 - ''मानवीय लक्ष्य परम जागृति के रूप में सार्वभौम है ।'' मानवीयतापूर्ण अभिव्यक्ति, प्रकाशन सहज संप्रेषणाएँ, संपूर्ण आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्यों में समाधान, समृद्धि, अभय व सह-अस्तित्व रूपी वैभव को प्रमाणित करता है । यही मौलिक विधान है ।

1-9 - ''मानव बहुआयामी अभिव्यक्ति है ।'' मानव सरहज परंपरा में अनुसंधान, अस्तित्व मूलक मानवीयतापूर्ण अध्ययन, शिक्षा व संस्कार, आचरण व व्यवहार, व्यवस्था संस्कृति सभ्यता और संविधान ही सहज प्रमाण है । यही मौलिक विधान है ।

उक्त चारों मौलिक अधिकार सूत्र में इंगित किया गया

आशय तथ्य और प्रयोजन एक पांचवे सूत्र के व्याप्ति में ही स्पष्ट हो चुकी है । मौलिक अधिकार का प्रयोग जागृत मानव ही उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशील बना पाता है ; अतएव मानव अपने अखण्डता, सार्वभौमता और अक्षुण्णता को बनाये रखने का दायित्व और कर्तव्य मानव में ही मानव में, से, के लिये सन्निहित है । इन सबका अथवा सभी प्रकार की सफलता जीवन जागृति ही है और जागृतिपूर्णता ही है । जागृति और जागृतिपूर्णता के अनन्तर ही मानव अपने अखण्डता, सार्वभौमता, अक्षुण्णता को सहज ही पहचानता है । फलतः निर्वाह करना स्वाभाविक हो जाता है । मनुष्य में ही जानने, पहचानने, निर्वाह करने का वैभव प्रमाणित होता है । यह जागृति व जागृति पूर्णता का ही द्योतक है। संपूर्ण आयाम, कोण, दिशा परिप्रेक्ष्यों में जानने, मानने का प्रमाणों में दायित्व पहचानने, मानने, निर्वाह करने का वैभव प्रमाणित होती है । यह जागृतिपूर्णता का ही द्योतक है । संपूर्ण आयाम, कोण, दिशा परिप्रेक्ष्यों में जानने, मानने का प्रमाणों में दायित्व पहचानने और निर्वाह करने के रूप में कर्त्तव्य करते हुए स्वयं स्फूर्त होता है । कर्तव्य से समृद्धि, दायित्व से समाधान निष्पन्न प्रमाणित होता है । जानने, मानने के फलन में नियम और न्याय का संतुलन होना पाया जाता है । फलस्वरूप नित्य समाधान होता है । समाधान व्यवस्था का सूत्र है । इसका व्याख्या उक्त सभी मौलिक अधिकारों में व्याख्यायित हुई है। समस्यापूर्वक कोई मौलिक अधिकार वर्तमान होता ही नहीं है । इसी कारणवश हर व्यक्ति

को जागृत होने की आवश्यकता बनी है । सभी विधाओं में मानव अपने को संतुलन बनाये रखने का न्याय और नियम में सामरस्यता ही है । फलस्वरूप समाधान, व्यवस्था उसकी अक्षुण्णता स्वाभाविक रूप में प्रमाणित होना सहज है । इसमें हर व्यक्ति अपना भागीदारी करना स्वाभाविक है; चाहत हर व्यक्ति में है ही । इसे सर्व-सुलभ बनाने के लिये मानवीकृत शिक्षा योजना, जीवन विद्या योजना, परिवार मूलक स्वराज्य योजना, सहज विधियों से सर्वमानव जागृत होना सदा-सदा बना रहेगा । इस प्रकार जागृति और जागृति पूर्णता को कार्य व्यवहार व्यवस्था के रूप में सतत् बनाये रखना ही अक्षुण्णता का तात्पर्य है । संपूर्ण मानव को मानवत्व के आधार पर समानता का अनुभव करना अखण्डता का तात्पर्य है। हर जागृत मनुष्य हर जागृत मनुष्य के साथ जो कुछ भी मैं समझता हूँ उसे सभी मानव समझा है या समझ सकता है; मैं जो कुछ सोचता हूँ, जो कुछ भी समाधान के रूप में सोचता हूँ ऐसा सर्वमानव सोचता है ; समाधान और प्रमाणिकता के पक्ष में मैं जो कुछ भी बोल पाता हूँ और बोलता हूँ इसे सर्वमानव बोल सकता है बोलता है ; जो कुछ भी मैं पाया हूँ उसे सर्वमानव पा सकता है, जो कुछ भी हम करता है उसे सर्वमानव कर सकता है । जो कुछ भी हम पाये हैं उसे सर्वमानव पा सकता है । जितना भी हम जीने देकर जिया हूँ हर व्यक्ति जीने देकर जी सकता है; मैं व्यवस्था में जीता हूँ सर्वमानव व्यवस्था में जी रहा है या जियेगा मैं समाधान सहज निरंतरता में सुखी हूँ हर

व्यक्ति समाधान सहज विधि से सुखी है या सुखी हो सकता है। मैं न्याय और नियमपूर्वक हर कार्य व्यवहार को निश्चय करता हूँ और क्रियान्वयन करता हूँ वैसे ही हर व्यक्ति निश्चयन करता है और निश्चयन कर सकेगा। मैं प्रमाणिक हूँ हर व्यक्ति इस धरती पर प्रमाणिक होगा और प्रमाणिक हो सकता है। इस विधि से मानसिकता विचार और समझदारी संपन्न होना है। ऐसा जीना ही मानव का परिभाषा मानवीयतापूर्ण आचरण सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज और समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व का नित्य वैभव है। यही जागृत मानव समाज का स्वरूप कार्य विचार और नजरिया है।

मानव ही दृष्टापद प्रतिष्ठा के प्रमाणों को प्रमाणित करने योग्य इकाई है। क्योंकि मानव में ही न्याय, धर्म, सत्य दृष्टि प्रमाणित होना पाया जाता है। दृष्टियां प्रिय, हित लाभ रूप में भी भ्रान्तिपूर्वक कार्यशील होता है। भ्रमित होने का मूल कारण शरीर को जीवन समझना ही है। इसी भ्रमवश मानव को व्यक्ति और समुदाय के रूप में विचारों का फैलना देखा गया है। व्यक्तिवाद अहमता का द्योतक है। यही समुदाय विधा मे युद्ध, द्रोह, विद्रोह, शोषण मानसिकता है। मानव संचेतनावादी मानसिकता में न्याय, धर्म, सत्य ही विचारों का आधार हो पाता है। इसीलिये समाधान, समृद्धि वर्तमान में विश्वास (अभय) और सह-अस्तित्व में प्रमाणिकता के रूप में हर जागृत व्यक्ति के स्वयं स्फूर्त विधि से संपन्न होता है। इससे पता लगता है हर मानव बहुआयामी होने के कारण जागृति

पूर्वक ही सभी आयाम कोणों में मानवत्व को प्रमाणित करना बना रहना यही समाज और समाजशास्त्र का प्रधान आशय है।

समाज शास्त्र मानव सहज मानवीयतापूर्ण विचारों का अध्ययन है, हर देशकाल स्थितियों में मानव का आचरण विचारों से अनुबंधित रहता ही है अथवा विचारों से जुड़ा ही रहता है। जागृति पूर्ण विचार सहित जितने भी आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्यों में मानव प्रस्तुत होता है वह कायिक, वाचिक, मानसिक रूप में होना पाया जाता है। ऐसे आचरणों को जागृतिपूर्वक विधि से संपन्न किये जाने का मूल्यांकन स्वाभाविक रूप में होता है। इस क्रम में हर मनुष्य का स्वयं का मूल्यांकन सहज हो जाता है। स्वयं का मूल्यांकन स्वयं में विश्वास पर आधारित रहना देखा गया है। स्वयं पर विश्वास अथवा स्वयं में, से, के लिये विश्वास, का आधार जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान मानवीयता पूर्ण आचरण पूर्वक संभव हो जाता है।

7

मानव में संचेतना

संचेतना और उसके वैभव मानव में ही देखने को मिलता है । संचेतना संज्ञानीयता सहित संवेदना अपने में चौमुखी विधि से कार्यरत रहना पाया जाता है । यह जीवन जागृति का ही परिचायक है । जागृत मानव में जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना सदा-सदा कार्यरत रहना पाया जाता है । यह मूलत: समझने योग्य क्षमता, सम्पन्नता की ही जागृति है । हर मानव में जानने -मानने - पहचानने - निर्वाह करने की गवाही स्पष्ट होती है, या स्पष्ट करना चाहते हैं अथवा स्पष्ट होने के लिए बाध्य रहते ही हैं। बाध्य रहने का तात्पर्य स्वीकृत रहने से है । क्योंकि जागृति हर मानव में स्वीकृत होता है । यह जीवन सहज अभीप्सा और प्रयास है । इसका गवाही मानव परंपरा ही है। मानव परंपरा सदा-सदा से ही जागृति का पक्षधर रही है । जागृति का ध्रुवीकरण अपेक्षित रहा है । ध्रुवीकरण का तात्पर्य निश्चयता और स्थिरता के रूप में प्रमाणित होने से है । यह जागृत मानव परंपरा सहज रुप में प्रमाणित होना ही

व्यवहारवादी समाजशास्त्र की अपेक्षा और महिमा है । ऐसे ध्रुवीकरण स्वरूप को मानव में जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने और उसकी आवर्तनशीलता में होना देखा गया है । यही निश्चयता और यही परंपरा में गतिशील होना स्थिरता का तात्पर्य है । स्थिरता का तात्पर्य भी है निरंतरता-अक्षुण्णता । इसका मूल तत्व आवर्तनशीलता ही है । क्योंकि यह देखा गया कि पहचानने-निर्वाह करने के अनन्तर पुन: जानने-मानने और जानने-मानने के अनन्तर पहचानने-निर्वाह करने के रुप में आवर्तनशीलता को देखा गया है। यही संचेतना में आवर्तनशीलता का स्वरुप है । यह संचेतना सहज तृप्ति के अर्थ में कार्यरत होना पाया जाता है ।

मानव अपने परिभाषा के अनुसार अपेक्षाओं कामनाओं का स्वरूप है । मानवीयता पूर्ण आचरण पूर्वक परिवार मानव के रूप में हर व्यक्ति जागृति सहज प्रमाण होना पाया जाता है । परिवार मानव ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र है । अस्तित्व में प्रत्येक एक अपने त्व सहित प्रमाण होने के आधार पर मानव भी अपने 'त्व' सहित व्यवस्था के आधार पर प्रमाण होना स्वाभाविक और अपरिहार्य है । इसी क्रम में मानव सहज मन:स्वस्थता और जागृति का मूल्यांकन होता है ।

शारीरिक स्वस्थता और जीवन स्वस्थता का स्वरूप मानव में ही अपेक्षित है । अर्थात मानव परंपरा में अपेक्षित है । यह पीढ़ी से पीढ़ी में अपेक्षा का आधार है । इसी नियति सहज

सह-अस्तित्व सहज आधारवश ही मानव अपने संचेतना को प्रमाणित करने के लिये तत्पर है । इसकी सार्थकता का स्वरूप प्रदान करने का कार्य मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार परंपरा ही आहूत करेगा । आहूतता का तात्पर्य मानवीयता सहज अपेक्षा के अनुरुप अवधारणाओं को पीढ़ी से पीढ़ी में स्थापित करने का क्रिया कलाप ।

मानव परंपरा भी नियति क्रम विधि से परंपरा के रूप में अक्षुण्ण है। अतएव मानव परंपरा में मानवत्व अक्षुण्ण होना नित्य समीचीन है । यही मानव सहज स्वत्व, स्वतंत्रता और अधिकार की व्याख्या है । दूसरे विधि से यही समझदारी अनुरूप विचार शैली, के अनुरूप कार्य-व्यवहार और कार्य-व्यवहार का फल परिणाम का सटीक मूल्यांकन पुनः समझदारी की पुष्टि, यही आवर्तनशील होना पाया जाता है । इसी क्रम में समझदारी को स्वत्व के रूप में, विचार शैली को स्वतंत्रता के रूप में, कार्यव्यवहारों का अधिकारों के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है । इस प्रकार जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही स्वत्व, स्वतंत्रता और अधिकार है । यह हर मानव में जागृतिपूर्वक वर्तमान होना ही/रहना ही मानव परंपरा का वैभव है । यही वैभव परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में प्रमाणित रहता है । व्यवस्था में भागीदारी स्वयं समाधान मानवधर्म का द्योतक है । न्यायप्रदायी विधियाँ समाज का द्योतक है । जागृति सहज सम्पूर्ण प्रमाण सत्य का द्योतक है । इस प्रकार न्याय, धर्म, सत्यपूर्ण जीवन क्रियाकलाप जागृत

संचेतना के रूप में नित्य प्रमाण होता है। ऐसी स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार हर व्यक्ति के लिये, हर परिवार के लिये, सम्पूर्ण मानव के लिये समान रुप में समीचीन है ।

जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने की सम्पूर्ण वस्तु सह-अस्तित्व रूपी परम सत्य ही संपूर्ण वस्तु, अस्तित्व में परमाणु में विकास क्रम विकास, परमाणु अपने में गठनपूर्णता के फलस्वरूप चैतन्य पद में संक्रमण 'जीवन पद', जीवनी क्रम में, जीवावस्था में, जीवन जागृति क्रम, जागृति और उसका परंपरा जागृत मानव परंपरा में और रासायनिक-भौतिक रचना विरचनाएं है । इन सभी मुद्दों का अध्ययन पूर्वाध्यायों में स्पष्ट हुई है।

जानने-मानने का अधिकार जागृत मानव में ही प्रमाणित होता है। ऐसा जानने, मानने के आधार पर सम्बन्धों का पहचान होता है । हर संबंध में निश्चित प्रयोजन स्वीकृत रहता है । उन सम्बन्धों में लक्षित प्रयोजनों को निर्वाह करना ही समाज सूत्र का आधार है । इसीलिये पहचानना, निर्वाह करना एक आवश्यकता और विधि है । इसका मूल्यांकन हर स्थिति में होना ही समाज है । समाज का परिभाषा भी इसी तथ्य को इंगित कराता है कि **पूर्णता के अर्थ में गतिशीलता ही समाज है ।** पूर्णता का स्वरूप मानव परंपरा में मानवत्व सहित अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सूत्र और व्याख्या स्वरूप ही है । सार्वभौम व्यवस्था स्वरूप स्वयं में परिवार मूलक स्वराज्य सभा विधि से पांचो आयाम सहित गतिशील रहना स्पष्ट है ।

नैसर्गिक सम्बन्ध और मानव सम्बन्ध और उसमें निहित प्रयोजनों को सार्थक बनाने के क्रियाकलापों को निर्वाह नाम दिया गया है । इसका सार्थक गति मानव अपने जागृत संचेतनापूर्वक ही अपने स्वत्व, स्वतंत्रता और अधिकारों को अक्षुण्ण बनाए रखता है । इसकी स्वीकृति सर्वमानवों में होना पाया जाता है । इसे व्यवहारपूर्वक ही हर मनुष्य प्रमाणित करता है । अतएव मानव में, से, के लिये स्वत्व, स्वतंत्रता और अधिकार का स्वरूप जागृत संचेतना ही है । इसमें हर व्यक्ति पारंगत रहना ही परंपरा का वैभव है ।

8

दायित्व और कर्तव्य

जागृत मानव सहज रूप में समझदारी के आधार पर ही सम्पूर्ण प्रकार के विचार करता हुआ, विचारों के आधार पर अथवा विचार शैली के आधार पर ही जीने की कला अथवा जीवन शैली ही सम्पूर्ण कार्यकलाप होना पाया जाता है । मूल समझ का स्वरूप अस्तित्व रूपी सह-अस्तित्व ही होना स्पष्ट हो चुकी है । ऐसा समझ जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में संचेतना स्वरूप मानव में वर्तमान होना प्रमाणित है । यही मानव सहज जागृति का द्योतक है । प्रत्येक जागृत मानव संचेतनापूर्ण अथवा संचेतनशील रहता ही है । पूर्ण होने का तात्पर्य दिव्य मानव पद में सार्थक और प्रमाणित होता है और मानव तथा देव मानव परिष्कृत संवेदनशील रहता है । भ्रमित मानव अपरिष्कृत संचेतनशील रहता ही है । इसी कारणवश मानव में 5 कोटियाँ सुस्पष्ट हो चुकी हैं । जागृतिपूर्ण मानव परंपरा मानव संतानों में ही देखने को मिलेगी । युवा-प्रौढ़ व्यक्तियों में भ्रम का सम्भावना ही समाप्त हो जाती हैं । परिष्कृत

और परिष्कृतपूर्ण संचेतन सम्पन्न मानव परंपरा में दायित्व और कर्तव्य बोध होना स्वभाविक है । संचेतना का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में चेतना है । चेतना का तात्पर्य ज्ञान और ज्ञान के स्वरूप में जानने-मानने-पहचानने एवं निर्वाह करने का प्रमाण है।

सम्पूर्ण प्रमाण वर्तमान में ही वैभवित होना देखा गया । ऐसे संचेतना सहज विधि से जीवन शक्ति और बल को पूरक विधि से देने योग्य स्वरूप स्वयं में दायित्व है । व्यवहार और उत्पादन कार्यों में जीवन शक्तियों और बलों को अर्पित करना ही देने का तात्पर्य है । ऐसा दायित्व, कतव्यों के साथ ही अर्थात व्यवहार, उत्पादन, व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी के साथ ही प्रमाणित होता है । यही कर्तव्य का स्वरूप और महिमा है । ऐसे कर्तव्य और दायित्व हर व्यक्ति में चेतना विकास पूर्वक स्वीकृत हैं । इसलिये जागृति के उपरान्त प्रमाणित होना सहज है । जागृत मानव में दायित्व और कर्तव्य पूरक विधि से सम्पन्न होता ही रहता है ।

मनुष्येत्तर तीनों प्रकृति में भी पूरकता नियम से सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न होता हुआ देखने को मिलता है । इनमें लक्ष्य तीनों अवस्थाओं में तीन स्वरूप में होना देखा गया है । पदार्थावस्था में परिणामानुषंगी सूत्र और व्याख्या है । यही प्राणावस्था में परिणाम सहित पुष्टि धर्म निहित रहना पाया जाता है । जीवावस्था में अस्तित्व पुष्टि सहित आशा धर्म विद्यमान होना

देखा गया है । इसलिये सम्पूर्ण जीवावस्था जीवनीक्रम सहित परिणाम, पुष्टि सहित जीने की आशा सहज लक्ष्य रूप में होना पाया जाता है । इसलिये जीवावस्था में जीने की आशा, लक्ष्य, सूत्र और व्याख्या प्रमाणित है । मानव में अस्तित्व पुष्टि, आशा सहित सुख धर्मीयता स्पष्ट है । इसी के साथ अपरिष्कृत, परिष्कृतपूर्ण संचेतन सहज कार्यकलाप का वर्गीकरण भ्रम व जागृति रूप में करता हुआ मानव अपने आप में स्पष्ट है । ऐसे मानव में स्वाभाविक रूप में सुख-लक्ष्य, सूत्र व्याख्या का होना स्वाभाविक रहा है । ऐसी सुख लक्ष्य परिष्कृत संचेतना अथवा परिष्कृत पूर्ण संचेतना सहज विधि से समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व में अनुभव प्रमाण सहित प्रमाणित होना पाया जाता है । मानव अपने आप में सुख धर्मी होने के आधार पर ही मानव संचेतना सहज अर्थात जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने सहज विधि से समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व में अनुभव प्रमाण रूप में दायित्व और कर्तव्यों का निर्वाह होना सहज है । इसी क्रम में जागृति सहज विधि से ही दायित्व और कर्तव्यों को सम्पन्न करना स्वत्व व स्वतंत्रता का द्योतक है । क्योंकि मानव का मानवीयतापूर्ण आचरण मानव में, से, के लिये स्वतंत्रता का प्रमाण है ।

प्रमाण सहित ही हर मनुष्य का सुखी होना सतत समीचीन है । सम्पूर्ण मानव में, से, के लिये प्रमाणिकता और प्रमाण ही सुख का स्रोत, सूत्र और व्याख्या है । जीवन ही जागृतिपूर्वक मानव परंपरा में सुख का स्रोत होना पहले से स्पष्ट

हो चुकी है । जागृति के पहले जीवन भ्रमित रहता है । भ्रमवश ही मानव जीवन बंधन में होता है । ऐसा बंधन भ्रमित आशा, विचार, इच्छा के रूप में होना सर्वेक्षित है । न्याय, धर्म (सर्वतोमुखी समाधान), सत्य (अस्तित्व में अनुभव) सहज विधि से प्रमाणित पूर्वक ही जागृत होना देखा गया है । जागृतिपूर्वक ही हर मनुष्य दायित्व और कर्तव्य को निर्वाह कर पाता है और सुखी होता है । मौलिक अधिकार का प्रयोग अपने आप में जागृतिपूर्वक ही सम्पन्न होता है । हर मानव जागृति के लिये पात्र है । जागृति को परंपरा के रूप में स्थापित करना मानवीय शिक्षा-संस्कारपूर्वक सहज है । इस विधि से हर मनुष्य जागृत होने का स्रोत जागृत मानव परंपरा ही है । यह स्पष्ट होता है ।

जागृति सहज कार्यक्रम दायित्व और कर्तव्य के आधार पर ही सुयोजित हो पाता है । ऐसे सुयोजन परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में सर्वसुलभ होता है । जागृति पूर्वक जीने की कला ही सुयोजना का साक्ष्य है । परिवार मूलक स्वराज्य-व्यवस्था में व्यवस्थापूर्वक ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सम्पन्न होना पाया जाता है । इसी सत्यवश, यही सत्यता मानव परंपरा में सर्वतोमुखी समाधान, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में प्रमाणित होता है; जिसका अक्षुण्णता सहज होना पाया जाता है । मानव का अभीष्ट सदा-सदा से ही और सदा-सदा के लिये शुभ ही शुभ होना देखा गया है । ऐसा सार्वभौम शुभ अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था

रूपी कार्यक्रम ही है । ऐसा कार्यक्रम स्वाभाविक रूप में ही जागृति सहज शिक्षा-संस्कार विधि से स्पष्ट हो जाती है । मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार अपने आप में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन, मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) के रूप में स्पष्ट हो जाती है । यही सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सम्पन्नता सहित होने वाले अध्ययन, अवधारणा, अनुभव है। सह-अस्तित्व में अनुभव के आधार पर ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का प्रमाण मानव परंपरा में ही प्रमाणित होना समीचीन है । यही जागृति का द्योतक है । मानवीयतापूर्ण परंपरा का प्रमाण मानवीय शिक्षा-संस्कार सुलभता, न्याय-सुरक्षा सुलभता, विनिमय-कोष सुलभता, उत्पादन-कार्य सुलभता और स्वास्थ्य-संयम सुलभता ही है । इन्हीं 5 आयामों के योगफल में संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था अपने आप प्रमाणित होता है और अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का स्वरूप और उसकी निरंतरता बना ही रहता है । ऐसे भागीदारी में दायित्व, कर्तव्य का प्रमाण हर मानव में, से, के लिए सहज सुलभ होता है ।

दायित्व बोध और उसके अनुरूप कार्यप्रणालियाँ; सम्बन्ध, मूल्य-मूल्यांकन, उभयतृप्ति, संतुलन और उसकी निरंतरता के रूप में वर्तमान होना पाया जाता है । इसी के साथ तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा भी दायित्वों में समाहित रहता ही है । कर्तव्य का स्वरूप आवश्यकता से अधिक उत्पादन, लाभ-हानि मुक्त विनिमय कार्यों में भागीदारी के रूप

में सम्पन्न होना देखा गया है । दायित्वों और कर्तव्यों को निर्वाह करने के क्रम में स्वास्थ्य-संयम एक अनिवार्य क्रियाकलाप है जिसको आगे अध्याय में स्पष्ट किया गया है । **इस प्रकार दायित्व बोध के लिये जानना, मानना और कर्तव्य बोध के लिये पहचानना, निर्वाह करना एक** अनिवार्य स्थिति है । इस स्थिति में कार्यरत, व्यवहाररत रहना ही जागृत परंपरा की महिमा है । परंपरा सहज महिमा ही मानव संतान में, से, के लिये अत्यधिक प्रभावशाली होता है ।

मानव परंपरा अपने में बहुआयामी अभिव्यक्ति होना सुदूर विगत से अभी तक और अभी से सुदूर आगत तक होना दिखाई पड़ती है । मनुष्य अपने परंपरा में शिक्षा-संस्कारादि पांचो आयाम सहित ही स्वस्थ परंपरा होना स्पष्ट हो चुकी है । इन्हीं पाँचों आयामों में हर व्यक्ति कार्यरत होना ही बहुआयामी अभिव्यक्ति का तात्पर्य है । इसी क्रम में विभिन्न दृष्टिकोणों, निश्चित दिशाओं और हर देशकाल में प्रमाणित होने योग्य इकाई मानव है अर्थात सभी आयामों में प्रमाणित होने योग्य इकाई मानव है । ऐसे प्रमाणित होने के क्रम में मौलिक रूप में अधिकार स्वत्व स्वतंत्रता पूर्वक अर्थात स्वयं स्फूर्त विधि से प्रयोग करना स्वाभाविक रहता ही है । साथ ही जागृति व जागृतिपूर्ण परंपरा में ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होता है ।

जागृति ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था सहज

परंपरा रूप में मानव संतानों को सुलभ हो जाती है । शिक्षा-स्वरूप में सह-अस्तित्व विधि से प्रयोजन कार्य-विश्लेषण विधि को अपनाना सहज है । सह-अस्तित्व विधि से विज्ञान विधियाँ सकारात्मक होना पाया जाता है । अन्यथा नकारात्मक होती है । नकार-सकार का आधार सह-अस्तित्व और व्यवस्था है । इसी आधार पर होने वाली स्पष्ट अवधारणाएँ निष्ठा का सूत्र होना देखा गया । निष्ठा का तात्पर्य वर्तमान में विश्वासपूर्वक किये जाने वाले क्रियाकलाप हैं । सभी क्रियाकलाप व्यवहार, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी सहज प्रमाण है । इन्हीं व्यवहार वैभव मानव में स्वत्व स्वतंत्रता अधिकार ही स्वराज्य व्यवस्था कहलाता है । मूलतः स्वराज्य व्यवस्था मानव का समझ प्रक्रिया का संयुक्त वैभव ही है - वह भी जागृति पूर्ण वैभव है । अतएव हम जागृतिपूर्वक मानव लक्ष्य एवं जीवन लक्ष्यों को सफल बनाते हैं । जो दायित्व और कर्तव्य पूर्वक ही सफल होता है । इसलिये न्यायपूर्ण व्यवहार कार्यों में दायित्व और कर्तव्य मूल्यांकित होता है । इसी के साथ जानना, मानना, पहचानना निर्वाह करना सुलभ होता है । इसी विधि से न्याय सुलभता का मार्ग प्रशस्त होता है । न्याय सुलभता सर्व स्वीकृति तथ्य है । न्यायिक विधि से अखण्ड समाज, पाँचों आयामों में स्वराज्य विधि से सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होना स्वाभाविक है । हर मानव अपने को जागृतिपूर्वक इन दोनों मुद्दे में अपने उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता को मूल्यांकित करता है । यही स्वस्थ सामाजिक मानव और व्यक्तित्व का

तात्पर्य है । यह हर व्यक्ति की आवश्यकता है । इस विधि से सम्पूर्ण दायित्वों, कर्तव्यों को उसके प्रयोजन सहित प्रमाणित करना, मूल्यांकित करना सहज है ।

0-0-0

9

समाज और विधि

पूर्णता के अर्थ में स्वत्व, स्वतंत्रता, उपकार संयुक्त रूप से वैभव संपन्न परंपरा है :-

विधि का कार्यरूप नियम और न्याय सम्मत विधि से किया गया कार्य व्यवहार है । नियम और न्याय में नित्य संगीत ही समाधान के रूप में होना ख्यात है । मूलतः विधि अपने सूत्र रूप में नियम और न्याय ही है । नियमों को तीन प्रकार से पहले वर्णित कर चुके हैं । न्याय को संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति संतुलन के रूप में स्पष्ट किया गया है । सम्बन्धों को मानव संबंध और नैसर्गिक सम्बन्ध के विधि से प्रस्तुत किया जा चुका है । नियम और न्यायसूत्र में, से मानव संबंधों में न्याय प्रधान नियम और नैसर्गिक सम्बन्धों में नियम प्रधान न्याय का अनुभव मानव सहज रूप में किया जाना जागृति का द्योतक है ।

मानव संबंधों को सात प्रकार से नाम सहित प्रयोजनों को इंगित कराया है । संबंध क्रम से पोषण, संरक्षण, अभ्युदय,

जागृति, प्रमाणिकता, जिज्ञासा, यतित्व, सतीत्व, विकास-प्रगति, दायित्व-कर्तव्य प्रयोजनों का स्वरूप है । इन प्रयोजनों के अर्थ में हर संबंधों का कार्यकलाप साक्षित होना ही विधि है । दायित्व और कर्तव्य के सम्बन्ध में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी, परिवार और समाज में भागीदारी एक आवश्यकीय स्थिति और गति होना स्पष्ट किया जा चुका है । यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि दायित्व और कर्तव्यों के साथ ही मौलिक अधिकारों का प्रयोग सार्थक होता है । जितने भी प्रयोजन है वह सब मानव कुल में ही प्रमाणित होता है। वह 1. माता - पिता, 2. भाई - बहन, 3. गुरू - शिष्य, 4. मित्र, 5. पति - पत्नी, 6. स्वामी (साथी) - सेवक (सहयोगी), 7. पुत्र - पुत्री। इस प्रकार से 7 संबंध । इसमें से पति-पत्नी संबंधों को छोड़कर बाकी सभी सम्बन्ध पुत्र-पुत्रीवत, माता-पितावत, गुरूवत, शिष्यवत, मित्रवत, भाई-बहिनवत, स्वामी-सेवकवत के रूप में पहचाना जाना सहज है । इसमें सर्वाधिक अथवा विशाल रूप में होने वाले प्रतिष्ठा को मित्र के रूप में पहचाना जाना स्वाभाविक है ।

इन सभी सम्बन्धों के साथ सार्थकता अथवा प्रयोजनों की अपेक्षा परस्पर स्वीकृत रहा करता है जैसा - माता पिता से अपेक्षा जागृति, प्रमाणिकता सहित समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व का होना प्रत्येक संतानों में अपेक्षित प्रतीक्षित रूप में मिलता है । हर संतान के साथ माता पिता की अपेक्षा जागृति, प्रमाणिकता सहित समाधान, कर्तव्य और दायित्व

सहज निष्ठा का अपेक्षा प्रतीक्षा आवश्यकता के रूप में सर्वेक्षित होता है । हर शिष्य अपने गुरू से प्रमाणिकता, समाधान और वात्सल्य की अपेक्षा रखता है । हर विद्यार्थी से गुरूजी की अपेक्षाएं तीव्र जिज्ञासा, ग्राह्यता, सहित अवधारणाओं के रूप में देखना बना ही रहता है ।

भाई-बहनों के परस्परता में अभ्युदय अर्थात सर्वतोमुखी समाधान, वर्तमान में विश्वास सहित पूरकता का अपेक्षा बना ही रहता है । इसी प्रकार मित्र सम्बन्धों में भी होना पाया जाता है ।

पति-पत्नी सम्बन्धों में परस्पर व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी परिवार मानव का सम्पूर्ण दायित्व-कर्तव्य, अपेक्षा, प्रतीक्षा बना ही रहता है।

स्वामी (साथी) - सेवक (सहयोगी) सम्बन्ध में स्वयं स्वीकृत प्रणाली, स्वयं स्वीकृत विधि से व्यवस्था में भागीदारी का निर्वहन के आधार पर घोषणा कार्यप्रणाली है । इस क्रम में भाई सम्बोधन या बहन सम्बोधन समुचित रहता है । इसी की आवश्यकता है । व्यवस्था सम्बन्ध में परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक की समान सम्बोधन होना और कार्यों की समानता भी प्रमाणित होना पाया जाता है । यह स्वाभाविक विधि है हर सभा में एक प्रधान व्यक्ति को निर्वाचित कर लेना, पहचानना, अधिकार सम्पन्न रहना एक आवश्यकता बनी रहती है । यह जनतांत्रिक प्रणाली, पद्धति, नीतियों को प्रमाणित करने

का गठन कार्य है । अतएव सभा प्रणाली में भाई-बहन-मित्र सम्बोधन में समानता, दायित्वों, कर्तव्यों का वहन करने में स्वयं स्फूर्त स्वीकृत विधि से सम्पादित होता है । यही जनतांत्रिकता का तात्पर्य है । इसी विधि से विरोध विहीन, विवाद विहीन सामरस्यता और समाधानपूर्ण अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में कार्यरत रहना पाया जाता है । इसकी आवश्यकता सर्वमानव में होना पाया जाता है । इसकी नित्य समीचीनता जागृति विधिपूर्वक स्पष्ट हुआ है ।

यहाँ इस तथ्य पर ध्यान रहना आवश्यक है कि **प्रत्येक सम्बोधन में प्रयोजनों का अभीष्ट बना ही रहता है । अभीष्ट का तात्पर्य अभ्युदय को अनिवार्यता के रूप में स्वीकारा गया अनुभव मूलक मानसिकता से है । इस प्रकार सम्बोधन के साथ प्रयोजन उभय पक्ष में स्वीकृत होना, इंगित होना ही सार्थकता है ।** सम्बोधन की सार्थकताएँ व्यवहार, कार्य, आचरण, प्रवृत्ति का मूल रूप होना देखा गया । क्योंकि हर मनुष्य में विचारपूर्वक ही कार्यव्यवहार सम्पन्न होना देखा जाता है ।

सम्बन्ध का तात्पर्य स्वयं में पूर्णता सहित हर मानव में पूर्णता के अर्थ में अनुबंधित रहना स्वाभाविक है । यह मानव में ही प्रमाणित होने वाला मौलिक अभिव्यक्ति है। यही ज्ञानावस्था का परिचायक है । इसी के साथ मानव को, इसकी अपेक्षा, आवश्यकता नियति सहज विधि से देखने को मिलता है ।

अर्थात मनुष्य संबंध के अनुरूप प्रयोजनों को प्रमाणित करने में निष्ठा स्वयं स्फूर्त होता है । अपेक्षाओं के अनुसार सार्थक होना, चरितार्थ होना ही सम्बन्धों का सम्पूर्ण प्रयोजन है । प्रयोजनों का सूत्र अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, परिवार मानव और स्वायत्त मानव रूप में ही मानव परंपरा में देखने को मिलता है । यही प्रयोजनों का मूल रूप है । इसे ज्ञानावस्था का स्वरूप भी कहा जा सकता है । जागृत मानव परंपरा में यह सार्थकता का स्वरूप शिक्षा-संस्कारपूर्वक परंपरा में स्थापित होता ही रहेगा । जागृत शिक्षा-संस्कार के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है । जागृतिपूर्ण परंपरा अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व विधि से अनुप्राणित रहने के आधार पर ही जागृत मानव परंपरा का अक्षुण्णता समीचीन रहना पाया जाता है । अतएव सम्पूर्ण सम्बन्ध और उसका सम्बोधन निश्चित प्रयोजन के अर्थ में अपेक्षित रहना ही सम्बोधन का तात्पर्य है । इसमें हर व्यक्ति जागृत रहना यह प्राथमिक दायित्व है । इन्हीं दायित्वों, मौलिक अधिकारों का प्रयोजन सहज ही सफल हो पाता है । फलस्वरूप मानव परंपरा में जीने की कला विधि के रूप में प्रमाणित होता है । विधि का प्रमाण स्वयं सम्बन्ध-मूल्य-मूल्यांकन-उभयतृप्ति, मानव परिभाषा के अनुरूप हर मनुष्य अपने मौलिक अधिकार रूपी स्वतंत्रता का प्रयोग करना, तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग - सुरक्षा करना और स्वधन, स्वनारी / स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य-व्यवहार में निष्ठान्वित रहना विधि है । यही सम्पूर्ण उत्सवों का आधार होना पाया जाता है।

मानव समाज में उत्सव

मानव समाज का स्वरूप अपने अखण्डता में प्रमाणित होना स्पष्ट किया जा चुका है क्योंकि समुदाय समाज होता नहीं, समाज समुदाय होता नहीं । समाज और उसका वैभव अनुभवमूलक प्रणाली से किया गया अभिव्यक्ति विन्यास, विचार विन्यास, व्यवहार विन्यास और कार्य विन्यास ही है । विन्यास का तात्पर्य विवेक सहित न्यायपूर्वक किया गया संप्रेषणा है । इस विधि से समाज अपने अखण्डता के स्वरूप में ख्यात होना स्वाभाविक है । अखण्ड समाज अपने परिभाषा में पूर्णता के अर्थ में किया गया तन, मन, धन रूपी कार्यकलापों का निरन्तर गति अथवा अक्षुण्णगति से है । इस प्रकार परिभाषा के रूप में भी पूर्णता अपने आप में इंगित होना पाया जाता है । पूर्णता का स्वरूप परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है । परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में व्यवस्था स्वयं क्रियापूर्णता और उसकी निरन्तरता का द्योतक और प्रमाण है । स्वानुशासन जागृतिपूर्णता का प्रमाण है । यही आचरणपूर्णता का स्वरूप है । पूर्णता के अनन्तर उसकी निरन्तरता का होना देखा गया है । क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता और उसकी निरंतरता सदा-सदा के लिये गतिशील रहना ही समाज गति का तात्पर्य है । ऐसी स्थिति मानव परंपरा में अस्तित्व सहज अनुभूति अस्तित्व ही सह-अस्तित्व सहज होने के आधार पर विचार शैली, अस्तित्व में ही विकास और जागृति प्रमाणित होने के क्रम में मानव ही

जागृति को प्रमाणित करना सम्पूर्ण अखण्डता का सूत्र है । ऐसे जागृति पूर्णता को परम्परा के रूप में प्रमाणित करने की विधि से व्यवस्था एक सहज क्रियाकलाप है । व्यवस्था सर्वमानव में स्वीकृत तथ्य है । फलस्वरूप सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के आधार पर क्रियान्वित होना स्वाभाविक है । इस प्रकार मानव में क्रियापूर्णता आचरणपूर्णता ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होता है । यह सर्वमानव में स्वीकृत अथवा स्वीकृकत होने योग्य तथ्य है । इसका कारण जीवन महिमा ही है । जीवन सदा-सदा जागृति और जागृतिपूर्णता के लिये उन्मुख रहता ही है । इसीलिये शैशव अवस्था से ही जागृति स्वीकृत होना रहता है । और अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था भी स्वीकृत रहता है । इसकी आपूर्ति करना ही जागृत परम्परा का प्रमाण है या तात्पर्य है ।

जागृतिपूर्वक ही सम्पूर्ण उत्सव समारोह सार्थक होना पाया जाता है। यहाँ सार्थकता का तात्पर्य अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था क्रम में उसकी निरंतरता का आशा-आकांक्षा सहित होने वाली उत्साह-आकांक्षा का अभिव्यक्ति - संप्रेषणा और प्रकाशन ही उत्सव के रूप में देखने को मिलता है । उत्सवों को प्रधानतः अखण्ड समाज के अर्थ में और सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में समारोह सम्पन्न होना एक आवश्यकता है ।

अखण्ड समाज विधि में होने वाले उत्सवों को संस्कारोत्सवों के रूप में पहचाना जाता है । इन सभी संस्कारों

में जीवन जागृति ही परम लक्ष्य होना पाया जाता है । संस्कारों का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन क्रम में ही उत्सवानुभूति होना, उसकी सार्थकता का होना देखा गया है । इस क्रम में जन्मसंस्कारोंत्सव, जन्मदिनोत्सव, नामकरणोत्सव, शिक्षा-संस्कारोत्सव (धर्म, कर्म, दीक्षा-व्यवहार, उत्पादन संस्कार) विवाहोत्सव मुख्य हैं । नैसर्गिक उत्सव ऋतुकाल के अनुसार मनाने की व्यवस्था है । क्योंकि सम्पूर्ण वनस्पति संसार भी ऋतुकाल के अनुसार उत्सवित होने के स्वरूप में देखा जाता है । यह सर्वविदित तथ्य है ।

1. जन्मोत्सव - मानव परंपरा में हर माता-पिता संतान प्राप्ति के साथ अपने में गौरव और सम्मान का अनुभव करना और होना पाया जाता है । इसी सम्मान और गौरव के समर्थन में उत्सव का स्वरूप बनता है । उत्सव में उत्साह और प्रसन्नता मूल स्रोत है । किसी उद्देश्य किसी प्रयोजन किसी वस्तु प्राप्ति के अर्थ में ही उत्साह-प्रसन्नता का प्रमाण मानव कुल में सफलता के अर्थ को प्रतिपादित करता है । जैसे - एक पति-पत्नी की कोख से संतान प्राप्ति अपने आप में शरीर-सम्बन्ध का फलन के रूप में होना देखा गया है। हर मनुष्य शरीर और जीव शरीरों की रचना गर्भाशय में ही होना देखा गया है । अत्याधुनिक संसार में भी इसके लिये कई कृत्रिम उपायों को खोजा गया है । सफलता अभी भी विचाराधीन है । कृत्रिम विधि यदि सफल भी होता है तो इसकी सफलता में भी गर्भाशय सहज सटीक वातावरण को कृत्रिम रूप में निर्मित करने के उपरांत ही सफल

होने की व्यवस्था है ।

ऐसे कृत्रिम गर्भाशय संरचना वातावरण संबंधी कृत्यों को समान करने के लिये जितना श्रम, जितना वस्तु, जितना समय लगता है, लग सकता है वह सर्वाधिक निरर्थकता अपव्यय के खाते में जायेगा । अस्तित्व में यही सिद्धान्त है जो जिसको अपव्यय करेगा उससे वह वंचित हो जायेगा। कृत्रिम गर्भाशय निर्माण विधि स्वयं अपव्ययता के आधार पर ही मानव मन में कल्पित हो पाता है । इस अपव्ययता क्रम में स्वाभाविक सार्थक नियति सहज विधि से रचित शरीर रचना के अंगभूत गर्भाशय की आवश्यकता, विशेषकर मनुष्य शरीर में गर्भाशय की आवश्यकता एवं तत्संबंधी उत्सव से मनुष्य वंचित होना भावी हो जाता है । इससे यह पता लगता है कि इस मुद्दे पर कृत्रिम उपायों की निरर्थकता का हर सामान्य मनुष्य स्वीकार कर सकता है । अतएव प्रकृति सहज स्त्री-पुरूष शरीर रचना उसका सम्पूर्ण अंग अवयवों का उपयोग-सदुपयोग प्रयोजनीयता क्रम में शरीर स्वस्थता और जीवन स्वस्थता रूपी संयमता के संयोगपूर्वक ही विधि विहित कार्यकलापों में प्रवृत्त होना पाया जाता है । यह जीवन जागृतिपूर्वक ही सफल होना देखा गया है । ऐसा जीवन जागृति मानवीयता पूर्ण शिक्षा-संस्कार परंपरापूर्वक सर्वसुलभ होने के तथ्य स्पष्ट हो चुकी है ।

संतान जन्मोत्सव के अवसर पर जागृत मानव परंपरा सहज जीवन जागृति की कामना, शरीर स्वस्थता की कामना

इसके पुष्टि पोषण विधाओं का चर्चा-संवाद गीत गायन नृत्य आदि कृत्यों से उत्सव समारोह को सफल बनाना इन्हीं कृत्यों से हर माता पिता में संतान प्राप्ति के महत्वपूर्ण घटना के आधार पर सम्मान और गौरव का उमंग की पुष्टि बन्धुजन, बहुजन द्वारा सम्पन्न होता है । यही जन्म संस्कार उत्सव का तात्पर्य है । इससे स्पष्ट हो गया कि शैशवता की स्थिति में अभिभावक और बन्धुजनों का कामना ही भावी किशोर, यौवन, प्रौढ़ अवस्थाओं में प्रमाणित होने का सम्पूर्णता ही कामनाओं के रूप में सामुहिक प्रस्तुति, स्वीकृति सहित प्रसन्नता और उत्साह का संयुक्त रूप में व्यक्त करना ही सार्थक उत्सव का स्वरूप है ।

2. **नामकरणोत्सव** का भी जन्मोत्सव के अनुरूप ही कार्य सम्पन्न होना पाया जाता है । इस उत्सव में विशेषकर सार्थक नाम संबोधन और निर्देशन के रूप में सम्पादित किया जाना सामूहिक रूप में स्वीकृत होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । इस प्रक्रिया को सम्पादित करते समय सभी आयु वर्ग के लोग अपने-अपने प्रसन्नता उत्साह के साथ नाम चयन करना होता ही है । इसके सार्थकता के सम्बन्ध में उमंगपूर्ण वार्तालाप, गायन-गीत का प्रदर्शन सहित उत्सव सम्पन्न होना मानवीयतापूर्ण नामकरण संस्कार का स्वरूप होता है । इसका सार्थकता सम्बोधन और निर्देशन ही है । हर व्यक्ति सम्बोधन के लिये नाम का प्रयोग करना और कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को निर्देशित करना ज्ञानावस्था का सहज प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया केवल मानव में ही देखने को मिलता है । ज्ञानावस्था की मौलिकता

नाम-निर्देशन, स्वीकृति, अनुभूति का सहज गति है । इन्हीं गति के आधार पर ज्ञानावस्था का मानव हर क्रियाकलाप में सार्थकता अर्थात उपयोगिता और प्रयोजनीयता के आधार पर व्यवहार सुलभ, व्यवस्था सुलभ, होना पाया जाता है । अतएव जन्म संस्कार के साथ-साथ नामकरण संस्कार एक सार्थक उत्सव होना पाया जाता है ।

3. **जन्मदिनोत्सव संस्कार** - जन्मदिनोत्सव को सम्पादित करने की उमंग, उमंग का तात्पर्य उत्साह और प्रसन्नता सहित आशय को व्यक्त करने से है । आशय जन्म दिवस का स्मरण बीते हुए वर्षों की गणना से सम्बन्धित रहता है । यह सर्वविदित है । इस क्रम में शैशवावस्था तक जीवन जागृति कामना सहित मानवीयतापूर्ण आचरण सम्पन्न होने, जीवन ज्ञान अस्तित्व दर्शन में पारंगत होने के कामनाओं सहित चर्चा, वार्तालाप, कामना गीत के साथ गायन, नृत्य, वाद्य के साथ उत्सव सम्पन्न करने का कार्यक्रम हर शैशवावस्था तक उत्सव में भाग लेने वाले हर व्यक्ति से हर व्यक्ति को सम्मान व्यक्त करता हुआ शिशु और आशय आकांक्षा सहित आशीषों को प्रस्तुत करने वाले हर व्यक्ति उत्सव में भागीदारी के रूप में देखने को मिलता है । ऐसे उत्सव मानव सहज जागृति परंपरा का ही पुनर्उद्गार ही रहता है । ऐसी जन्मदिनोत्सव को जैसा ही शैशवावस्था से कौमार्य अवस्था आता है अथवा जिस जन्मदिनोत्सव तक अपने मूल्यांकन करने में सक्षम हो जाते हैं, जिसको अभिभावक भले प्रकार से मूल्यांकन कर सकते हैं ।

इसी जन्मदिवस से हर मानव संतान से अपना मूल्यांकन कराने और सत्यापित करने की विधि अपनाना आवश्यक रहता ही है । ऐसा सत्यापन सहज अभिव्यक्ति की पुष्टि में उत्साह और प्रसन्नता को व्यक्त करने का समारोह बंधु-बांधव और अभिभावक मित्रों के साथ-साथ अनुभव करना बनता है । ऐसी सम्पूर्ण अनुभूति का आधार का मापदण्ड जीवन जागृति, मानवीयतापूर्ण आचरण शैशवावस्था से किया गया आज्ञापालन, सहयोगवादी कार्यकलाप, अनुसरण किया गया कार्यकलाप अर्थात अभिभावक एवं आचार्यों के साथ किया गया अनुसरण क्रियाकलाप और उसके प्रयोजनों के साथ उन-उनके सभी अभिमत किशोरावस्था से ही व्यक्त होना स्वाभाविक रहता ही है । स्वयं स्फूर्त आशा, आकांक्षा के संदर्भ में भी प्रोत्साहनपूर्वक संप्रेषित करने का अवसर प्रदान करना उत्सव समारोह का एक कर्तव्य के रूप में होना पाया जाता है । मुख्य रूप में जिनका जन्मदिनोत्सव मनाया जाता है उनका उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजन सम्बन्धी मूल्यांकन पर ज्यादा से ज्यादा ध्यान आकर्षित करने का कार्यक्रम जन्मदिनोत्सव का प्रधान उद्देश्य और कार्यक्रम है । इस प्रकार जन्मदिनोत्सव के सम्पूर्ण अवयव स्पष्ट हो जाती हैं । इसी के साथ यह भी परस्पर प्रेरणा का आधार होता है कि जन्मदिनोत्सव जिनका मनाया जाता है उस समय उनका साथी, मित्र, भाई सब अपने-अपने सत्यापन विधि को अपनाना मानव परंपरा के लिये आवश्यकीय मौलिक प्रयोजन सिद्ध होना सहज है ।

4. शिक्षा-संस्कार व्यवस्था :- बनाम मानव जाति, धर्म, कर्म, व्यवहार, दीक्षा, संस्कार - हर मानव में, से, के लिये और मानव परंपरा में, से, के लिये एक अनिवार्य अध्ययन, अवधारणा, अनुभव प्रमाण है । इसी क्रम में मानव परंपरा अपने संपूर्ण वैभव को स्वायत्त मानव, परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होना सहज है । फलस्वरूप अखण्ड समाज में भागीदारीपूर्वक समाज मानव और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारीपूर्वक व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होना शिक्षा-संस्कार का सार्थक प्रयोजन है ।

शिक्षा-संस्कार का आधार रूप अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन, मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववादी विधि) से सम्पन्न होना देखा गया है । यही परम जागृति का द्योतक है । यही जागृत मानव परंपरा की आवश्यकता है । मध्यस्थ दर्शन का तात्पर्य मध्यस्थ जीवन, मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ सत्ता सहज विधि से अध्ययन कार्य को सह-अस्तित्व सूत्र में पूर्णतया सजा लिया गया । यही शिक्षा का महत्वपूर्ण उपलब्धि है । **मध्यस्थ जीवन का स्वरूप नियम, न्याय, धर्म, सत्यपूर्ण विधियों से जीने की कला ही है ।** यही परिवार मूलक स्वराज्य के रूप में स्वतंत्रता और स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होना देखा गया है । यही मध्यस्थ जीवन का वैभव है । ऐसा स्वराज्य और स्वतंत्रता हर मनुष्य में, से, के लिये एक चाहत होता ही है । जैसे :- हर मानव संतान को जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्यव्यवहार का इच्छुक,

सत्यवक्ता होने के रूप में देखा गया है । इन्हीं आशयों की पूर्ति के लिये नियम, न्याय, सर्वतोमुखी समाधान, जीवनज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण सहज तथ्यों को अवधारणा में स्थापित कर लेना ही मानवीयतापूर्ण शिक्षा का स्वरूप और कार्य है । इस कार्यविधि के अनुसार मानव परंपरा अपने जागृति को प्रमाणित करता है । यही जागृत मानव परंपरा का तात्पर्य है।

मध्यस्थ सत्ता अपने आप में व्यापक रूप में विद्यमान है। इसे हर दो वस्तुओं के रूप में रिक्त स्थली के रूप में देख सकते हैं। इसी रिक्त स्थली का नाम मध्यस्थ सत्ता है । क्योंकि इसी में सम्पूर्ण प्रकृति भीगा, डूबा, घिरा हुआ दिखाई पड़ती है। ऐसी सत्ता हर एक में पारगामी होना और हर परस्परता में पारदर्शी होना देखने को मिलती है । यही मध्यस्थ सत्ता है । इसी सत्ता में संपृक्त मानव, जीवन और शरीर का संयुक्त रूप में विद्यमान है । सम्पूर्ण प्रकृति संपृक्त है ही । मानव अपने में मध्यस्थ सत्ता में संपृक्तता को अनुभव करने का अवसर समान रूप में होना पाया जाता है ।

मध्यस्थ जीवन अस्तित्व में दृष्टा पद प्रतिष्ठा सहज विधि में अपने में विश्वास करना, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबन पूर्वक हर मनुष्य में प्रमाणित करना समीचीन है । इसी आधार पर मानव अपने मौलिक अधिकार संवेदनशीलता

और संज्ञानशीलता में संतुलन को पाकर नित्य समाधान सम्पन्न होने का अवसर नित्य समीचीन है । यही जागृत परंपरा है । फलस्वरूप मध्यस्थ जीवन प्रमाणित होता है ।

सर्वतोमुखी समाधान स्वयं न तो अधिक होता है न कम होता है । अधिक कम होने के आरोप ही सम-विषम कहलाता है । अस्तित्व स्वयं कम और ज्यादा से मुक्त है इसीलिये अस्तित्व स्वयं मध्यस्थ रूप में होना पाया जाता है । यही सह-अस्तित्व का स्वरूप है । **सह-अस्तित्व स्वयं समाधान सूत्र, व्याख्या और प्रयोजन है** । मानव अस्तित्व में अविभाज्य है। मानव जागृतिपूर्वक ही समाधान सम्पन्न होने की व्यवस्था है और हर मनुष्य स्वयं भी समाधान को वरता है । इसीलिये अस्तित्व सहज अपेक्षाएँ सब विधि होना पाया जाता है । सम विषमात्मक आवेश सदा ही समस्या का स्वरूप होना पाया जाता है । मानव सदा-सदा ही जागृति और समाधान को वरता ही है । समाधान संदर्भ मध्यस्थ है । नियम और न्याय के संतुलन में समाधान नित्य प्रसवशील है । यही जागृति का आधार है । यही उत्सव का सूत्र है । उत्सव की परिभाषा पहले से की जा चुकी है । शिक्षा-संस्कार का शुरूआत जब कभी भी आरंभ होता है जिस तिथि में होता है शिक्षा-संस्कार के आरंभोत्सव के रूप में अनुभव के रूप में सम्मान करना एक आवश्यकता है क्योंकि हर मानव संतान अभिभावकों और सुहृदयों के अपेक्षा के अनुरूप जागृत होना एक आवश्यकता है। जागृत परंपरा में हर मानव संतान का अभिभावक, सुहृदय

और बन्धुओं का जागृत रहना स्वाभाविक है । इसी आधार पर जागृत मानव संतान में जागृति की अपेक्षा होना एक स्वाभाविक, नैसर्गिक तथ्य है । अस्तु जागृति सहज अपेक्षाएँ अग्रिम पीढ़ी में संस्कार का आधार होना भी स्वाभाविक है । इसी के आधार पर जिस दिन से शिक्षा का आरंभ होता है उस दिन सभी बंधु-बांधव मिलकर विधिवत जागृति की अपेक्षा संबंधी चर्चा परिचर्चा गोष्ठी, गायन आदि विधियों से सम्पन्न करना जागृति क्रम संस्कार के लिये अपेक्षित है ।

जिस समय में शिक्षा-संस्कार सम्पन्न हो जाते हैं उस समय में जागृति का प्रमाण सभा, उत्सव सभा के बीच हर पारंगत नर-नारी अपने को स्वायत्त मानव के रूप में सत्यापित करने, परिवार मानव के रूप में कर्तव्य और दायित्वशील होने और अखण्ड समाज-सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने में अपने निष्ठा को सत्यापित करने के रूप में उत्सव समारोह को सम्पन्न किया रहना मानव परंपरा में एक आवश्यकता है ।

जाति सम्बन्धी मुद्दे पर मानव जाति की अखण्डता को पूर्णतया स्वीकारा हुआ मानसिकता जिसके आधार पर सम्पूर्ण सूत्रों का प्रतिपादन करना हर स्नातक के लिये एक आवश्यकता और परंपरा के लिये एक अनिवार्यता बना ही रहेगी । इस उत्सव में ज्यादा से ज्यादा पहले से पारंगत और प्रौढ़ लोग मूल्यांकित करने के रूप में उत्सव का पहल बनाए रखने की

एक आवश्यकता इसलिये है कि हर स्नातक अपने उत्साह का पुष्टि विशाल और विशालतम रूप में प्रमाणित होने की प्रवृत्ति उद्गमित होना देखा गया है।

धर्म और दीक्षा संस्कार को जागृतिपूर्णता, स्वानुशासन, प्रामाणिकता के रूप में प्रतिपादित करना हर स्नातक व्यक्ति का अपने ही उद्देश्य और मूल्यांकन के विधि से एक आवश्यकता बना ही रहता है । जिसके आधार पर प्रौढ़ और बुजुर्ग लोग समय-समय पर आवश्यकतानुसार मूल्यांकन कर सके और तृप्ति पा सके । उत्सव कार्य में एक आवश्यकता यह बना ही रहता है ।

कर्म और व्यवहार संस्कार का सत्यापन हर मनुष्य अपने स्वायत्तता में निष्ठा के रूप में सत्यापित करना स्वाभाविक कार्य है । अतएव इसे व्यवहार में सामाजिक और व्यवसाय में स्वावलंबन के रूप में ही पहचाना जाता है । जिसका सत्यापन हर स्वायत्त मानव (नर-नारी) करता है । यह उत्सव का स्वरूप में एक अंग बनके रहना आवश्यक है । ऐसी शिक्षा-संस्कार सम्पन्नता का उत्सव हर ग्राम में हर वर्ष सम्पन्न होना स्वाभाविक है आवश्यकता भी है क्योंकि अग्रिम पीढ़ी के लिये यह उत्सव प्रेरणा स्रोत बनकर ही रहता है । संस्कार मर्यादा बोध कराने वाला पारंगत आचार्य ही रहेंगे ।

स्नातक अवधि में पहुँचा हुआ सभी गाँव के स्नातकों का संयुक्त उत्सव सभा सम्पन्न होना भी आवश्यकता है । यह

शिक्षण संस्था में ही समारोह रूप में सम्पन्न होना सहज है । इस उत्सव का प्रयोजन परस्पर स्नातकों का सत्यापन, श्रवण, साथ में अध्ययन अवधि में बिताये गये दिनों की स्मृति के साथ मूल्यांकित करने का शुभ अवसर समीचीन रहता है । इस अवसर के आधार पर हर एक स्नातक को अन्य स्नातक सत्यापन के आधार पर प्रमाणिकता को मूल्यांकित करने का अवसर बना रहता है । इस अवसर का सटीक प्रस्तुति और सदुपयोग उत्सव के स्वरूप में वैभवित होना स्वाभाविक है । इन्हीं के साथ इनके सभी आचार्यों का मूल्यांकन और आशीष, आशीष का तात्पर्य स्नातक में जो स्वायत्तता स्थापित हुई है वह नित्य फलवती होने स्वायत्त मानव, समाज मानव, व्यवस्था मानव के रूप में प्रमाणित होने के आशयों को व्यक्त करने के रूप में उत्सव अपने आप में शुभ, सुन्दर, समाधानपूर्ण होना देखा जाता है ।

5. विवाह संस्कारोत्सव :- सम्बन्धों को पहचानना ही संस्कार है। ऐसे सम्बन्ध अस्तित्व सम्बन्ध, मानव सम्बन्ध और नैसर्गिक सम्बन्ध के रूप में जानना और पहचानना जागृत मानव में स्वाभाविक क्रिया है। अस्तित्व सम्बन्ध सह-अस्तित्व के रूप में, नैसर्गिक सम्बन्ध जलवायु, वन, धरती के रूप में, मानव सम्बन्ध अखण्ड समाज - सार्वभौम व्यवस्था के अर्थ में सम्बन्धों को पहचानना एक आवश्यकता है । हर जागृत मानव में यह सार्थक होता है । मानव सम्बन्ध क्रम में पति-पत्नी सम्बन्ध एक सम्बन्ध है। ऐसे सम्बन्ध के स्वरूप कार्य के बारे में

पहले ही सभी सम्बन्धों के साथ आवश्यकता, लक्ष्य, उपयोगिता के सम्बन्ध में विश्लेषण और विवेचना कर चुके हैं ।

यहाँ उत्सव के सम्बन्ध में स्वरूप प्रक्रिया को प्रस्तुत करना आवश्यक समझा गया है । विवाह सम्बन्ध में बंधु-बांधव, अभिभावक, मित्र, सुहृदय मनीषियों की सम्मति, प्रसन्नता, उत्साह के साथ निश्चयन होना इस संबंध संस्कारोत्सव की पूर्व भूमि है । उभय पक्ष के अभिभावक उत्सवित रहना सहज है । ऐसे पृष्ठभूमि के साथ विवाहोत्सव सम्पन्न होना मानव परंपरा में एक आवश्यकता है । क्योंकि संयत जीवन प्रणाली के लिये सम्बन्धों का पहचान उसके निर्वाह के साथ उत्सवित रहना संस्कार का ही द्योतक है । संस्कार का परिभाषा भी यही ध्वनित करता है कि पूर्णता के अर्थ में सम्पूर्ण कृत-कारित-अनुमोदित, कायिक, वाचिक, मानसिक विधियों से सदा-सदा निर्वाह करने की स्वीकृति । यही सम्बन्ध की पहचान का तात्पर्य है । ऐसा सम्बन्ध निर्वाह सदा-सदा के लिये सुखद, सुन्दर, समाधानपूर्ण होना पाया जाता है । यही नित्य उत्सव का आधार और परिणाम है क्योंकि किसी सम्बन्ध को सुखपूर्वक निर्वाह करना आरंभ होता है उसी के साथ सुन्दरता और समाधान प्रभावित किया रहता है । समाधान सहित किसी सम्बन्ध को निर्वाह करना आरंभ करते हैं उसी समय से समाधान और सुख प्रभावित किया रहता है । इसी प्रकार सुन्दरतापूर्वक किसी सम्बन्ध को निर्वाह करना आरंभ करते हैं उसी के साथ समाधान और सुख प्रभावित किया रहता है ।

इसका प्रधान प्रक्रिया स्वरूप को हम देख पाते हैं कि अस्तित्व सम्बन्ध को समाधान पूर्वक निर्वाह करते हुए सुख, सुन्दरता को अनुभव किया जाता है । नैसर्गिकता के साथ सुन्दरतापूर्वक सम्बन्ध का निर्वाह करते हुए स्थिति-गति में सुख और समाधान का अनुभव करना सहज है । मानव सम्बन्धों में सुखपूर्वक सम्बन्ध निर्वाह करता हुआ गति स्थिति में सुन्दरता और समाधान का अनुभूत होना देखा गया है । यही पूर्णता का स्वरूप है उसकी अक्षुण्णता स्पष्ट है ।

सम्पूर्ण उत्सव में लक्ष्य सुख, सुन्दर, समाधान का अनुभव; विचारों में उज्जवलता, कार्य व्यवहार में उदात्तीकरण ही उत्साह और प्रसन्नता का उत्कर्ष होना देखा गया है । यह जागृतिपूर्वक ही सम्पन्न होना पाया गया है।

विवाह संस्कारोत्सव मुहूर्त में स्वाभाविक रूप में कन्या वर पक्ष के बन्धु-बांधव, मित्रों का उपस्थित रहना वांछनीय कार्य है । वधु-वर स्वाभाविक रूप में स्वायत्त मानव के रूप में पारंगत परिवार मानव के रूप में प्रमाणित रहने के आधार पर ही उभय अर्हता का निश्चय होना पाया जाता है । जैसे ही किसी शोभनीय स्थली में उभय पक्ष के सभी लोग एकत्रित होते हैं उसमें सभी आयु-वर्ग के लोगों का रहना स्वाभाविक है । सभा स्थल के एक ओर कन्या पक्ष के माता पिताओं से संबंधित बन्धु-बान्धवों का होना, उन्हें क्रम से मातृ पक्ष के लोगों को माता के तरफ कतार से, पिता पक्ष के सभी लोगों को पिता के साथ कतार से बैठाया जाना शोभनीय होता है ।

इसी प्रकार वर पक्ष का भी कतारीकरण विधि से आसनासीन कराना होता है । इस कार्य में वधु-वर सहित उनके सभी मित्रगण भी प्रवृत्त रहते हैं। तीसरे ओर वधु का मित्रों की ओर तथा चौथे ओर वर के मित्रों का कतारीकरण विधि से आसनासीन कराया जाता है । तदोपरान्त आसनासीन वधु के माता पिता के मध्य में रिक्त आसन पर वधु का आसीन होना उसी प्रकार वर के माता पिता के मध्य में वर का आसीन होना सभा स्थल का शोभा सम्पन्न होती है । उसके तुरंत बाद वधु के पिता अपने आशय को व्यक्त करते हैं कि ''मैं अमुक नाम वाला अपने पत्नी का नाम सहित, हम आपकी सम्पूर्ण जागृति और प्रामाणिकता सहित मेरे पुत्री अमुक नाम वाली जो यहाँ आपके सम्मुख प्रस्तुत है इनको मानवीय संस्कारों को समय-समय पर प्रस्थापित करते आया हूँ । इनका पोषण-सुरक्षा और सुशीलता को हम दोनों पति-पत्नी प्रेरक-कारक रहे हैं । हमारा विश्वास है कि मेरी पुत्री परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होने में समर्थ है । अतएव अब हम इस समारोह में अमुक नाम वाले जिनके माता-पिता का नाम सहित वर के साथ विवाह करने के लिए हम कृत संकल्पित हैं । मेरे इस संकल्प के साथ मेरे तथा मेरी पत्नी के सभी बंधुओं, मेरी पुत्री के सभी मित्रों की सम्मति है । इसी के साथ हर्ष ध्वनियाँ सम्मत उच्चारण करता हुआ सम्पन्न होगा ।

इसी प्रकार वर पक्ष का पिता अथवा अभिभावक ऐसा ही विश्वासपूर्वक प्रस्तुत होना स्वाभाविक है । इसके तुरंत बाद

सभा को संबोधित करता हुआ विवाहोत्सव का मार्गदर्शन करने वाला व्यक्ति विवाह के मार्मिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता पर सम्बोधित करेगा । इसके तुरंत बाद जितने भी सभासद रहते हैं वधु-वर के, से उन-उनके साथ आत्मीयतापूर्वक विवाहोत्सव की औचित्यता पर अपने-अपने सम्मति व्यक्त करेंगे । पुनः हर्षध्वनि सम्पन्न होगी । इस बीच मंगलगीत, सौभाग्य गीत, परिवार मानव गीतों का सुस्वर गायन सम्पन्न होगा । इसमें हर नर-नारी का भाग लेना स्वाभाविक रहेगा । तदुपरांत वर-वधुओं के गले में उन-उनके माता पिता फूल-माला पहनायेंगे ।

सभा के मध्य में बनी हुई मण्डपाकार समीप वधु वर पहुँच कर एक-दूसरे को माला पहनायेंगे पुनः हर्षध्वनि मंगल ध्वनि का होना स्वाभाविक है।

इसके उपरान्त विवाहोत्सव के मार्गदर्शक व्यक्ति के अनुसार सुखासन पर बैठे हुए वधु-वर दोनों पारी-पारी से बैठे हुए स्वयं को स्वायत्त मानव के रूप में होने का सत्यापन करेंगे और परिवार मानव के रूप में जीने के संकल्प को दृढ़ता से घोषित करेंगे । इसके उपरान्त

1. दोनों अपने-अपने माता-पिता का नाम सहित व्यवस्था मानव के रूप में जीने का संकल्प लेगें ।
2. परिवार मानव के रूप में जीने का संकल्प करेंगे ।
3. दोनों बारी-बारी से कायिक-वाचिक-मानसिक, कृत कारित, अनुमोदित सभी कार्य व्यवहार विचारों में एक

दूसरे के पूरक होने का संकल्प करेंगे ।

4. परिवार तथा अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का दायित्व कर्तव्यों को निर्वाह करने का संकल्प करेंगे ।
5. तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग-सुरक्षा करने का संकल्प करेंगे ।
6. सम्बन्ध-मूल्य-मूल्यांकन उभयतृप्ति को प्रमाणित करने का संकल्प करेंगे ।
7. मानवीयतापूर्ण आचरण में पूर्ण निष्ठा बरतने का संकल्प करेंगे ।

इस प्रकार किये जाने वाले हर संकल्प के साथ हर्षध्वनि पूरी सभा में होना स्वाभाविक है और उत्सव का मार्गदर्शक हर संकल्प के उपरान्त उसकी महिमा आवश्यकता और प्रयोजनों का प्रबोधन करेंगे । इसी क्रम में आवश्यकतानुसार संकल्पों के बीच-बीच आनुषंगीय गीत का भी प्रकाशन तथा प्रदर्शन किया जाना स्वाभाविक रहेगा । इस प्रकार संकल्प समारोह सम्पन्न होने के उपरान्त सर्वप्रथम उभय पक्ष के माता-पिता, वधु-वर को परिवार मानव के रूप में सफल होने की कामना करेंगे । पुष्प-वर्षा के साथ-साथ वधु-वर से अधिक आयु एवं समान-आयु वाले इसी प्रकार आशीष करेंगे । वधु वर से छोटे आयु वाले सभी लोग आपके परिवार जीवन से हम सब प्रेरणा पाते रहेंगे । ऐसी शुभकामना व्यक्त करेंगे और पुष्प वर्षा करेंगे ।

अंत में हर्ष ध्वनि के साथ समारोह सम्पन्न होगा । इसी के साथ-साथ वधु वर के माता-पिता सबको कृतज्ञता अभिनंदन प्रस्तुत करेंगे । इसके तुरंत बाद वधु-वर दोनों को पारितोष अर्पित करना चाहेंगे, करेंगे । इस प्रकार विवाहोत्सव कार्य को सम्पन्न करना एक अनिवार्य स्थिति है ।

दिन, समय, बेला, मुहुर्त के सम्बन्ध में भी मानव परंपरा में विचार विधि कल्पना में आना स्वाभाविक है । इस मुद्दे पर प्रधान रूप में जागृति के उपरान्त, जागृत परंपरा में मानवीयतापूर्ण संचेतना अर्थात जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने की कार्य व्यवहार, विचार सम्पन्न करने की शुभ व सुन्दर समाधानपूर्ण स्थिति गति रहेगी । मानव ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में होने के कारण विवाह के लिये अनुकूल समय को ऋतु काल के अनुसार निर्णय लेना और ब्रह्माण्डीय किरण विधि से ग्रह-गोल-नक्षत्रों का स्थिति गतियों को आवश्यकतानुसार पहचानना स्वाभाविक रहेगा । इसी के साथ दिन, वार, तिथियों को पहचानना रहेगा ही । ये सभी बिन्दुओं पर मनुष्य सर्वतोमुखी प्रवृत्तियों का द्योतक है । इस क्रम में स्वाभाविक है बसन्त और शीत ऋतुओं में मनुष्य को सभी देश-काल में विवाहोत्सव का अनुकूलता बना ही रहती है । मानवीयतापूर्ण परंपरा के साथ सभी ब्रह्माण्डीय किरण अनुकूल रहना स्वाभाविक रहता है । क्योंकि मानवीयतापूर्ण परंपरा का अवतरण में भी ब्रह्माण्डीय किरणों का सानुकूलता बना ही रहता है । इसी सत्यतावश ब्रह्माण्डीय किरणों का सानुकूलता में विश्वास होना स्वाभाविक

है । इसके उपरान्त भी हर देश जो अक्षांश-देशान्तर रेखा विधि से धरती पर देश का चिन्हित होना उस देश पर ब्रह्माण्डीय किरणों के प्रभावों को पहचानना मानव जागृति सहज कृत्य और परीक्षण है । इस विधि से भी शुभ-बेला को पहचान सकते हैं । सर्वसुलभ बेला यही है कि ऋतु-काल, परिस्थितियाँ उभय परिवार के लिये अनुकूल होना ही सार्वभौम औचित्यता है।

समारोह

मानव परंपरा ज्ञानावस्था की अभिव्यक्ति संस्कारानुषंगीय विधि से जागृतिपूर्णता को प्रमाणित करने वाला होने के कारण सभी उत्सवों में सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति, तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करना समीचीन रहता ही है । जिसकी अक्षुण्णता का होना देखने को मिलता है । अतएव अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के लिये पूरक है, सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के लिये पूरक होना देखा गया है । इसी क्रम में अखण्ड समाज का अध्ययन और अवधारणापूर्वक अनुभव सहज होना देखा गया है । इसके लिये अर्थात संस्कार के लिये उत्सव के प्रकारों को स्पष्ट किया जा चुका है । सार्वभौम व्यवस्था का स्वरूप सभा विधि से अखण्ड समाज का स्वरूप परिवार विधि से चरितार्थ होना देखा गया है । सभी सभाओं में समारोह सम्पन्न होना एक आवश्यकता बनी रहती है । इन समारोह की प्रधान अभिव्यक्ति सभा और सभा से अनुशासित

5-5 समितियों का कार्यकलाप उसकी स्थिति-गति का मूल्यांकन और सभा का उद्देश्य के आधार पर सफलताओं का आकलन मूल्यांकन हर्ष-ध्वनियों के साथ समारोह का उत्साह और प्रसन्नता का मूल्यांकन किया जाता है । हर सभा का अपने उत्सव को व्यक्त करने का निश्चित उपलब्धियों के साथ होना ही देखा गया है जैसे परिवार में समाधान; समृद्धि; परिवार समूह में न्याय, उत्पादन में समारस्यता; ग्राम मुहल्ला परिवार सभा में न्याय, उत्पादन विनिमय कार्यों में संतुलन और सामरस्यता समाधान का आधार बना रहता है । यही नित्य उत्सव का स्वरूप है । हर समारोह में, कम से कम ग्राम परिवार सभा में समारोह का सभी सम्भावनाएँ समीचीन रहता ही है ।

ग्राम-मुहल्ला सभा से मनोनीत-अनुशासित 5 समितियों का कार्यरत रहना स्वराज्य व्यवस्था का वैभव है । इन वैभव के सफलताओं को देखने सुनने के लिये पूरे ग्राम मुहल्लावासी को उत्सुक रहना आवश्यक है । ग्राम सभा से निश्चित नियंत्रित विधि से एक-एक समिति का मूल्यांकन कार्यक्रम का तौर तरीका जो अपनाये गये थे उसके आधार पर सफलता का समारोह सम्पन्न करना आवश्यक रहता ही है । इसका समयावधि ग्राम सभा के समयानुसार सम्पन्न होना व्यवहारिक है । इसी के अनुसार न्याय सुरक्षा समिति के सफलताओं को समीक्षा कर पूरा ग्रामवासियों को अवगाहन कराने का कार्य सम्पन्न किये जाने के रूप में देखने को मिलता है । इससे सम्पूर्ण ग्रामवासी न्याय सुरक्षा सुलभ होने में विश्वस्त एवं आश्वस्त होने का

अवसर समारोह समय में स्वाभाविक रूप में देखने को मिलता है । इसी उमंग के साथ भविष्य के प्रति भरोसा करना स्वाभाविक होती है । वर्तमान तक की सफलता भविष्य के प्रति आश्वस्तता का हर संगम स्थिति, गति, उत्साह और प्रसन्नता के स्वरूप में ही प्रमाणित होना देखा गया है । इसी प्रकार उत्पादन-कार्य समिति, विनिमय-कोष समिति, स्वास्थ्य-संयम कार्य समिति मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार समितियों का वर्तमान तक के सफलता, भविष्य में आश्वस्त होने का सफल योजना के अवगाहन तक का समारोह प्रसन्नता में अभिभूत होना, स्वाभाविक है । ऐसी अभिभूति के साथ ही हर्ष ध्वनि सफलता का कीर्ति गायन, भविष्य में सफलता का आकांक्षा, सम्भावना सहित कर्तव्यों और दायित्वों की स्वीकृति और उसका उद्‌गार सहित हर्षध्वनि गीत-संगीत का वातावरण बनाया जाना समारोह-वैभव का प्रतिष्ठा रहेगा । अस्तु, ग्राम सभा बनाम पाँचो समितियों सहित सफलता का आंकलन अग्रिम योजनाओं का प्रकाशन समारोह का सारतत्व रहेगी । यही व्यवस्थामूलक समारोहों की महिमा है । इसी प्रकार हर स्तरीय समितियों में समारोह कार्य सम्पन्न होना स्वाभाविक रहेगा । यह विश्व परिवार पर्यन्त व्यवहारान्वयन होना देखने को मिलता है । सम्पूर्ण मानव इस धरती मे समारोह और उत्साहपूर्वक संतुष्ट होते हैं । इसकी नित्य समीचीनता जागृति परंपरा पर्यन्त बनी ही रहेगी ।

10

मूल्यांकन

समाज शास्त्र में प्रधानतः मूल्यांकन समाज और व्यवस्था का ही होना पाया जाता है । समाज गति मूलतः नियम और न्याय के समान में होना देखा गया है । इसका संतुलन रूप व्यवस्था के रूप में अपने आप प्रमाणित होना देखा गया है । क्योंकि नियम और न्याय के तृप्ति बिन्दु में ही समाधान का होना पाया जाता है । नियम और न्यायपूर्वक ही कर्तव्य और दायित्व होता है । यह व्यवस्था कार्य में और व्यवहार कार्य में वर्तमान होना आवश्यक देखा गया है ।

व्यवहार कार्यों को मूल्य, चरित्र और नैतिकता का पूरक विधि से सम्पन्न होना देखा गया है । यही मानवीयतापूर्ण आचरण का वैभव है और प्रमाण है । व्यवहार में न्यायपूर्वक नियमों का, व्यवस्था में नियमपूर्वक न्याय का अनुबंधित रहना दिखाई पड़ती है । इसे हर मनुष्य अनुभव करता ही है या करेगा ही । जैसे :- हर सम्बन्धों में मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति यह न्याय का स्वरूप है । इसके समर्थन में अथवा इसके पूरकता में

नियम के रूप में तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग-सुरक्षा प्रमाणित होती है । इनके पूरकता में स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष, दयापूर्ण कार्य-व्यवहार सम्पन्न होना देखा गया है । मूल्यांकन का यह आधार बिन्दु है । दूसरा आधार बिन्दु मानव अपने परिभाषा के अनुरूप 'त्व' सहित व्यवस्था में जीने की कला को प्रमाणित करता है । यही समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में तृप्ति का स्रोत और गति अनुस्यूत रूप में बना ही रहता है । यही व्यवस्था का वैभव होना पाया जाता है।

नियम त्रय विधि से समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को, परिवार मानव, समाज मानव और व्यवस्था मानव के रूप में सार्थक बनाता है । यह मानव परंपरा का वांछित फल है । इसे पाने के लिये ही, सर्वसुलभ होने के लिए स्वराज्य व्यवस्था पाँचो आयाम सम्पन्न विधि से दस स्तरीय स्वरूप में अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का स्पष्ट होना स्वाभाविक है । इसकी आवश्यकता हर मानव में देखने को मिलता है । इसे सफल और अक्षुण्ण बनाने की विधि से ही मूल्यांकन कार्य सम्पन्न होना स्वाभाविक है ।

शिक्षा-संस्कार का मूल्यांकन :- शिक्षा-संस्कार क्रम में स्वायत्त मानव लक्ष्य के अर्थ में, जो जीवन ज्ञान, सह-अस्तित्व दर्शन ज्ञान मूलक विवेक और विज्ञान विधि सहित मानवीयता पूर्ण आचरण के अर्थ में शिक्षा कार्य सम्पन्न हुआ

रहता है उससे विद्यार्थी अपना मूल्यांकन करेंगे । हर कक्षा में विद्यार्थी अपना मूल्यांकन स्वयं करने की परंपरा होगी । इस मूल्यांकन विधि में हर विद्यार्थी स्व निरीक्षण पूर्वक ही मूल्यांकन करना हो पाता है । इसमें किताबों की संख्या गणना गौण हो जाता है । वस्तु के रूप में कहाँ तक जानना, मानना, पहचानना परिपूर्ण हो चुका है, इसके पहले परिपूर्णता की ओर जितने भी सीढ़ियाँ कक्षावार विधि से बनी रहती है उसके अनुसार किस सीढ़ी तक जानना, मानना, पहचानना संभव हो चुका रहता है, निर्वाह करने में जिन-जिन विधाओं में सम्बन्धों में पारंगत हुए रहते हैं इसका सत्यापन करना ही मूल्यांकन प्रणाली रहेगी ।

संस्कारों के संबंध में जाति, धर्म, कर्म, दीक्षा, विधा भी स्वनिरीक्षण पूर्वक ही विद्यार्थी अपने में, से मूल्यांकित करने की व्यवस्था बना रहेगा । जब सभी विद्यार्थी अपना-अपना मूल्यांकन लेखिक-अलेखिक विधियों से प्रस्तुत करते हैं । यह परस्पर अवगाहन करने का एक संगीतमय स्थिति बन ही जाती है । इससे परस्पर प्रेरकता और पूरकता दोनों संभव हो जाता है फलस्वरूप धारकता-वाहकता में सुगमता निर्मित होना पाया जाता है । शिक्षा का सम्पूर्ण सार्थकता स्वायत्त मानव के रूप में प्रमाणित होना ही है । परिवार मानव के रूप में संकल्पित होना और प्रमाणित होना ही है । हर शिक्षा, शिक्षण शाला-मंदिर संस्थाएँ अपने आप में एक परिवार होना स्वाभाविक है। परिवार के अंगभूत रूप में ही शिक्षा कार्य सम्पादित होना ही स्वाभाविक है। इसीलिये हर शिक्षण संस्था में परिवार मानव

रूप में प्रमाणित होना सभी विद्यार्थियों के लिये सहज है । इस प्रकार स्वायत्त मानव और परिवार मानव का प्रमाण और उसका मूल्यांकन स्वाभाविक रूप में जीवंत होना पाया जाता है ।

मनुष्य का सम्पूर्ण वर्चस्व स्वायत्त मानव और परिवार मानव के रूप में मूल्यांकित हो जाती है । जो मानवीयतापूर्ण आचरण का ही प्रमाण है । दूसरा समझे हुए को समझाने की विधि में अर्थात जीवन-ज्ञान, अस्तित्व दर्शन को विवेक, विज्ञान, व्यवहार सूत्रों सहित समझाने की विधि से, समझा हुआ प्रमाणित होता है । इस प्रकार हर विद्यार्थी अपने में समझा हुआ को समझाकर प्रमाणित होने की व्यवस्था मानवीय शिक्षा-संस्कारों में सर्वसुलभ होता है । एक विद्यार्थी दूसरे को समझाने के उपरान्त समझाया हुआ को स्वयं ही मूल्यांकित करेगा । फलस्वरूप सभी विद्यार्थियों में पारंगत विधि होना स्पष्ट हो पाता है । तीसरे में किया हुआ को कराने की विधि से भी हर विद्यार्थी प्रमाणित होना उसका मूल्यांकन स्वयं करना मानवीय शिक्षा संस्थान में सहज रूप में रहता ही है । इसका मूलभूत स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में कार्य-व्यवहार करता हुआ शिक्षक, आचार्य, विद्वान ही शिक्षा सहज वस्तु प्रक्रिया, प्रणाली, पद्धति, नीति का धारक-वाहक होना पाया जाता है । इसकी अक्षुण्णता बना ही रहता है । इस प्रकार शिक्षा का धारक-वाहक रूपी आचार्यों से शिक्षित होने के उपरान्त हर विद्यार्थी अपना मूल्यांकन करने की स्थिति में उभयतृप्ति का होना देखा जाता है । यथा-विद्यार्थी और आचार्यों के परस्परता

में यह स्पष्ट हो जाती है । इस मूल्यांकन प्रणाली में दायित्व और कर्तव्य बोध सुदूर आगत तक स्वीकृत होना स्वाभाविक होता है । यही संस्कार का मौलिक स्वरूप है । इसी सार्वभौम आधार पर हर शिक्षित व्यक्ति मौलिक अधिकारों को स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करने में सफल हो जाता है ।

न्याय-सुरक्षा का मूल्यांकन - मूल्यों का मूल्यांकन क्रम में न्याय सुरक्षा स्वाभाविक रूप में सार्थक होना पाया जाता है । सम्बन्धों का पहचान के साथ ही मूल्यों का निर्वाह करना स्वाभाविक प्रक्रिया है । यह जागृत मानव का सार्वभौम प्रमाण है । मूल्यों का निर्वाह क्रम में अर्पण, समर्पण, पोषण, संरक्षण सहज रूप में ही प्रमाणित हो पाता है । जागृत का ही जागृतिशील इकाई को पहचानना-निर्वाह करना एक दायित्व है । इसी दायित्व के आधार पर जिनके साथ सम्बन्धों का निर्वाह होता है उपर कहे चार सूत्रों में से कोई न कोई सूत्र सह-अस्तित्व सहज वर्तमान रहता ही है । इसलिये परस्पर सुरक्षा समीचीन रहता है और प्रमाणित रहता है । सुरक्षा का तात्पर्य यही हुआ अर्पण, समर्पण, पोषण, संरक्षण । यह चारों सूत्र विधि से प्रमाण, समाधान, समृद्धि सम्पन्न परिवार मानव से ही प्रावधानित होना पाया जाता है । अर्पण, समर्पण तब तक भावी रहता है जब तक संतान अपने स्वायत्तता और परिवार मानव प्रतिष्ठा को प्रमाणित नहीं करता है । अर्पण समर्पण का दूसरा स्थिति कोई दूसरा रोगी हो जाए उसके साथ अर्पण, समर्पण होने का सूत्र क्रियाशील होना पाया जाता है । तीसरा

स्थिति यही है किसी देश में प्राकृतिक प्रकोप जैसे-चक्रवात, भूकंप, तूफान, ज्वालामुखी, उल्कापात, शिलापात, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, से पीड़ित लोगों के साथ अर्पण-समर्पण का सूत्र क्रियाशील होना पाया जाता है। ऐसे अर्पण समर्पण से किसी का पोषण और संरक्षण प्रमाणित होता है यही सुरक्षा का तात्पर्य है । इस प्रकार पोषण शरीर पक्ष को, संरक्षण मानसिकता विचार पक्ष को विश्वस्त कर देता है । यही परस्परता में समाधान, समृद्धि, सम्पन्न मानव परंपरा में होने वाली सुरक्षा कार्य विधि अपने आप स्पष्ट है ।

हर परिवार मानव संबंधों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन पूर्वक उभयतृप्ति पाने के कार्यक्रम में निष्णात रहता ही है । उपर कहे परिस्थितियाँ स्वाभाविक रूप में मानव सम्बन्धों के साथ वर्तमानित होने वाले संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का ही महिमा है । ऐसे कार्य-कलापों का मूल्यांकन उभय-पक्ष करता है । शैशवकालीन स्थितियों के अलावा अन्य सभी स्थितियों में परस्पर मूल्यांकन सम्पन्न होना सहज है । जैसे प्राकृतिक प्रकोप के लिये अर्पण-समर्पण, किया गया पूरकता कार्य विधि का मूल्यांकन उभय पक्ष करना स्वाभाविक है और इसमें उभय तृप्ति का होना भी स्वाभाविक है । इसी प्रकार रोगी और संतानों के साथ किया गया अर्पण समर्पण से उन-उन का सुरक्षा स्वाभाविक रूप से सम्पन्न हो पाता है । जिससे उभयतृप्ति होना देखा गया है । यही न्याय है । संतान जब कौमार्य और युवावस्था में होते हैं अभिभावकों से

निर्वहन किया गया क्रियाकलाप अर्पण - समर्पण का मूल्यांकन स्वाभाविक रूप में जीवन-जागृतिपूर्वक होता ही है । मानवीय शिक्षा पूर्वक जीवन जागृति समीचीन रहता ही है । इसी प्रकार सभी सम्बन्धों में किया गया पहचान मूल्यों का निर्वहन और उभयतृप्ति जागृत परंपरा में एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । इस प्रक्रिया में उभयतृप्ति नित्यभावी रहता ही है । जागृत परंपरा में केवल किशोरावस्था तक मानव संतान जागृतिशील रहना देखा गया है । युवा और प्रौढ़ अवस्था में हर मानव, परिवार मानव के रूप में वैभवित रहता ही है । परिवार मानव का स्वरूप, कार्य और परिभाषा सदा-सदा ही न्याय और नियम सम्बन्ध विधि से ही सम्पन्न हुआ करता है । इसी के प्रमाण में हर परिवार मानव समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व का धारक-वाहक होना जागृति सहज तथ्य है । जागृति मानव का वर होने के कारण जागृतिपूर्वक ही हर मनुष्य मानवत्व सहित व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होना समग्र व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करता हुआ देखने को मिलता है । यही न्याय का आद्यान्त स्वरूप है। शिशुकाल में केवल मूल्यांकन व्यक्त नहीं हो पाता है, तृप्ति अपने-आप प्रमाणित होती है । यह पोषण संरक्षण का फलन होना पाया जाता है । मूल्यांकन पूर्वक तृप्त रहने के लिये उभय जागृत रहना आवश्यक रहता ही है। जागृत परंपरा में हर संतान जागृत होता ही है । जागृति के अनन्तर मूल्यांकन भावी हो जाता है । मूल्यांकन में उभयतृप्ति ही संतुलन बिन्दु है । यही न्याय का प्रकाशन है । ऐसी मूल्यांकन

हर न्याय-सुरक्षा समिति में सम्पन्न होना स्वाभाविक है ।

न्याय-सुरक्षा समिति किसी भी स्थिति में मूल्यांकन करने में समर्थ रहता है । हर स्थितियों में सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन ही प्रमुख बिन्दु बना रहता है । जागृत मानव; सम्बन्धों की अवधारणा से परिपूर्ण रहता ही है । मूल्यों का अनुभव हर जागृत मानव में वर्तमान रहता ही है । इसी आधार पर मूल्यांकन सुलभ हो जाता है । फलस्वरूप समीचीन उभय पक्ष में तृप्ति का होना देखा जाता है।

न्याय-सुरक्षा का स्वरूप, कार्य और फलन परस्पर तृप्ति ही है । यह तृप्ति परस्परता में विश्वास के रूप में ही पहचाना जाता है । विश्वास अपने में जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित हो जाता है। इस विधि से न्याय-सुरक्षा जागृत परंपरा सहज लोक-मानस का स्वरूप होना पाया जाता है । अतएव न्याय-सुरक्षा पूरे गाँव का, पूरा ग्रामवासी, नगरवासी, धरती में निवासियों का जागृत मानसिकता का ही गति और स्थिति है । गति में सम्बन्ध, मूल्य, अर्पण, समर्पण, मूल्यांकन और उभय तृप्ति ही है । उभयतृप्ति निरंतर सह-अस्तित्व का प्रमाण है । सह-अस्तित्व के रूप में ही न्याय अपने में नित्य ध्रुव है । दूसरे ओर तृप्ति ही नित्य ध्रुव है। इसी बीच में सम्पूर्ण क्रियाकलाप जागृत मानव परंपरा में मूल्यांकित हो जाता है । इस विधि से न्याय-सुरक्षा मानव परंपरा में सहज व्यवहारिक अनिवार्यतम प्रक्रिया-प्रणाली के रूप में स्पष्ट है ।

3. उत्पादन-कार्य का मूल्यांकन :- पहले इन तथ्यों को स्पष्ट किया जा चुका है कि हर स्तरीय परिवार में आवश्यकता से अधिक उत्पादन एक अनिवार्य स्थिति है, सहज स्थिति है, आवश्यकीय स्थिति है । क्योंकि आवश्यकता से अधिक उत्पादन विधि से ही शरीर पोषण, संरक्षण समाज गति सम्पन्न हो पाता है । और इसके मूल में जीवन जागृतिपूर्वक ही समाज गति सार्थक होता है । सार्थकता का स्वरूप सह-अस्तित्व और तृप्ति है । सह-अस्तित्व में सदा-सदा उभयतृप्ति होना देखा गया है । यह भी विश्लेषणपूर्वक स्पष्ट किया जा चुका है । इस आधार पर शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति में तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा विधि से ही सम्भावित होना देखा गया । उत्पादित वस्तु ही धन है । मन का तात्पर्य जीवन शक्तियों से व निपुणता, कुशलता, पांडित्यपूर्ण मानसिकता से है । मन और तन समेत ही मनुष्य हर कार्य-व्यवहार करता है । जागृतिपूर्वक किये जाने वाले हर कार्य का फलन उत्पादित वस्तुओं के रूप में प्रधान रूप में मिलता है । यही वस्तुएँ धन के रूप में गण्य होना पाया जाता है । इस प्रकार तन, मन, धन के संयुक्त रूप में ही उपयोग, सदुपयोग व प्रयोजनों को पहचाना जाता है । उपयोगिता के आधार पर उत्पादित वस्तु का मूल्यांकन होता है । सदुपयोगिता विधि से ही सह-अस्तित्व और उभय तृप्ति रूपी प्रयोजन सिद्ध हो जाता है । इससे यह भी स्पष्ट है कि जागृति सहज सम्पूर्ण तृप्ति बिन्दुएँ संतुलन सहज है न कि सापेक्ष ।

संतुलन का सहज रूप व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी ही है । इसके मूल में परस्पर पहचान और निर्वाह स्वाभाविक प्रक्रिया है । यह अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व की ही महिमा है । यही परस्परता, पहचान और निर्वाह का सूत्र है । इसकी व्याख्या हर अवस्था में हर इकाई करती ही रहती है । इसका नित्य प्रमाण सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज पहचान-निर्वाह, परमाणु अंशों के परस्परता में पहचान-निर्वाह, परस्पर परमाणुओं में पहचान-निर्वाह, परस्पर अणुओं में पहचान और निर्वाह, परस्पर रचनाओं में पहचान-निर्वाह, प्राणावस्था में बीजानुषंगीय विधि से पहचान-निर्वाह, जीव संसार में वंशानुषंगीय पहचान-निर्वाह करना स्पष्ट है । ज्ञानावस्था में मानव संस्कारानुषंगीय (जानने, मानने के आधार पर) सह-अस्तित्व रूप में परिवार व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में पहचान-निर्वाह दृष्टव्य है । यह जागृति सहज रूप में स्पष्ट है । इसी क्रम में मानव संस्कारानुषंगीय व्यवस्था, बहुमुखी अभिव्यक्ति और संप्रेषणशील होने के आधार पर प्रधानतः पाँचो आयामों में मानव में, से, के लिये मूल्यांकन एक आवश्यकता के रूप में समीचीन रहती है । इसी क्रम में एक आयाम उत्पादन-कार्य है ।

हर उत्पादन मानव में निहित, मानव सहज निपुणता, कुशलता, पांडित्य सहित सहज मानसिकता पूर्वक शरीर के द्वारा प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन करने के फलस्वरूप वस्तुओं में उपयोगिता और कला मूल्य स्थापित होता है । यही उत्पादन

का अथ-इति है । ऐसे उत्पादित वस्तुओं का विनिमय इसलिये आवश्यक हुई कि हर परिवार में निश्चित कुछ वस्तुओं का उत्पादन करना समीचीन, संभव और क्रियान्वित रहता है । जबकि हर परिवार को जो उत्पादन सहज सम्पन्न रहते हैं उन वस्तुओं से भिन्न अन्य वस्तुओं की आवश्यकता बनी रहती है । इसलिये विनिमय प्रणाली है ।

हर वस्तु उपयोगिता के आधार पर मूल्यांकित होता है । सभी उपयोगिताएँ महत्वाकांक्षा-सामान्याकांक्षा के रूप में परिगणित होते हैं । इन सभी मूल्यांकन की सफलता समृद्धि के अर्थ में होना ही लक्ष्य है । यह हर परिवार मानव का स्वीकृत लक्ष्य है । समाधानपूर्वक ही समृद्धि का प्रमाण होना पाया जाता है । समाधान सदा-सदा तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग इसके फलन में सुरक्षा ही है । इस प्रकार सदुपयोग सुरक्षा के बिन्दुओं के आधार पर ही तृप्ति बिन्दु और उभय तृप्ति नित्य प्रमाण होना पाया जाता है । इसी आधार पर हर स्तरीय परिवारों में उत्पादन और समृद्धि का मूल्यांकन होना सहज है । सदुपयोग धर्म सूत्र से सुरक्षा राज्य सूत्र से संबंध रहता है ।

उत्पादन-कार्य समिति का मूल्यांकन भी उक्त आधारों पर सफलता मूल्यांकित हो पाता है । उत्पादन-कार्य समिति में भागीदारी करते हुए सदस्यों का मूल्यांकन समीचीन समय में परिवार और ग्राम में किये जाने वाले उत्पादन के प्रति जागृति ही है । यही पूरे ग्राम परिवार सहज आवश्यकता से अधिक

उत्पादन को प्रमाणित करता है । यही मूल्यांकन छोटे से छोटे परिवार केवल परिवार सभा के नाम से इंगित कराया गया है। जिसमें कम से कम 10 व्यक्तियों का भागीदारी को स्पष्ट किया गया है । ऐसे छोटे परिवार में ही उत्पादन आवश्यकता के आधार पर उपलब्धि के रूप में प्रमाणित होना ही उत्पादन-कार्य, उत्पादन-कार्य समितियों के सफलता का मूल्यांकन है। यह परिवार सभा से विश्व परिवार सभा पर्यन्त हर स्तरीय परिवार सभाओं में उत्पादन-कार्य एक निश्चित आयाम, उसके लिये सटीक व्यवस्था वांछनीय रहता ही है । इसी क्रम में विश्व परिवार सभा में भी आवश्यकता से अधिक उत्पादन का प्रमाण होना जिसमें सभी प्रधान राज्य सभा का भागीदारी निर्वाचन पूर्वक सम्पन्न हुआ रहता है । वह अपने में अर्थात सम्पूर्ण प्रधान राज्य सभा में और विश्व राज्य सभा में आवश्यकता से अधिक उत्पादन का प्रमाण उत्पादित वस्तुओं का राशि (समूह, ढेर) के रूप में होना विश्व समृद्धि का द्योतक होना स्वाभाविक है । इसी प्रकार प्रधान राज्य परिवार सभा, मुख्य राज्य परिवार सभा, मण्डल समूह परिवार सभा, मण्डल परिवार सभा, क्षेत्र परिवार सभा, ग्राम समूह परिवार सभा, ग्राम परिवार सभा, परिवार समूह सभा और परिवार सभा इनमें सभी स्तरों में समृद्धि का अनुभव होना ही अर्थात सामान्य आकांक्षा, महत्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओं का समृद्ध रहना ही उत्पादन-कार्य और उत्पादन-कार्य समितियों के सफलता का प्रमाण है । इसका मूल्यांकन समितियों में भागीदारी करने वाले मिलकर करेंगे और समितियों

के हर व्यक्ति अपने-अपने विधि से मूल्यांकन करेंगे और सभा में भागीदारी करता हुआ सभी सदस्यों के ग्राम परिवार सभा से विश्व परिवार सभा तक हर सभा का मूल्यांकन करेंगे । इसमें भी उभयतृप्ति बनी ही रहती है । इस प्रकार उत्पादन-कार्य और समितियों के मूल्यांकन में उभय तृप्ति का स्वरूप सह-अस्तित्व सहज विधि से प्रमाणित होता है ।

4. विनिमय-कोष का मूल्यांकन :- विनिमय-कोष अपने परिभाषा के स्वरूप में विनिमय कार्य सम्पन्न करता हुआ और विनिमय के लिए आवश्यकीय सभी वस्तुओं को विशेषतः सामान्य-आकांक्षा संबंधी सभी वस्तुओं को श्रम मूल्य के आधार पर आदान-प्रदान करता हुआ एक क्रियाकलाप है । इसमें हर स्तरीय कोषों में उन-उन स्तरीय आवश्यकता के अनुरूप वस्तुएँ उपलब्ध रहता ही है । उन-उन स्तरों में यह समितियाँ लाभ हानि मुक्त विधि से विनिमय करता है । इसका उपयोग सदुपयोग प्रयोजनशील रूप प्रदान करना हर परिवार का ही कार्यकलाप होना देखा गया है । इस मुद्दे पर अर्थात उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता सहज क्रियाकलापों को पहले स्पष्ट किया जा चुका है ।

विनिमय-कोष लाभ-हानि मुक्त श्रम-मूल्यों का मूल्यांकन विधि से विनिमय कार्य को सम्पादित करता है, इसलिये विनिमय-कोष के स्वत्व में कोई संग्रह, किसी भी प्रकार का संग्रह देखने को नहीं मिलता है क्योंकि **अस्तित्व में संग्रह**

का साक्ष्य नहीं है । अस्तित्व में पूरकता का गवाही है, त्व सहित व्यवस्था का गवाही है । अस्तित्व में जीवन जागृति साक्ष्य है । इन्हीं तथ्यों के आधार पर विनिमय-कोष में लाभ की आवश्यकता नहीं रह जाती है क्योंकि सार्वभौम व्यवस्था और अखण्ड समाज के सूत्र में, से, के लिये और इसे नित्य सफलीभूत बनाने का प्रणाली पद्धति नीति में, से के लिये मानव सहज विज्ञान और विवेक सम्मत विचारों के रूप में कार्यरत रहना देखा गया है । इसी क्रम में जीवन जागृति पूर्वक यह अभीष्ट समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में प्रमाणित हो जाता है । यह अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का ही महिमा है । अन्य किसी विधि में मानव सहज अभीप्सा रूपी समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सर्वसुलभ होता ही नहीं । अखण्ड समाज विधि से अर्थात मानव जाति धर्म, दीक्षा, स्वायत्तता में समानता के आधार पर ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सूत्रित होना देखा गया है । इसलिये सार्वभौम अपेक्षा, सर्वमानव से अपेक्षित अपेक्षा सबको मिलना ही स्वाभाविक है । इसलिये हम स्वाभाविक रूप में मानव सहज दिशा को जागृति के रूप में जीवन सहज आवश्यकताओं को सुख, शांति, संतोष, आनन्द के रूप में, मानव सहज लक्ष्य को आवश्यकताओं को समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में पाने की सम्पूर्ण विधि स्वयं अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था ही होना पाया जाता है । अतएव विनिमय-कोष में आवर्तनशील विधि प्रमाणित होने के

आधार पर विधि, नीति और प्रक्रिया में सामरस्यता हो जाता है । हर परिवार समृद्धि का अनुभव करता है इसलिये आवर्तनशीलता में समान गति प्रदान करने के लिये समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व उद्देश्य होना देखा गया है । इसमें हर परिवार में इन विनिमय-कोष में भागीदारी करने का प्रसन्नता और उत्साह बना ही रहता है । यह सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी का एक आयाम होना सबको विदित रहता है । इसमें निष्ठा होना हर परिवार के लिये सहज है । हर ग्राम, मुहल्ला, सभा में गतिशील सभी समितियों में मानवीयतापूर्ण परिवार में से स्वयं स्फूर्त सेवाएँ अर्पित होना स्वाभाविक है । क्योंकि हर परिवार मानव समृद्धि का अनुभव करता ही है । इस प्रकार विनिमय-कोष समिति में भागीदारी निर्वाह करने वाले या अन्य समिति में भागीदारी निर्वाह करने वाले परिवार मानव को प्रतिफल की आवश्यकता ही नहीं रहती । इसी के साथ-साथ यह भी बोध अवधारणा और अनुभव सहज रहता है कि अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करना ही जागृत मानव सहज जागृति विधि से निष्ठा सतत प्रभावशील रहता है । अतएव सार्वभौमता क्रम में भागीदारी नित्य उत्सव होना पाया जाता है । हर जागृत मानव में नित्य उत्सव सहज रूप में प्रमाणित होता ही है ।

यह तथ्य पहले स्पष्ट हो चुका है कि स्वायत्त मानव शिक्षा-संस्कार पूर्वक विधिवत दीक्षित होना, सर्वसुलभ होना यह जागृत मानव परंपरा का देन के रूप में विदित हो चुकी है ।

यही प्रधान रूप में शिक्षा-संस्कार पूर्वक सार्वभौमता को प्रमाणित करता है । यही स्वायत्तता को प्रमाणित करता है । इसी के साथ-साथ यह भी सर्वेक्षित तथ्य है कि हर मानव संतान में स्वायत्तता की आवश्यकता शैशव अवस्था से ही प्रकाशित रहता है क्योंकि हर मानव संतान न्याय का अपेक्षा रखता ही है, सही कार्य-व्यवहार करना चाहता ही है और सत्यवक्ता होने में निष्ठा प्रदर्शित करता ही है । यही बुनियादी अभीप्सा का द्योतक है । बुनियादी अभीप्सा की तुष्टि बिन्दु जागृति, प्रमाणिकता के रूप में सह-अस्तित्वरूपी परम सत्य बोध सहित प्रमाणित होना देखा गया है । सार्वभौमता (अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था) में भागीदारी से ही सही कार्य-व्यवहार करने का प्रमाण होना देखा गया है । समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सुलभता के रूप में न्याय सुलभता के वैभव को देखा गया है । इस प्रकार शैशव अवस्था से ही जीवन सहज अभीप्सा प्रकाशित होता ही है । इसके लिये आवश्यकीय स्रोत, प्रक्रिया, प्रणाली और नीति मानव परंपरा में सुलभ होने के आधार पर ही हर मानव संतान का अभीप्सा सफलीभूत होना सहज और समीचीन है । इस प्रकार स्वायत्त मानव, परिवार मानव अपने परिभाषा में ही सार्वभौमता में भागीदारी का स्वरूप ही है । अतएव ऐसी भागीदारी दायित्व और कर्तव्य में परिगणित होने के कारण हर व्यक्ति भागीदार होने का अर्हता को बनाये रखता है । ऐसी भागीदारी का स्वयं स्फूर्त होना ही जागृति की महिमा है । इस प्रकार विनिमय कोष

कार्य में भागीदारी के फलस्वरूप समाधान और उसकी निरंतरता का प्रमाण होना स्वाभाविक है । यही व्यवस्था में भागीदार होने का अथवा समग्र व्यवस्था में भागीदार होने का फल है अथवा वैभव है । इस विधि से भी विनिमय कोष आवर्तनशील विधि के साथ अपने को सफल बनाना सहज सिद्ध होता हैं ।

विनिमय-कोष में गाँव के हर परिवार सदस्य होने के नाते गाँव (ग्राम) का प्रत्येक परिवार पाँचो समितियों के प्रति मूल्यांकित करने में स्वतंत्र रहेंगी ही क्योंकि परिवार मूलक स्वराज्य गति में प्रत्येक परिवार वर्तमान में विश्वस्त, भविष्य के प्रति आश्वस्त रहना आवश्यक है । इसका स्रोत व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदार का प्रभाव ही है । ऐसी प्रभावोत्पादी अर्हता को प्रमाणित करने में, से, के लिये स्वतंत्र है ।

व्यवस्था में जीना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना एक आवश्यकीय कार्यकलाप रहते हुए व्यवस्था में जीने में सभी लोग संतुष्ट रहते हैं । इनमें से कुछ लोग परिवार प्रेरणा के आधार पर ही समग्र व्यवस्था में भागीदारी के लिए तत्पर हो जाते हैं । इस विधि से सम्पूर्ण परिवार ही कृत, कारित, अनुमोदित विधि से समग्र व्यवस्था में भागीदार होना प्रमाणित होता है ।

5. स्वास्थ्य-संयम का मूल्यांकन :- पहले इस मुद्दे पर स्वास्थ्य और संयम के संबंध में विश्लेषण को प्रस्तुत किया जा चुका है । शरीर स्वस्थता ही स्वास्थ्य का प्रमाण है । शरीर

स्वस्थता का तात्पर्य जीवन अपने जागृति को शरीर के द्वारा प्रमाणित कर सके-यही स्वस्थ शरीर का मापदण्ड है जिसकी आवश्यकता एक स्वाभाविक अपेक्षा है । संयमता यही है अनुभव मूलक विधि से सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार का मानव परंपरा में प्रमाणित करना ही है। संयमता की महिमा व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होने और समग्र व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करना ही है । यही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में वैभवित होने का सूत्र है । इसी का व्याख्या सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज है ।

स्वास्थ्य अर्थात शरीर स्वस्थता को बनाये रखने के लिये आहार, विहारों में संतुलन आवश्यक रहता ही है । सप्तधातु संतुलनधर्मी अथवा सप्तधातु संतुलन कार्यकारी वस्तुओं को पहचानना, निर्वाह करना, उसके पहले जानना, मानना, अति आवश्यक रहता ही है । जीवन्त शरीर में शरीर जिसको हवा, पानी, अन्न, औषधि के रूप में ग्रहण करता है उसे पाचनपूर्वक अर्थात योग, संयोग, संयोजन और शरीर कार्यविधि से रसों और धातुओं में विभाजित कर शरीर-सहज आवश्यकता के अनुसार परिवर्तीकरण अर्थात रसमूलक विधि से धातुओं में परिवर्तीकरण सम्पन्न होता है । यही शरीर में होने वाला क्रियाकलाप है । जिसके आधार पर ही शरीर संतुलन बना रहना स्वाभाविक क्रिया है । इसमें वंशानुषंगीय रचना की परिपूर्णता प्रधान रूप में आवश्यक रहता ही है । यह सह-अस्तित्व में निहित विधि क्रम में वंशानुषंगीयता स्थापित रहता ही है । यही प्राण और रचना

सूत्रों के रूप में होना देखा गया है । इस विधि से हमें स्पष्टतया समझ में आता है कि स्वास्थ्य संतुलन की आवश्यकता लक्ष्य के आधार पर ही आहार-विहार योजनाओं का होना देखा गया है । संतुलित आहार-विहार पद्धति इसी तथ्य पर आधारित रहता है ।

शरीर को स्वस्थ रखने की कल्पना, विचार, चित्रण और मूल्यांकन लक्ष्य बोध सहज विधि से ही सुयोजित होना पाया गया है । चिन्हित रूप में शरीर की स्वस्थता जीवन जागृति की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन योग्य विधि से उपयोगी होना ही एकमात्र लक्ष्य होना देखा गया है । यही सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज, परिवार मानव और स्वायत्त मानव तथा मानवीयता को परंपरा के रूप में स्पष्ट करना, प्रमाणित करना होता है । यही मानव परंपरा के धारकता का भी तात्पर्य है । मानव परंपरा मानवीयता के प्रति जागृत रहना एक स्वाभाविक क्रिया है । यह मानवीयतापूर्ण शिक्षा-संस्कार पूर्वक सर्वसुलभ हो चुकी है । अतएव परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के पाँचो आयामों में भागीदारी को निर्वाह करना ही व्यवस्था-सहज प्रमाणपूर्वक समग्र व्यवस्था में भागीदारी का स्वरूप और गति यही मानव परंपरा का स्वस्थ गति और स्थिति होने के आधार पर स्वास्थ्य-संयमता का योजना-कार्य और मूल्यांकन सुस्पष्ट हो जाता है ।

उक्त विधि से परिवार मानव अर्थात् समझदार व स्वायत्त

मानव, व्यवस्था और समाज मानव के रूप में प्रमाणित होना ही स्वास्थ्य-संयम का लक्ष्य है । इसे विधिवत स्थिति गति में प्रमाणित करना ही स्वास्थ्य-संयम का प्रमाण है । इसके योग्य आहार-विहार स्वाभाविक रूप में संतुलित रूप में निर्वाह कर लेना ही यथा-आवश्यकीय व्यायाम, खेल, नृत्य, गीत, संवाद, वाद्य, कलाओं का उपयोग विहार का मतलब है । इसे स्वास्थ्य संयम अभ्यास भी कहा जा सकता है । इस अभ्यास में हर मनुष्य भागीदार बना ही रहता है। इसमें पारंगत व्यक्ति गाँव में, मुहल्ला में होना स्वाभाविक है । हर प्रौढ़ व्यक्ति इसमें पारंगत रहता ही है । क्योंकि परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में स्वास्थ्य-संयम कार्यक्रम निरंतर गति के रूप में प्रवाहित रहता ही है । इसमें हर व्यक्ति में जागृति का होना दिखाई पड़ता है । इसी आधार पर आहार और विहार को व्यवस्था में भागीदारी योग्य शरीर को संभालने योग्य विधि से सम्पन्न करना सहज रहता ही है । इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए स्वास्थ्य-संयम समिति में भागीदारी को निर्वाह करता हुआ हर व्यक्ति समिति के सम्मिलित सदस्य के रूप में मूल्यांकन को समारोह में व्यक्त करेंगे जिस समारोह में पूरा ग्रामवासी, मुहल्लावासियों का होना स्वाभाविक होता ही है। ऐसे अवसर पर सम्पूर्ण ग्राम और मुहल्लावासियाँ मूल्यांकन करने के लिये दक्ष रहते ही हैं । किया गया मूल्यांकन सार्वभौम होने की स्थिति में सबका सम्मत होना स्वाभाविक है । कोई चिन्हित व्यतिरेक रहने की स्थिति में हर प्रौढ़ व्यक्ति विधिवत मूल्यांकन सहित सभा में अपने-अपने

प्रस्ताव को प्रस्तुत करेगा । इसी विधि से समारोह के बीच अनेकानेक स्थलियों में हर्षध्वनि, प्रसन्नता, गीत, गायन, वाद्यों से संभ्रमित होना स्वाभाविक है । संभ्रमित का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में भाँति-भाँति विधि से समर्थन को प्रस्तुत करना ही है। इस प्रकार स्वास्थ-संयम समिति का मूल्यांकन के साथ-साथ आगामी दिनों के लिये आवश्यकीय योजनाओं को कार्य-योजनाओं को, उसमें और श्रेष्ठताओं को संयोजित करते हुए उत्सवित होना स्वाभाविक है । इस प्रकार सम्पूर्ण मूल्यांकन कार्यकलाप वर्तमान में विश्वास के आधार पर सम्पन्न होता ही रहता है । यही नित्य उत्सव का आधार है । श्रेष्ठता के अनन्तर श्रेष्ठता सहज योजनाएँ अग्रिम क्षणों-मुहूर्त, दिनों-महिनों और वर्षों में उत्सव का आधार बनता है ।

भूमिः स्वर्गताम्यातु, मनुष्यो यातु देवताम् ।
धर्मो सफलताम् यातु, नित्यं यातु शुभोदयम् ॥

0-0-0